मुख्य संरक्षक	:	डॉ0 धर्मपाल कुलपति
संरक्षक	:	प्रो0 वेदप्रकाश शास्त्री आचार्य एवं उपकुलपति
परामर्शदाता	:	डॉ0 विष्णुदत्त राकेश प्रोफेसर - हिन्दी विभाग
सम्पादक	:	डॉ0 महावीर प्रोफेसर एवं निदेशक वैदिक शोध संस्थान
सह-सम्पादक	:	डॉ0 दिनेशचन्द्र शास्त्री
व्यवसाय प्रबन्धक	:	डॉ0 जगदीश विद्यालंकार पुस्तकालयाध्यक्ष
प्रकाशक	:	प्रो0 श्यामनारायण सिंह कुलसचिव
मूल्य	:	25 रुपये (वार्षिक)

वेदमञ्जरी

संग्रहो दानं च

तयोरिदवसा वयं सनेम नि च धीमहि ।
स्यादुत प्ररेचनम् ।। ऋग् 1–17–6।।

ऋषि: मेघातिथिः काण्वः । **देवते** इन्द्रावरुणौ । **छन्दः** गायत्री ।

(तयोः) इन्द्रावरुणयोः **(इत्)** एव **(अवसा)** रक्षणेन **(वयम्)** सामाजिका जनाः **(सनेम)** धनम् अर्जयेम **(निधीमहि च)** निधिषु संगृह्णीयाम च । **(उत)** अपिच, तस्य निधिषु संगृहीतस्य धनस्य **(प्ररेचनम्)** रिक्तीकरणम् अपि **(स्यात्)** भवेत् ।

अस्माभिरिन्द्रस्य वरुणस्य च संरक्षणे स्थातव्यम्। इन्द्रवरुणौ येषामादर्शानां प्रतिनिधित्वं कुरुतस्ते आदर्शा अस्माभिः स्वजीवने समानेयाः । ऐश्वर्याधिपतिः खल्विन्द्रः । इन्द्रवद् वयमप्यैश्वर्यवन्तो भवेम । सन्मार्गमनुसरन्तो वयं प्रचुरस्य धनस्यार्जनाय प्रयतेमहि। अभिशापः खलु निर्धनता । तत्सकाशान्मुक्तिः सर्वैरेव मानवैः प्राप्तव्या । अपौरुषं निर्धनताया हेतुः । निर्धना भूत्वा वयं मन्यामहे – वरमेतद् यद् वयं निर्धना इति, धनं हि मनुष्यं परमात्मनः समीपाद् दूरीकरोति । परं वस्तुतस्तु धनी भूत्वा मनुजः परमेशंसान्निध्यं प्राप्तु अधिकानवसरान् लभते। अतः समुचितसाधनैर्धनार्जनाय सततं प्रयतनीयम्, प्रचुरप्रचुरं च धनं सञ्चेतव्यं, येन वयं धनानां पतयः स्याम ।

परम्, एतावानेव वेदस्यादेशो नास्ति । इन्द्रेण साकं वरुणस्यादर्शो ऽप्यस्माभिर्विचारणीयः। पाशी वै वरुणः । स खल्वनृतभाषिणम् अनृताचारं च पाशैर्बद्ध्वा दण्डयति । धनं लब्ध्वा यदि वयं कुमार्गगामिनो भवामस्तर्हि वरुणो ऽस्मान् दण्डयति । वरुणो हि दीनान् दुःखिनो वा तद्दैन्यनिवारणाय तद्दुःखविनाशाय च वृणोत्यपि । वरुणस्य दण्डनीतिं वरणनीतिं च विचिन्त्य वयं सञ्चितेनैश्वर्येण न केवलं स्वार्थसाधनं कुर्याम, किन्तु परार्थाय तद्दानमप्याचरेम । एषैव किल वैदिकमर्यादा । सरोवरस्य वारि यथा बहिर्निर्गमनं विना मलिनं जायते, तथैव धनागारस्थितं धनमपि निर्गमनेन विना दूषितं गर्हितं च संपद्यते ।अतो वयं प्रभूतं वित्तमर्जयित्वा काले काले तस्य प्ररेचनमपि कुर्याम ।अस्माभिः कोषागारस्य द्वाराणि तेभ्य उद्घाटनीयानि ये धनेप्सवः सन्ति, विकलाङ्गत्वादिकारणात् स्वयं च धनार्जने न शक्ता विद्यन्ते। लोकहितार्थमपि धनदानं वयं कुर्याम । यतो हि लोकहितकराणि कार्याणि सर्वेषां सहयोगादेव सिध्यन्ति ।

–डॉ0 रामनाथ वेदालङ्कारः

सम्पादकीय

"परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते।
स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम्।"

इस परिवर्तनशील संसार में जो जन्मा है उसकी मृत्यु अवश्यंभावी है, किन्तु उसका जन्म सफल है जिसके जन्म से कुल का नाम अमर हो जाता है।**'कीर्तिर्यस्य सः जीवति'** संसार में जिसकी कीर्ति है वह कभी मरता नहीं सदा अमर रहता है। लोकमान्य तिलक ने कहा था– **'मरावे परी कीर्ति रूपे उरावे'** मरकर भी यशरूप में जीवित रहना चाहिए। हम जब इन सुभाषितों पर विचार करने लगते हैं तो कुछ चित्र आँखों के सामने साकार हो उठते हैं। इन चित्रों में कोई महर्षि दयानन्द है, कोई स्वामी श्रद्धानन्द हैं, कोई श्रीराम और श्रीकृष्ण हैं तो कोई चन्द्रशेखर आजाद और शहीदे आजम भगतसिहं हैं। मरकर भी अमर होने के उदाहरण इस भारतवर्ष में बहुत बड़ी संख्या में देखे जा सकते हैं। हमने इन महापुरुषों के प्रत्यक्ष दर्शन नहीं किये, गौरव–गाथायें सुनकर हमारा मस्तक श्रद्धावनत हो जाता है। श्रेष्ठ पुरुषों की यह परम्परा सदा चलती रहती है। जो अपने शुभ–कर्मों की पहचान इतिहास के पन्नों पर अंकित कर जाते हैं वे देवता या महापुरुष कहलाते हैं– उनके जीवन–चरित्र पढकर आगे आने वाली पीढ़ियां प्रेरणा प्राप्त करती हैं। इसलिए हमारा यह पुनीत कर्त्तव्य है कि हम सज्जनों की जीवन कथाएं भावी पीढ़ी के समक्ष अवश्य प्रस्तुत करें.।

महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा सन् 1875 में स्थापित आर्य समाज का और स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा महर्षि के सपनों को साकार करने के लिए 1900 में स्थापित गुरुकुल कांगड़ी का अत्यन्त गौरवशाली इतिहास है। आचार्य महात्मा मुंशीराम से प्रारम्भ आचार्यों की मणिमाल में ऐसे अनेक देवपुरुष हुए हैं जिन्होंने आचार्य शब्द को अन्वर्थक ही सिद्ध नहीं किया अपितु गरिमा प्रदान की। क्या हम कभी आचार्य रामदेव, आचार्य चमूपति, आचार्य बुद्धदेव, आचार्य प्रियव्रत, आचार्य रामनाथ सदृश महापुरुषों के दिव्य जीवन को विस्मृत कर सकेंगे? इन्हीं श्रेष्ठ आचार्यों की सद्गुणविभूषित श्रेणी में आचार्य रामप्रसाद जी वेदालंकार का नाम भी आदरपूर्वक स्मरण किया जाता रहेगा।

बाल्यकाल में जिसने उर्दू और परस्तों भाषा पढ़ी हो, संस्कृत का मन्त्र या श्लोक पढ़ने का जिसे सौभाग्य न मिला हो, वह आगे चलकर ईश्वरकृपा और गुरुजनों के आशीर्वाद से वेद–मन्त्रों की व्याख्या करते–करते हजारों श्रोताओं को भाव–विह्वल कर देगा, यह किसी ने सोचा भी न होगा।

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय से अवकाश प्राप्त कर लेने के पश्चात आचार्य जी ने अपना सम्पूर्ण जीवन वेद प्रचार में अर्पित कर दिया था। अपने स्वास्थ्य की चिन्ता किये बिना वे दिन–रात मानवता की सेवा में लगे रहे। और अकस्मात् ही चिरविश्राम को प्राप्त हो गये।

पूज्य आचार्य जी की कीर्ति को चिर–स्थायी बनाने के लिए गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ0 धर्मपाल जी की प्रेरणा से 7 जन0 को आचार्य जी के जन्म दिवस पर यह भावाञ्जलि प्रस्तुत की जा रही हैं।

इस भावाञ्जलि में उनके मित्रों की, साथियों की, शिष्यों की, भक्तों की हृदय की गहराई से निकली भावनाऐं हैं। पूज्य गुरुवर डॉ0 रामनाथ जी की सात्त्विक भावनाएं हैं। इस अंक की विशेषता है– भावों का सहज उच्छलन। किसी के लेखन में कृत्रिमता नहीं, आचार्य जी को जिसने जिस रूप में देखा उसी रूप में सबने प्रस्तुत किया है।

इस पुष्प–गुच्छ को गुम्फित कर समर्पण का अवसर प्राप्त हुआ, इसे अपना सौभाग्य मानते हुए श्रद्धापूर्वक यह पुष्पाञ्जलि आचार्यश्री की पावन स्मृति में सादर अर्पित करता हूँ।

प्रो0 महावीर

प्रियरामप्रसाद-स्मरणम्

रामप्रसादमनघं सुधियं स्मरामः
वेदाम्बुधिप्रतरणे तरणिं स्मरामः।
धर्मे धुरन्धरमतिं पथिकं स्मरामः
छात्रप्रबोधजनकं विबुधं स्मरामः ।।1।।

पुण्यं स्वभावसरलं सरसं स्मरामः
धन्यं प्रभावकलितं ललितं स्मरामः।
प्रेमप्रसारचतुरं चरितं स्मरामः
अतिथ्यधर्मधनिकं सुखदं स्मरामः ।।2।।

सन्ध्याग्निहोत्रनियमं व्रतिनं स्मरामः
साहित्यलेखनपटुं सुबुधं स्मरामः।
वार्तासु मोहनकरं मनुजं स्मरामः
कारुण्यपूर्णहृदयं सुहृदं स्मरामः ।।3।।

स्वाध्यायशिक्षणपरं सुक्रतुं स्मरामः
वेदप्रचारचरणे चटुलं स्मरामः।
गेयार्चनीयगुणधिं जलधिं स्मरामः
सेवार्पितस्वमनसं सुमणिं स्मरामः ।।4।।

सौजन्यस्नेहद्रवितं सदयं स्मरामः
ओङ्कारलब्धयशसं सुरभिं स्मरामः।
विद्याप्रतापसलिलं विमलं स्मरामः
पाण्डित्यगर्वरहितं सुजनं स्मरामः ।।5।।

तस्य प्रसादमधुरं सुमुखं स्मरामः
वेदोपदेशसरसं वचनं स्मरामः।
तत्कर्तृकं गुरुकुलस्य यशः स्मरामः
श्रद्धास्पदे गुरुजने प्रणतिं स्मरामः ।।6।।

— डॉ0 रामनाथ वेदालङ्कारः

याद आती है तुम्हारी

तुम निश्छल निष्कलंक निष्पाप सुधी थे
वेदाम्बुधिसंतरणहेतु दृढ़ नौका थे।
तुम धर्मधुरन्धरमति पथपंछी थे
छात्रप्रबोधक विज्ञ विबुध थे ।।1।।

तुम पुण्यश्लोक सरल सरस थे
धन्य प्रभावी ललित तिलक थे।
तुम प्रेमप्रसारक चतुर–चरित थे
आतिथ्यधर्म के धनी सुखद थे ।। 2।।

तुम सन्ध्याग्निहोत्र के सुभग व्रती थे
सरल साहित्य सृजन में पटु थे।
तुम वार्ता में मोहक छवि छितराते
कारुण्य हृदय में भरे सुहृद थे ।।3।।

तुम स्वाध्यायप्रवण शिक्षक सुक्रतु थे
वेदप्रचारकर्त्तव्य–कर्मठ थे।
तुम गेयार्चनीय गुणगरिमा थे
सेवार्पितमानस मणिमौक्तिक थे।।4।।

तुम सौजन्य–स्नेह– द्रवित सुजन थे
प्रभु प्राप्तकीर्ति सुरभित मन थे।
तुम विद्या–प्रताप के विमल सलिल थे
पाण्डित्य–गर्व से विमुख विश्रुत कोविद थे ।।5।।

दर्शनीय तुम्हारा प्रसाद–मधुर मुख था
श्रवणीय तुम्हारे सरस वचन थे।
प्रसृत सर्वत्र त्वत्कर्तृक गुरुकुल का यश था
स्मरणीय तुम्हारा गुरुचरणरजवन्दन था ।।6।।

याद आती है तुम्हारी।
अश्रु लाती छलछलाती।।

—डॉ0 रामनाथ वेदालंकार

एक प्रसंग

आज यहाँ सजावट क्यों हो रही है?

यह आर्यसमाज–मन्दिर है, इसका वार्षिकोत्सव है।

भाषण किसका होगा?

रात्रि के आठ बजे से आचार्य राम प्रसाद वेदालंकार बोलेंगे।

मैं मुसलमान हूँ। क्या मैं भी सुन सकता हूँ?

बेशक आप आइये, अवश्य आइये।

रात्रि के आठ बजने को हैं। वह मुस्लिम भाई कुछ सकुचाता हुआ भवन में प्रवेश करता है और सबसे पीछे बैठ जाता है।

आचार्य रामप्रसाद व्यासपीठ पर बैठ चुके हैं। आगन्तुक के वेष आदि से पहचान जाते हैं कि यह मुस्लिम है। वे मन्त्री जी को कहते हैं कि सबसे पीछे बैठे उस व्यक्ति को आगे ले आओ।

मुस्लिम आगन्तुक बड़ी श्रद्धा से भाषण सुन रहा है। भाषण– समाप्ति पर वह आचार्य जी के पास आकर कहता है, बहुत अच्छी बातें बतायीं आपने। रामप्रसाद जी पूछते हैं– आप हिन्दी पढ़ लेते हैं?

हाँ, खूब अच्छी तरह। मैंने बी0ए0 में संस्कृत ली थी।

तो, ये लीजिए। छोटी–छोटी पुस्तकें आपको उपहार में दे रहा हूँ। फिर कभी मिलें तो बताना कैसी लगीं।

वह आचार्य जी का भक्त बन जाता है। नगर में जहाँ भी उनका व्याख्यान होता है, सुनने पहुँच जाता है।

ऐसे–ऐसे न जाने कितनों को आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार जी ने अपने स्नेह से अभिभूत किया था, जिनमें पुराणी भी थे, किरानी भी और मुस्लिम भी।

– डॉ0 रामनाथ वेदालंकार

आचार्य रामप्रसाद वेदालंकारस्य गुणाः

यद्यपि संसारे प्रायशः शरीर धारिणः पुरुषा जायन्ते म्रियन्ते च। येषां जीवने किमपि न भवति वैशिष्ट्यं ते कदा लोके वसन्ति कदा च लोकं विहाय दिवं प्रयान्ति नहि कोऽपि जानति सुष्ठुतया। केचन विरलाः पुरुषा भवन्त्येतादृशा यद्यान् जना सम्यक् जानन्ति। विशिष्ट पुरुषां सगतिं स्थितिमासनञ्च सम्यक्तमा सामाजिका जानन्ति। सामाजिकः पुरुषः समाजे वसति समाजकल्याणाय कर्म करोति समाजाभ्युदयमुद्दिश्यैव जीवति। आचार्य रामप्रसादः सामाजिक एव आसीत्। तस्याध्ययनं चिन्तनं लेखनं भाषणं सर्वमपि समाजार्थमेवासीत्। संसारे केचन जनाः शरीरमादाय तिष्ठन्ति परं तथाविधं कर्म न कुर्वन्ति येन लोके ख्यातिः प्रसरेत्। केचन बुद्धिमन्तो जनाः संसारे शरीरेण तिष्ठन्ति परं शुभं कर्मकृत्वा पुण्यं लभन्ते लोके च तेषां प्रसरति यशः केनापि विदुषा कथितं यत सएव पुरुषो भवति बुद्धिमान् यो नश्वरेण शरीरेणानश्वरं यशः प्राप्नोति। आचार्य रामप्रसादेन् सर्वदा पुण्यमर्जितं तस्मादेव प्रसरति तद्यशः।

तत्र मानवता वसत्तिस्म– आचार्य रामप्रसादे मानवीयगुणानां निवास आसीत्। स व्यवहारकाले सर्वदैव मानवमूल्यानि रक्षति स्म। तस्य भाषणे व्यवहारे च मानवीय गुणाः प्रकाशन्ते स्म। तस्य जीवनं दया सज्जनता स्वता सरलता निरभिमानता निश्छलता मधुरता परोपकारिता इत्यादयो गुणा प्रकाशयन्ति स्म। विरला एव मनुष्याः लोके भवन्ति येषां जीवने मानवतायाः सर्वदैव भवति वासः।

मित्रभावः –

आचार्य रामप्रसादे मित्र भाव आसीत् स सर्वानपि मनुष्यान् मित्र दृष्ट्या पश्यतिस्म। योऽपि जनस्तमुप– सर्पति स्म तस्यैव हृदये जायते मित्रभावः। ये जनाः पवित्रहृदया भवन्ति त एव परान् पुरूषान् न परदृष्ट्या अपितु स्वता भावेन पश्यन्ति। "मित्रस्य चक्षुषाऽहं सर्वाणि भूतानि समीक्षे" इति वेदमन्त्रानुसारं सतां जीवनं सफलं भवति।

विद्वज्जनानुरागः –

आचार्य रामप्रसादस्य मनसि विदुषांकृते स्वतः एवानुरागो विलोक्यते स्म। कस्यचिदपि पुरुषस्य विषये यदि तेन ज्ञानं यदसौ पुरुषो विद्वानस्ति तर्हि तस्मिन् विद्वज्जने स स्वतां प्रकटयन्

अनुरागं प्रदर्शयति स्म। विदुषां कृते तस्य गृहस्य द्वाराणि तु सर्वदैव अपिहितानि आसन्। विद्वांसस्तु तस्य गृहे निवासं भोजनं सत्कारं च संप्राप्य प्रसीदन्ति स्म।

भाषणकला–

आचार्य रामप्रसादे भाषण कला असमा आसीत्। यद्यपि भाषणकाले तेषां मुखान्निःसृतानि वचांसि सरलानि भवन्ति स्म, तथापि समेषां श्रोतॄणां मनांसि तेषां वचांसि समाकर्ण्य सानन्दानि भवन्ति स्म। प्रायशो वक्तारः स्वकीये भाषणे शास्त्रवैदुष्यं प्रकटयन्ति, सुखवेद्यानि वचनानि नोच्चारयन्ति। परं रामप्रसादो वेदालंकारः शास्त्रं सरलया शैल्या मधुरया वाचा नातितीव्रेण शब्दप्रवाहेण प्रकटयन् श्रोतृजनानां भवति स्म आह्लादकरः। यज्ञ विषयमवलम्ब्य तन्महत्त्वप्रतिपादनाय बहूनि वेदवाक्यानि वदति स्म। जनास्तेषां भाषणानि समाकर्ण्य परस्परं वार्तालाप काले तत्प्रशंसनं प्रायशः कृतवन्तः। स्वकीयया भाषण कलया आचार्य रामप्रसादेन भारतस्य सर्वेषुप्रान्तेषु यान्यापि सन्ति आर्य समाज स्थानानि तानि सर्वाण्येव सेवितानि। भारते तु सर्वे जना व्याख्यान चातुर्यं प्रकटयन्ति परं विदेशेऽपि वाक्कलाचातुर्यप्रकटने तु अल्पतमा एव वक्तारो भवन्ति सक्षमाः। आचार्य रामप्रसादेन विदेशमपि गत्वा वेदप्रचारे स्वकीयं वाक्पाटवं परिवर्धितम्। तत्र तेषां भाषणानि समाकर्ण्य विदेशस्थै र्जनैः आङ्गलभाषा बद्धानि तानि भाषणानि समीप्सितानि। श्रीमतां रामप्रसादेन आङ्गलभाषा भाषिणां चित्तानुरञ्जनाय वैदिक विचारा वबोधाय च आङ्गलभाषायामपि स्व विचारा लेखाबद्धाः कृताः। तेषामाङ्गलभाषाबद्धा लेखाः वैदेशिकैः पठिता समादृताश्च। प्रायशो दृश्यते स्म यत् आचार्य रामप्रसादः स्ववाक् कलया जनान् यज्ञकर्मकरणाय भृशं प्रेरयामासा अनेकेषु परिवारेषु यज्ञानुष्ठानं सम्पाद्यतेन परिवारिक जनानां मनसि याज्ञिक भावना स्थापिता। महात्मनां आनन्दस्वामिनां ये ये श्रद्धालवो भक्तजना आसन् ते सर्वे आचार्य रामप्रसादस्य भाषणान्याकर्ण्य आनन्दं लेभिरे। सर्वैस्तैः स्वकीया निष्ठा आचार्यरामप्रसादे प्रकटिता।

अद्य स आचार्य शरीरेण नास्ति लोके परं यशसा अद्यापि स जीवति, अद्यापि तद्गुणान् शृण्वन्ति, अद्यापि तल्लिखितानि सरलानि पुस्तकानि पठन्ति। आचार्य रामप्रसादस्य कीर्तिः सर्वासुदिक्षु प्रसरतु तरामिति।

– डॉ. धर्मपालः
कुलपतिः
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालयस्य



प्रो० रामप्रसादजी वेदालंकार, उ०प्र० के पूर्व राज्यपाल महामहिम श्री वी.सत्यनारायण रेड्डी एवं प्रो० शेरसिंह जी के साथ । मध्य में पुस्तकालयाध्यक्ष डॉ० जगदीश विद्यालंकार ।



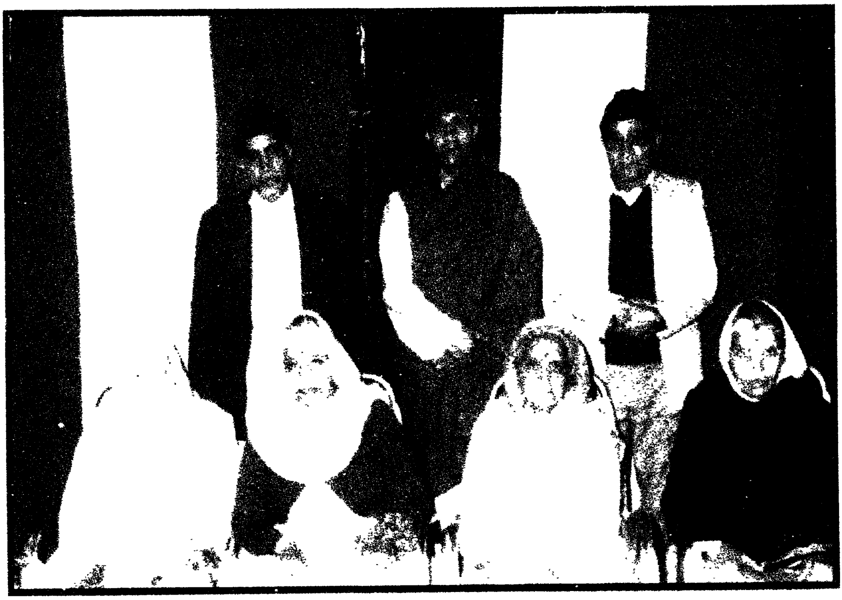
दीक्षान्त-यज्ञ के अवसर पर भारत के राष्ट्रपति महामहिम ज्ञानी जैलसिंह, तत्कालीन कुलाधिपति श्री वीरेन्द्र जी कुलपति श्री बलभद्र हूजा, कुलसचिव श्री जबरसिंह सैंगर के साथ आचार्य रामप्रसाद जी वेदालंकार ।



डिजनी लैण्ड (अमेरिका) में आचार्य रामप्रसाद जी, धर्मपत्नी श्रीमती सरोज आर्या के साथ प्रसन्न मुद्रा में ।



प्रादेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के पूर्व प्रधान स्वामी आनन्दबोध सरस्वती एवं प्रो० शेरसिंह जी के साथ आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार साथ में खड़े हैं आचार्य श्यामसुन्दर जी स्नातक ।



अपनी स्नेहमयी बहनों और दोनों भाइयों के साथ आचार्य रामप्रसाद जी ।



सुदूर अमेरिका में श्रीमती सरोज [illegible]आर्या (धर्मपत्नी), प्रिय अनुव्रत (पुत्र), कु० [illegible],
आचार्य रामप्रसा[illegible] डॉ० सत्यपाल (भानजे) प्रसन्नता के क्षणों [illegible]



आर्य समाज, बी० एच० ई० एल० हरिद्वार मे अभिनन्दन समारोह के अवसर पर अपने प्रिय शिष्य डॉ० महावीर (सम्पादक, गुरुकुल पत्रिका) के साथ ।



गुरुकुल कांगड़ा वि० वि० मे भाषण प्रतियोगिता के अवसर पर कु० प्रज्ञा एव कु० नीतू को चल वैजयन्ती प्रदान करते हुए आचार्य रामप्रसाद जी वेदालंकार ।

आचार्य रामप्रसाद-वेदालंकारो वैदिक परम्परा-परिपोषकः

संसारेऽस्मिन् दिने दिने स्वकर्मफलानुसारं जना जायन्ते म्रियन्ते च। परं विशाले लोके विलक्षणों विद्यत एष क्रमो यत् केषाञ्चित् पुरुषाणां कथा केवलं जन्मकालादारभ्य मृत्युपर्यन्तं प्रसरति परं केषाञ्चित्तु जीवन काले यथा लोकप्रसृता कथा महिमानमुद्गायति तथैव दिवमुपयातानामपिं तेषां कथा बहुकालं यावत् संसारे जनैः कथ्यते प्रसार्यते च। संस्कृतकविना मानव–जीवनतत्त्वमुद्गिरता यः श्लोकः प्रणीतः सो नूनं पठनीयः।

परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते।
स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम्।।

आचार्य रामप्रसादो भुवमवतीर्य शास्त्रानुमोदितं कर्त्तव्यजातं यथाक्रमं प्रचक्रे तेन तथाविधं कार्यमकारि यदद्य दिवङ्गतोऽपि स्मर्यते जनैः। वैदिक वाङ्मये वैदुष्यमाप्तुं तेन बाल्यावस्थायां स्वमनसि संकल्पः प्रोद्भावितो यन्मया आर्षपरम्परा वाहिनि शिक्षण संस्थाने गुरुणां चरणंयोः सन्निधिमवाप्य तथा विद्याभ्यासो विधेयो येन ममापि वैदुष्यं अन्यविदुषां वैदुष्यमिव आर्यजगत्यां प्रसरेत्। यद्यपि आचार्यस्य ज्येष्ठानां भ्रातृणां मनो वाणिज्ये रेमे परमस्य मनसि वाणिज्यविषये नोदितो विशेषानुरागः। मुरादाबाद जनपदान्तर्गत चन्दोसी नगरे व्यवस्थिते संस्कृत महाविद्यालये संस्कृताध्ययनार्थं प्रवेशं लब्ध्वा गुरुजनसकाशात् किञ्चित्किञ्चिद् विद्यामधीत्यानेन संस्कृतेच्छा बलीयसीकृता। प्रायशो निगद्यते जनैर्यत् शैशवे व्यपगते समायातेचयौवनकाले जनानां हृदि विद्याधिगमेच्छा नोदेति परं आचार्य रामप्रसादस्य विषये मैवं वाच्यम्। श्रीमता रामप्रसादेन युवावस्थायामेव विद्याभ्यासः प्रारब्धः। संसारे विलोक्यते यज्जनाः शिक्षां केवलमक्षरज्ञानमेव मन्यन्ते। परं केवलमक्षरज्ञानमात्रेणैव विद्या न फलवती भवति। यदा मनुष्य अक्षरज्ञानेन सह शुभं कर्म करोति तदैव विद्या प्रकाशते। आचार्येण यथा यथा विद्यायां प्रावीण्यमवाप्तं तथा तथा भूयसी कर्त्तव्य निष्ठापि वृद्धिं नीता। आचार्य रामप्रसादस्य शास्त्रेषु निष्ठा स्वाभाविक्यासीत्। शास्त्राणि ऋषि प्रणीतानि भवन्ति अत एव ऋषिप्रणीता ग्रन्था आर्षगन्था निगद्यन्ते। आर्षग्रन्थानाम् आदिम आधारः केवलं वेद एव। अत एव वेदालंकारेण शास्त्राणां वेदानाञ्च सम्यग्ध्ययनं कृतम्। तैत्तिरीयोपनिषदि यथा

ऋषिणोदीरितं यत् "स्वाध्याय प्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्" इति ऋषिवाक्यं मनसा स्वीकृत्य श्रीमता वेदालंकारेण स्वाध्याये प्रवचने च न कदापि प्रमादः कृतः। स्वाध्यायप्रवचनयोस्तु, तदनुरागः स्वकीयछात्रावस्थायामेवासीत्। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालयस्य छात्रावस्थायां तेन आचार्यप्रियव्रतवेदवाचस्पतीनां डा. रामनाथ वेदालंकाराणां पं. सुखदेव दर्शनकेसरिणां च चरणवन्दनां प्रकुर्वाणेन प्राच्यविद्यानामध्ययनेन सह अध्यापनमपि समारब्धम्। आर्य समाजस्योत्सवेषु यज्ञकर्मानुष्ठानेषु, वेदप्रचारस्य साप्ताहिक कार्यक्रमेषु च वैदुष्यपूर्णानि प्रवचनानि समये समये समाख्यातानि। ऋषिप्रवरदेवदयानन्दविरचित संस्कारविधिनिर्दिष्ट नियमानुसारं श्रीमता रामप्रसाद वेदालंकारेण सहस्रसंख्यां परिगणनीयेषु आभिजात्यवर्गाश्लिष्ट परिवारेषु संस्कारादिकर्मजातानि विच्छित्तिविशेषावहानि सम्यक् सम्पादितानि।

आचार्य रामप्रसादेन ब्रह्मचारीवेषधारिणा गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालयस्य वेदालंकार – पदाभिधेयां परीक्षामुत्तीर्य वेदविषये स्नातकोत्तरश्रेण्यां प्रवेशो ग्रहीतः। महतापरिश्रमेण तपसा स्वख्यातिमंभिवर्धयता तेन प्रथमश्रेण्यां वेदविषये एम.ए. परीक्षामुत्तीर्य गुरवः समाह्लादिताः। अस्य सरलतां निश्छलतां वाक्पटुतां वेदानुरागितां चाभिवीक्ष्य आचार्यप्रवरेण प्रियव्रतवेदवाचस्पतिना वेदविभागेऽयं नियोजितः। वेदविभागे प्रवक्तृपदमलङ्कृतम् अथ च प्रवाचक पदं प्रोफेसर पदञ्चालंकृतम्। एवमेव गुरुणामनुग्रहशक्त्यासौ गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालयस्य आचार्योपकुलपति पदालङ्कृतोऽभूत्। आचार्यपदे विराजमानेनानेन सैव परम्परा पालिता या परम्परा गुरुकुलस्य प्राग्वर्तिभिर्विद्वद्भिः सद्भिस्तपस्विभिराचार्यैः संदर्शिता।

आचार्य रामप्रसादेन चतुर्दशवर्षाणि आचार्य पदे कार्यव्यापृतेन ससुखं व्यतियापितानि। यद्यपि वैदिक धर्मस्य प्रचारे तेन कदापि प्रमादो न कृतः। नापि चासौ सरलपुस्तकविलेखने अभूदालस्याबध्यः। सामान्यजनानां ज्ञानपिपासामपनेतुं तेन भाषण शैली यथा सरला दुर्गम्याक्षरप्रयोग रहिता सुगम्यशब्दार्थसंयुता चिरं रक्षिता तथैव लेखनकलापि वेदमन्त्रार्थावगमाय सरलदृष्टान्तपरिपाट्या चिरं पालिता। तेनाचार्येण स्वप्रचारकर्मणा ये जना प्रभावितास्ते सम्प्रत्यपि तद्भाषणानि श्रोतुमीहन्ते। अद्यापि जनाः सन्ति प्रतीक्षमाणाः यद् स्वादुवाक् सपदि समागत्य मधुरेण भाषणेन सरलेन स्वभावेन प्रभावोत्पादकेनाचारेण निश्छलेन मनोव्यापारेण सर्वान् सानन्दान् कर्तुमागच्छेत् परं नास्ति सम्प्रति सः। करालकालेन वक्रं विशालं मुखं समास्फाल्य पश्यत एव प्रियजनस्यासौ भक्षितः। इदानीं केवलं तस्य गाथा गीयते

तत्प्रशंसकैः। तन्नाम स्मर्यते तद्गुणगणनानुरक्त– चित्तैः, श्रूयन्ते यन्त्रबद्धभाषणानि तद्वाक्सारल्यमा–धुर्यानुभवोत्फुल्लवदनैः। पठ्यन्ते सुकुमारमतिगम्यानि वेदार्थप्रकटनयोग्यानि नातिदीर्घकालगम्यानि लघूनि लघूनि पुस्तकानि पठनपाठननिहितमनोभावैर्विद्यानुरागिभिः। संस्मर्यन्ते मित्रैः सहयोगिभिः पारिवारिकैः प्रतिवेशिभिश्च तास्ताः घटना याः समये समये तेन सह गृहे, भ्रमणे, भाषणकाले, परिवहनकाले कार्यकाले कर्मानुष्ठानसमये विशिष्टावसरे च घटिताः। केचन जनास्तस्य मित्रगुणैः संतुष्टाः, केचन जनास्तस्य भ्रातृत्वगुणैस्तुष्टाः, केचन जनास्तस्य प्रचारकगुणैः प्रसन्नाः, केचन जनास्तस्य प्राध्यापकगुणैराकृष्टाः, केचन जनास्तस्य पार्श्ववर्तिवैशिष्ट्येन अविषण्णवदनाः, केचन गुरवस्तस्य शालीनतया प्रमुदिताः, केचन सज्जना विद्यावृद्धा धर्मवृद्धा यशोवृद्धा आयुर्वृद्धाश्च तस्याभिवादनशीलतया परितुष्टा अभवन्।

दिवमुपयाते तस्मिन् आचार्यरामप्रसादवेदालंकारे गुरुकुलपत्रिकाया अयं तद्स्मृतिविशेषाङ्क प्रकाश्यते प्रकाशितो ह्ययं विशेषाङ्कस्तस्य गुणान् प्रकाशयेदिति।

– प्रो0 वेदप्रकाशः शास्त्री
आचार्य उपकुलपतिश्च
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालयस्य

एक आदर्श आचार्य

गुरूकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय का अपना एक गौरवपूर्ण इतिहास है। इस विश्व प्रसिद्व शिक्षण संस्था के संस्थापक अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्वानन्द की आँखों में प्राचीन भारत के नालन्दा, तक्षशिला जैसे विश्व प्रसिद्व विद्या–केन्द्रों का चमकता हुआ स्वरूप था वें बीसवी सदी में उस गौरवशाली स्वरूप को गुरूकुल कांगड़ी वि0वि0के माध्यम से साकार करना चाहते थे। अपनी कल्पनाओं को मूर्त रूप प्रदान करने के लिये स्वामीजी प्राचीन और अर्वाचीन विषयों के अध्यापनार्थ काशी आदि विद्या की नगरियों से विभिन्न विषयों के मूर्धन्य विद्वानो को ससम्मान हरिद्वार लाये। यही कारण है कि पं0 शुद्धबोध जी काव्यतीर्थ, पं0 श्रीपाद दामोधर सातवलेकर, आचार्य रामदेव जैसे महान् विद्वानों ने इस विश्वविद्यालय के छात्रों को विद्या–दान देकर सुयोग्य बनाया। सुयोग्य आचार्यों के चरणों मे बैठकर यहाँ के ब्रह्मचारी विशेष योग्यता प्राप्त करते रहे।

इस विश्वविद्यालय में आधुनिक विषयों के अध्यापन की भी उत्तम व्यवस्था रही है किन्तु प्राच्य विद्याओं–वेद, संस्कृत, दर्शन, योग, एवं इतिहास तथा प्राचीन भारतीय संस्कृति के अध्ययन–अध्यापन और अनुसन्धान पर विशेष बल दिया जाता है। वेद के मूर्धन्य विद्वान गुरूकुल के आचार्य पद को अलंकृत करते रहे है, इन आचार्यों की मणिमाल में आचार्य रामप्रसाद जी वेदालंकार का स्थान सम्मान पूर्वक स्मरण किया जाता रहेगा। मुझेउनके साथ विभिन्न रूपों में कार्य करने का अवसर प्राप्त हुआ। उनके व्यवहार में कभी कोई प्रदर्शन या असत्य दूर दूर तक नही होता था। मानवीय गुणों से परिपूर्ण आचार्य जी की मधुर वाणी सबको सदा सुख प्रदान करती थी। वे गुरूकुलीय परम्पराओं के प्रबद्ध पोषक थे, वेद एवं आर्यधर्म के रक्षक थे। अपने साथियों का सदा शुभचिन्तन करते थे। कभी किसी का अहित नही चाहते थे। विश्वास ही नहीं होता कि अब वे हमारे मध्य नहीं है। 63वर्ष की अल्पायु में वे अपनी जीवन–यात्रा पूर्ण कर अनन्त में विलीन हो गये, किन्तु अपने पीछे शुभकर्मो की सुगन्ध छोड़ गये है। आज भी उनके छोटे बड़ेसभी साथी उन्हे प्रेम आदरपूर्वक स्मरण करते है।

मै अपने अग्रज आचार्य रामप्रसाद जी को अपनी भावपूर्ण श्रद्धांजलि अप्रित करता हूँ।

–डॉ0 श्यामनारायण सिंह
प्रोफेसर, इतिहास विभाग
कुलसचिव, गुरूकुल कांगड़ी वि0वि0
हरिद्वार

आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार : एक अद्‌भुत व्यक्तित्व

श्री रामप्रसाद वेदालंकार का जन्म वर्तमान पाकिस्तान में हुआ था। भारत–पाक विभाजन के पश्चात् कुछ वर्ष यमुनानगर में उनका परिवार रहा, उसके पश्चात् श्री रामप्रसाद जी का परिवार चन्दौसी में जाकर स्थायी रूप में बस गया। पाकिस्तान में आपका परिवार खाते पीते परिवारों में गिना जाता था। इनके पिताजी का स्वर्गवास बहुत पहले ही हो चुका था। यहाँ चन्दौसी में बड़े भाई के निर्देशन में कपड़े का व्यापार प्रारम्भ किया था। चन्दौसी के धनीमानी व्यक्तियों के हाथ में कपड़े का व्यापार था। कुच्छेक पंजाबी परिवार जो सब प्रकार से उजड़कर आये थे, वे कपड़े के धनी व्यापारियों के सामने कहाँ टिक पाते? कई बार घर में खाने की समस्या भी आ जाती थी। व्यापार में लाभ की बजाय घाटा हो रहा था। जो भी पूँजी बची थी वह भी प्रायः समाप्त सी हो गई थी।

श्री राम जी! उन दिनों की दारुण गाथा सुनाते सुनाते भाव विह्वल हो जाया करते थे। "वे सुनाया करते थे कि बहुत सोच विचार के बाद मेरे बड़े भाई ने एक तरीका निकाला। उन्होंने कहा जो कपड़ा दिल्ली से जिस भाव क्रय किया जाय, उसे, उसी भाव चन्दौसी में बेचा जाय। एक गांठ कपड़े में लगभग कुछ भी नहीं बचता था। जिस कपड़े में बांधकर कपड़े की गांठ आती थी, वही कपड़ा बचता था। उसे ही बाजार में बेचा जाता था। उसे ही लाभ मानकर सन्तोष कर लिया जाता था। इससे यह लाभ हुआ कि ग्राहक टूटकर हमारी दुकान पर आने लगे। एक दिन में कई गांठ कपड़ा बिकने लगा। उसके बाद कुछ लाभ भी लेना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार हमारा व्यापार जम गया और लाभ होने लगा"।

सम्भवतः ईश्वर को यह स्वीकार नहीं था कि रामप्रसाद जी व्यापारी बने। आप आर्य समाज के उत्सवों में जाने लगे, वहाँ से स्वाध्याय की प्रेरणा मिली। उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश का आद्योपान्त अध्ययन किया। व्यापार से मन उचटने लगा। व्यापार में भी सत्य का व्यवहार होना चाहिये, यह क्रियात्मक रूप से करने भी लगे। इन बातों को लेकर बड़े भाई से कई बार विवाद भी हुआ। इनके मन में आर्य पद्धति से व्याकरण पढ़ा जाय, यह पुनः पुनः विचार आने लगा। इसी समय आपने हाईस्कूल यू0पी0 बोर्ड से उत्तीर्ण कर लिया। व्यापार से मन उचट गया। घर पर मन नहीं लगता था। कभी कहीं, कभी कहीं सत्संगो में जाने लगे। इन सब बातों को देखकर परिवार वाले चिन्तित रहने लगे। कभी यह साधु न बन जाय। परिवार में यह

चिन्ता सबसे अधिक इनकी बड़ी बहिन श्रीमती लाली देवी को रहने लगी। उन्होंने अपने पतिदेव को यह कार्य सौंपा और कहा आप तो आर्यसमाजी हैं, कहीं पर ऐसी संस्था का पता लगाया जाय, जहाँ पर बड़ी आयु के बच्चे भी संस्कृत आदि पढ़ सकते हों। एक व्यक्ति से उन्हें ज्ञात हुआ कि ऐसी संस्था श्रीमद्दयानन्द उपदेशक विद्यालय यमुनानगर (उस समय के पंजाब) हरियाणा में है। यहाँ के आचार्य आर्यसमाज मूर्धन्य वीतराग सन्यासी स्वामी आत्मानन्द जी महाराज हैं। श्री रामप्रसाद जी के बहनोई एवं बहिन श्रीमती लाली देवी यमुनानगर में आप को छोड़ आये। राम जी को ऐसा लगा जैसा कि मेरा मनचाहा स्वप्न पूर्ण हो गया हो।

छोटी त्रुटि से असाध्य रोग :-

जब आप हाईस्कूल कर रहे थे, उस समय विज्ञान की क्रियात्मक परीक्षा की तैय्यारी के लिये कैमिकल एक पात्र में रखा हुआ था। रात्रि में लगभग दस बजे इनकी माताजी इनको मस्तिष्क को शक्ति प्रदान करने के लिये ब्राह्मी आदि का पेय देती थी, वे पीने के लिए लाई, आपने कहा "अम्माँ इसे रख दो मैं पढ़ रहा हूँ। सोते समय मैं पी लूंगा"। रात्रि को देर तक पढ़ते रहे। वह लाल्टेन का युग था। बिजली की सुविधा नही थी। लाल्टेन बुझाकर सोने लगे तो याद आया कि मैंने वह औषधि पी ही नहीं है। हाथ बढ़ाया और औषधि समझकर समीप में रखे हुये कैमिकल को पी गये। घर में किसी को न तो जगाया और न बतलाया ही। यह समझकर कि जीवन कुछ घन्टों का ही बचा है, किसी को क्यों कष्ट दिया जाय। कुछ समय बाद नींद आ गई तो सो गये। प्रातःकाल निद्रा खुली तो अपने आप को जिन्दा पाया। इस घटना के कुछ दिन बाद आप उपदेशक विद्यालय यमुनानगर में आ गये। इस घटना के कुछ समय बाद त्वचा में रोग के कुछ लक्षण प्रकट होने लगे। उन्हें सामीन्य फोड़े फुंसी मानकर उपचार कराया गया। उपचार से यह त्वचा रोग दब जाता था परन्तु कुछ समय बाद पुनः आ जाता था। इस रोग के उपचार हेतु आयुर्वेद, एलोपैथी, होम्योपैथी और प्राकृतिक चिकित्सा आदि सभी चिकित्सा पद्धतियों से उपचार होता रहा, परन्तु सभी चिकित्सा पद्धतियों से अल्पकालिक लाभ ही होता रहा। उनका विद्या के प्रति इतना अनुराग था कि यह रोग उनको संकल्प से विचलित नहीं कर पाया। आप उपदेशक विद्यालय में रात दिन अध्ययन करते रहते थे। विशेष रूप में व्याकरण और वेद को विशेष रुचि से पढ़ते थे। थोड़े से समय के बाद ही उपदेशक विद्यालय के योग्य छात्रों में आपकी गिनती होने लग गई।

मैं 1960 में स्वामी ओमानन्द (तत्कालीन आचार्य भगवान देव) जी की प्रेरणा से हाईस्कूल उत्तीर्ण करने के पश्चात् स्वामी आत्मानन्द जी महाराज के चरणों में योग सीखने एवं वेद, दर्शन और व्याकरण का अध्ययन करने के लिये आया। यहीं पर श्री रामप्रसाद जी से

भेंट हुई और कुछ समय के पश्चात् मित्रता में परिवर्तित हो गई। आप अपनी सेवा, विनम्रता और योग्यता से आश्रम एवं उपदेशक विद्यालय के मुख्याधिष्ठाता पण्डित विद्याधर स्नातक के विश्वास पात्र बन गये। आप यहाँ से अधिक से अधिक स्थानों पर वेद प्रचार हेतु जगाधरी, यमुनानगर और अम्बाला आदि स्थानों पर जाते रहे, इस प्रकार उनका धीरे धीरे विस्तृत कार्यक्षेत्र बन गया।

जनगणना में प्रचार :–

कुछ समय पश्चात् नैष्ठिक ब्रह्मचारी इन्द्रदेव जी (वर्तमान में स्वामी इन्द्रवेश) उपदेशक विद्यालय में महाभाष्य पढ़ने के लिये आये। एक ही उद्देश्य होने के कारण उनकी, मेरी और श्री रामप्रसाद जी से गहरी मित्रता स्थापित हो गई। पंजाब में जनगणना का कार्य प्रारम्भ हो गया। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की अधिसूचना आश्रम में आई कि उपदेशक विद्यालय के छात्रों को अपने समीपवर्ती क्षेत्र में भेजो कि जा–जा कर जनता को प्रेरित करें वे सभी अपनी मातृभाषा के स्थान पर हिन्दी मातृभाषा लिखवायें। उपदेशक विद्यालय के प्रशासन ने छात्रों को मार्ग व्यय देकर हिन्दी भाषा के प्रचार एवं प्रसार हेतु भेजना प्रारम्भ कर दिया। हम तीनों ने निर्णय लिया कि हम ब्रह्मचारी हैं, हमें संस्था से मार्ग व्यय नहीं लेना चाहिये। हम तीनों मुख्य–अधिष्ठाता श्री विद्याधर जी स्नातक के पास गये और उन से निवेदन किया कि "हम आपसे मार्ग व्ययादि कुछ भी नहीं लेंगे। हमें केवल जाने की अनुमति प्रदान कीजिये। हमने निर्णय लिया कि पद–यात्रा करेंगे। जो भी ग्राम सामने आयेगा, वहाँ पर हिन्दी को अपनी मातृभाषा लिखाये आदि लोगों को समझाते हुये अगले गांव में जायेंगे। यह भी संकल्प था कि यह भूलने का प्रयास भी करेंगे कि यमुनानगर शहर किस दिशा में है। इस तरह प्रचार करते हुये लगभग एक सप्ताह व्यतीत हो गया। एक दिन घटना घटी कि वर्षा ऋतु होने के कारण कई गांवों में बाढ़ आई हुई थी। हम उस पानी में से ही चलकर गांव के अन्दर जाने लगे। पानी बढ़ता गया, एक स्थान पर सिर से ऊपर जाने लगा। मैं और इन्द्रवेश जी तो तैरना जानते थे। परन्तु राम प्रसाद जी तैरना नहीं जानते थे। हम दोनों उनके दोनों ओर होकर हाथ का सहारा दिया और थोड़ी देर में ग्राम में पहुँच गये। लगभग रात हो चुकी थी। हम तीनों ग्राम प्रधान के घर गये, उनको बतलाया कि स्वामी आत्मानन्द जी महाराज ने हमें भेजा है। रात्रि में लगभग 50 युवकों की सभा हुई, हम तीनों ने सभा में भाषण दिया। वह गांव राजपूतों का था। हमनें, 'राजपूतों में बुराइयां व्याप्त हैं, शराब पीना, मांस खाना और स्त्रियों का पुनर्विवाह न होना' आदि कुप्रथाओं के विरुद्ध भाषण दिया। छोटी सी आयु में एक लड़की के विधवा होने पर, उस का पुनः विवाह न करने के कारण गांवों में व्यभिचार फैल रहा है, उसकी चर्चा पहले भाषणों में की गई फिर आपस के वार्तालाप में भी विस्तारपूर्वक चर्चा हुई। हम

तीनों प्रातः नित्य कर्म से निवृत हुये और सरपंच से निवेदन किया कि हम आपके परिवार के साथ मिल कर यज्ञ भी करेंगे। उनका ज्येष्ठ पुत्र और उसकी पत्नी यजमान बने। यज्ञ के पश्चात् हमने सत्संग की महिमा पर भाषण दिये। अगले दिन हम अन्य चार ग्रामों में जनजागरण करते पद यात्रा करते हुये आगे बढ़ते चले। जब हम वापिस लौटे तो हमारे पास बिना मांगे कई सौ रुपये एकत्रित हो गये। इस यात्रा को हम तीनों कभी विस्मरण नहीं कर पाये थे। जब भी मिलते थे, तभी इस यात्रा का कोई न कोई संस्मरण याद आ जाता था।

हमारी अवस्था वह थी कि 'आगे चलकर हम देश का कायाकल्प कर देंगे', यह हम उस समय कल्पना किया करते थे।

1961 में रामप्रसाद जी श्रीमद् दयानन्द उपदेशक विद्यालय के स्नातक बने। उन्होंने वहाँ की सर्वोच्च उपाधि 'सिद्धान्त शिरोमणि' उत्तीर्ण की। स्वामी आत्मानन्द जी के स्वर्गवास के पश्चात् उपदेशक विद्यालय की स्थिति डावांडोल होने लगी। उस समय उपदेशक विद्यालय के आचार्य श्री रामदेव जी थे। वे सेना से सेवानिवृत्त होकर आये थे। वे व्यवस्थापक के रूप में मिलिट्री प्रशासन ही चलाना चाहते थे जो उस विद्यालय में सम्भव नहीं था। इसलिए उपदेशक विद्यालय के विद्यार्थियों और आचार्य रामदेव जी की अनबन रहने लगी। इसका परिणाम यह निकला कि उपदेशक विद्यालय यमुनानगर से भटिण्डा (पंजाब) स्थानान्तरित कर दिया गया। रामजी स्नातक बनने के पश्चात् उपदेशक विद्यालय में ही अध्यापन–कार्य करने लगे। और भटिण्डा में उन्होंने लगभग दश मास तक पढ़ाया भी था। लगभग जून 1962 में माननीय स्नातक जी के साथ वे भ्रमण करने के लिए हरिद्वार आये। जब उन्होंने गुरुकुल कांगड़ी का अवलोकन करते हुए वेद महाविद्यालय को देखा तो उन्होंने गुरुकुल कांगड़ी में वेद पढ़ने की जिज्ञासा प्रकट की। वे तत्कालीन आचार्य प्रियव्रत से मिले और वेद महाविद्यालय में प्रवेश लेने की प्रार्थना की। गुरुकुल कांगड़ी में उस वर्ष प्रथम बार बाहर से छात्रों के प्रवेश का ज्ञापन हुआ था। इस प्रकार रामप्रसाद जी को गुरुकुल कांगड़ी, वेद महाविद्यालय की विद्या विनोद प्रथम खण्ड कक्षा में प्रवेश मिल गया और वे यहाँ पर अध्ययन करने लग गये। सितम्बर 1962 में उपदेशक विद्यालय भटिण्डा– में एक दुर्घटना घटी जिसके कारण वहाँ के समस्त छात्र उपदेशक विद्यालय को छोड़कर अन्य संस्थाओं में पढ़ने के लिए चले गये थे। जैसा कि मैं बतला चुका हूँ कि मेरी और राम प्रसाद जी की उपदेशक विद्यालय यमुनानगर में ही अभिन्न मित्रता हो गयी थी। मैंने उनको गुरुकुल कांगड़ी के पते पर पत्र लिखा था कि क्या मेरा भी प्रवेश गुरुकुल कांगड़ी में हो सकता है? मैं उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही गुरुकुल कांगड़ी में पढ़ने की इच्छा से आर्य वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर में आ गया। विद्याविनोद प्रथम खण्ड में ही मेरा भी प्रवेश हो गया।

हम दोनों प्रतिदिन साथ–साथ पैदल ही वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर से पढ़ने के लिए गुरुकुल कांगड़ी जाया करते थे। यहाँ यह बतलाना आवश्यक है कि मैं और रामप्रसाद जी ऐसे पहले छात्र थे जो गुरुकुल के छात्रावास से बाहर आर्य वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर में रहते थे। यहाँ यह भी ज्ञातव्य है कि हम दोनों से पूर्व आर्य वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर में गुरुकुल कांगड़ी के छात्रों को रखने का नियम नहीं था। हम दोनों उपदेशक विद्यालय में पढ़े थे इसलिए भाषण देना भलीभांति जानते थे। आर्य वानप्रस्थ आश्रम ने अपनी अन्तरंग सभा में वेद महाविद्यालय में पढ़ने वाले पांच छात्रों को आश्रम में निवास की अनुमति प्रदान की थी। मैं क्योंकि नमक और मीठा उन दिनों नहीं खाता था। रामप्रसाद जी भी त्वचा रोग से पीड़ित होने के कारण उन्हें वैद्य ने नमक खाने को मना किया था। इसलिए हम दोनों स्वयं पाकी बन गये। उस समय हम जितने प्रेम से रहते थे जिसके कारण हमें शीघ्र ही आश्रम में रामलक्ष्मण की जोड़ी के रूप में लोगों ने कहना प्रारम्भ कर दिया था। हम दोनों का आर्थिक आधार केवल गुरुकुल कांगड़ी से मिलने वाली 40 रुपये प्रतिमाह की छात्रवृत्ति ही थी। दोनों कभी–कभी बाहर बोलने के लिए जाते थे इसलिए हम दोनों का गुजारा अच्छी तरह हो जाता था। हमें आर्थिक चिन्ता कभी भी नहीं रही। हम दोनों ने आश्रमवासी अथवा अन्य किसी व्यक्ति से अपने खर्चे के लिए पैसा नहीं मांगा। हम दोनों जब गुरुकुल जाते थे तब राम जी प्रायः कपड़े पहनने में विलम्ब करते थे, सो हम दोनों गुरुकुल कांगड़ी की प्रार्थना में विलम्ब से ही पहुंचते थे। उस समय प्रार्थना में अनुपस्थित होने पर दो आने प्रति छात्र अर्थदण्ड था। जो प्रायः हम पर हो ही जाया करता था। जब हम वेदालंकार प्रथम वर्ष में आये तो मैं ग्रीष्मावकाश में अपने घर गया। वहाँ मेरे पिताजी ने 250 रुपया मुझे आग्रहपूर्वक दे दिया था। मैंने आकर वे रुपये रामप्रसाद जी को दिये और कहा कि इनकी साइकिल खरीदेंगे। पहले तो वे मुझसे लड़ने लगे कि तुम घर से रुपया क्यों लाये हो। मेरी हठ पर उन्होंने साइकिल तो खरीद ली, परन्तु निर्णायक रूप में मुझे कहा कि आगे तुम कभी अपने घर से रुपये लाये तो हम दोनों साथ नहीं रह पायेंगे। इस प्रकार धीरे–धीरे हम दोनों 1966 में गुरुकुल के स्नातक बन गये। अध्ययन करते समय रामप्रसाद जी की रुचि वेद में थी और मेरी रुचि दर्शन में अधिक थी। इसलिए दोनों ने वेद और दर्शन में क्रमशः प्रवेश लिये। हम दोनों के परस्पर सम्बन्ध इतने गहरे थे कि परस्पर बातचीत करते समय हम औपचारिकता नहीं रख पाते थे। बहस करते–करते कई बार वे क्रोधित हो जाते थे तो वे मेरी पिटाई भी कर देते थे। मैं रुष्ट होकर जब दूसरी जगह चला जाता था तो वे मुझे ढूंढते–ढूंढते दूर तक चले जाते थे और मनाकर ले आते थे। मुझे बाहर का कार्य करना अच्छा नहीं लगता था। इसलिए क्योंकि हम दोनों स्वयं पाकी थे। आटा पिसवाने के लिए कन्धे पर रखकर कनस्तर ले जाना पड़ता था। मैं

कभी भी आटा पिसवाने नहीं गया, वे ही स्वयं जाते थे। आर्य वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर के अन्दर (स्व.) गंगाप्रसाद चीफ जस्टिस् के आवास में हम दोनों ऊपर वाले कमरे में रहते थे। हमने दो स्टोव रखे थे। घर का कार्य यद्यपि मैं खूब कर लेता था। परन्तु बाहर का कार्य वे स्वयं ही करते थे। मुझे अच्छी तरह याद है कि मैंने अपनी जिद् के कारण कई बार उनको बड़ी कठिनाई में डाला। एम.ए. द्वितीय वर्ष में मैंने लघु शोध प्रबन्ध लिया था। जिसे मैंने हाथ से तो लिख दिया था परन्तु टाइप कराने के लिए हमारे पास रुपये नहीं थे। रामप्रसाद जी समस्या के समाधान के लिए वानप्रस्थ आश्रम के प्रधान महात्मा हरप्रकाश से मिले और उनको इस समस्या से अवगत कराया। महात्मा जी ने उन्हें कहा आप जयदेव से एक प्रार्थना पत्र ले आओ मैं उसे स्वीकृत करा लूंगा। जब आकर के रामप्रसाद जी ने मुझे कहा कि प्रार्थना पत्र लिख दो तो मैंने लिखने से मना कर दिया। और कहा "मैंने जिन्दगी में कभी पैसे के लिए याचना नहीं की है"। तथा यह भी निवेदन किया कि "मैं हाथ से ही लिखकर 'लघु शोध प्रबन्ध' जमा करा दूंगा"। जब महात्मा हरप्रकाश जी ने उनसे पूछा कि "आपने प्रार्थना पत्र नहीं दिया"। तो उन्होंने महात्मा से कहा "जयदेव जिद्दी है उसने लिखने से मना कर दिया"। दूसरे दिन महात्मा हरप्रकाश स्वयं आये और मुझे 100 रुपये दे गये और कहा "यह तो लो और भगवान प्रबन्ध करेगा"।

आर्य वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर में धीरे–धीरे छात्रों की संख्या 35 हो गयी थी। अनेक बार अधिक छात्र होने के कारण छात्रों में विवाद अथवा वे ऐसे काम भी कर बैठते थे जो आश्रम की मर्यादाओं के अनुकूल नहीं होते थे। परन्तु रामप्रसाद जी छात्रों को समझा लेते थे और उन विवादों को आश्रम के अधिकारियों तक नहीं पहुंचने देते थे। उनकी वाणी में एक प्रकार का विशेष आकर्षण था। इसलिए वे शीघ्र ही वक्ता के रूप में विख्यात हो गये। यहाँ एक अन्य घटना का उल्लेख करना भी उचित ही होगा– जब हम दोनों विद्याविनोद में अध्ययन करते थे तो उन दिनों व्यास आश्रम स्थापित हुआ ही हुआ था। एक दिन माता भागवन्ती पूछते–पूछते हम दोनों के पास आयीं और कहा "मैंने सुना है तुम दोनों स्वामी आत्मानन्द जी के शिष्य हो"। मैं भी स्वामी आत्मानन्द जी की शिष्या हूँ। इस नाते तुम दोनों मेरे धर्म भाई हुए। और मैं तुम्हारी बड़ी बहन हुई। मैंने यहाँ व्यास आश्रम की स्थापना की है। उसमें एक अप्रैल से 7 अप्रैल तक साधना शिविर लगता है जिसमें आनन्द स्वामी जी महाराज ध्यान सिखाते हैं। इसी अवसर पर किसी एक वेद का पारायण यज्ञ भी होता है। बस इसके बाद तुम दोनों ही उस यज्ञ को सम्पन्न कराया करोगे। और मैं तुम्हें प्रतिवर्ष निमन्त्रण भी नहीं भेजूंगी क्योंकि बहन और भाईयों के कार्य के विभाजन में निमन्त्रण भी नहीं दिया जाता है। बस इस प्रकार लगभग 1963 में व्यास आश्रम में हम दोनों का जाना प्रारम्भ हुआ और वह निर्बाध रूप में

रामप्रसाद जी के स्वर्गवास होने तक जारी रहा।

हम दोनों ने प्रथम श्रेणी में एम.ए. की उपाधि 1968 में प्राप्त की। मुझे पं0 सुखदेव दर्शन वाचस्पति ने और रामप्रसाद जी को आचार्य प्रियव्रत ने यह आदेश दिया कि "तुम दोनों गुरुकुल कांगड़ी में सेवा करोगे। ये हमारी दोनों की गुरुदक्षिणा है। इस प्रकार एक अगस्त 1968 को हम दोनों की वेद विभाग और दर्शन विभाग में प्राध्यापक पद पर नियुक्ति हो गयी। नियुक्त होने के पश्चात् भी वानप्रस्थ आश्रम ने अपना नियम भंग करके अर्थात् अपनी अन्तरंग सभा में विशेष प्रस्ताव पास करके हम दोनों को आश्रम में ही रहने के लिए आग्रह किया। अप्रैल 1969 में वानप्रस्थ आश्रम के वार्षिकोत्सव पर कन्या गुरुकुल राजेन्द्र नगर दिल्ली की आचार्य माता ब्रह्मशक्ति अपनी कुछ शिष्याओं सहित पधारी थीं। यह एक प्रसिद्ध उक्ति है कि भगवान ही किससे किसका विवाह होना है, यह निश्चित करके भेज देता है। माता ब्रह्मशक्ति की एक शिष्या सुषमा स्नातिका भी थी। मेरे मन के विचारों को जानकर आनन्दा माता (वानप्रस्थ आश्रम) से रामप्रसाद जी ने माता ब्रह्मशक्ति से बात करने को कहाँ जब तक यह सम्बन्ध पक्का नहीं हुआ तब तक वे (रामजी) दिल्ली कई बार गये। यद्यपि हम दोनों प्राध्यापक लग चुके थे तो भी घर से हम दोनों का कोई विशेष सम्बन्ध नहीं था। इसलिए रामप्रसाद जी ने मुझसे कहा तुमने विवाह के लिए पिता जी से पैसा नहीं लेना है। जैसे हम दोनों अब तक काम चलाते आये हैं, ऐसे ही विवाह भी हो जायेगा। इस प्रकार 4 जून 1969 को मेरा विवाह सम्पन्न हो गया।

वानप्रस्थ आश्रम में विवाह के पश्चात् किसी भी प्रकार रहना सम्भव नहीं था इसलिए मैंने आर्य नगर में किराये पर मकान ले लिया था। और उसमें रहने लगा। छात्र अवस्था में धीरे–धीरे हमारे पास कई बर्तन एवं सामान इकट्ठा हो गया था। मैंने यह कल्पना भी न की थी कि हमारे सामान का कभी बटवारा भी होगा। एक दिन रामप्रसाद जी मेरे यहाँ सारा सामान ले आये और कहने लगे, "जब दो भाई अलग हो रहे हैं तो सामान का भी बटवारा होना चाहिए"। तो मैंने कहा "आपके पास तो कोई और छात्र आ जायेगा, मैंने घर का सब सामान खरीद लिया है लेकिन वो नहीं माने और इस प्रकार उन्होंने पूरे सामान का बटवारा कर डाला।" बटवारा करते हुए उन्होंने कहा "बड़ा पतीला तू ले क्योंकि अब तू गृहस्थी हो गया है, छोटा पतीला मेरे पास रहेगा, क्योंकि मैं अभी अकेला हूँ।" सामान का बटवारा करने के बाद हम दोनों घन्टों रोते रहे। क्योंकि हमने कभी सोचा भी नहीं था कि हम कभी अलग भी होंगे। मेरी माँ और पत्नी इस दृश्य को देखती रहीं। अन्त में हमें अकेला तो होना ही था, परन्तु उस समय की जो स्नेह की अनुभूति हुई थी , वह उसके बाद कभी किसी को नहीं हो पाई। रामप्रसाद जी अध्ययन करते समय प्राध्यापकों, आर्यसमाजियों और छात्रों में बहुत अधिक

प्रसिद्ध हो गये थे, उन दिनों में बहुत से छात्र आये जिनके पास कोई आर्थिक आधार नहीं होता था। वे कहीं न कहीं से किसी को कहकर आर्थिक सहायता का प्रबन्ध कर देते थे। मेरे विवाह के उपलक्ष्य में वानप्रस्थ आश्रम में एक स्वागत यज्ञ का आयोजन किया गया। आशीर्वाद देते हुए रामप्रसाद जी को कहा गया कि तुम भी विवाह कर लो। उन्होंने मजाक में टालते हुए कहा कि "मैं जयदेव जैसा बेवकूफ नहीं हूँ कि दूसरे की लड़की लाकर उसे खिलाऊँ पिलाऊँ"। आश्रम में उनके विवाह की चर्चा जोर पकड़ती चली गयी। मेरे विवाह के लगभग ढाई तीन वर्ष पश्चात् माडल टाउन दिल्ली में हम दोनों को माता दयावती के यहाँ सामवेद पारायण यज्ञ करने के लिए जाना पड़ा। वहाँ माता दयावती ने मुझसे कहा कि "एक सरोज आर्या नाम की लड़की है उसके विवाह के लिए अपने जैसा कोई लड़का बतलाओ मैं उनके संकेत को नहीं समझ पाया और कहा कि "मेरे जैसा तो मैं ही हूँ और मेरा विवाह हो चुका है।" कुमारी सरोज आर्या गौरन्मैंट हायर सैकेण्डरी स्कूल में गृह विज्ञान की अध्यापिका थी। यज्ञ सम्पन्न होने के पश्चात् हम दोनों हरिद्वार लौट आये। किन्तु कुछ दिन के बाद ही माता दयावती का पत्र रामप्रसाद जी के लिए विवाह के प्रस्ताव के रूप में प्राप्त हुआ। और उसके कुछ दिन बाद ही कुमारी सरोज आर्या का पत्र भी प्राप्त हुआ जो रामप्रसाद जी के नाम था, परन्तु सम्बोधन डॉट–डॉट करके खाली छोड़ा हुआ था। रामजी ने मुझसे कहा "जीवन में इस प्रकार के कई अवसर आये, परन्तु उन सब जगह मैंने उस लड़की को बहन कहकर वह सम्बन्ध खत्म कर दिया था, परन्तु इस लड़की को बहन नहीं कह पा रहा हूँ।" मैंने उनसे कहा "अब तुम्हारे अन्दर पानी मर गया है, अब आप इस सम्बन्ध को सहज स्वभाव से स्वीकार कर लो" मैंने रामजी की लाडली बड़ी बहन और विकास नगर वाली बहन को बुलवा भेजा और जल्दी ही रामप्रसाद जी प्रणय सूत्र में बंध गये।

आचार्य प्रियव्रत जी के सेवानिवृत्त होने के पश्चात् वेद विभाग में रीडर पद रिक्त हो गया। उस समय तक रामप्रसाद जी को प्राध्यापक पद पर नियुक्त हुए लगभग पांच वर्ष ही हुए थे। यद्यपि रामप्रसाद जी से सीनियर भारत भूषण विद्यालंकार जी थे, परन्तु विद्वता के क्षेत्र में रामप्रसाद जी का नाम विख्यात हो चुका था, जब ये वेद मन्त्रों की आकर्षक व्याख्या करते थे और मन्त्रों के शब्दों की नई उत्पत्ति करते थे तो बडे–बडे विद्वान अवाक् रह जाते थे कि इतना सुन्दर और अद्भुत अर्थ इन्होंने कैसे किया है? इसलिए साक्षात्कार में उनकी वह प्रतिभा प्रभावशाली रूप में उभर कर सामने आयी। तत्कालीन कुलपति रघुवीर सिहं शास्त्री ने रीडर पद पर उनको नियुक्त कर दिया। वे सामाजिक कार्य और बाहर के कार्यों में इतने व्यस्त हो गये थे कि पी.एच.डी. के लिए पंजीकृत कराने पर भी पी.एच.डी. नहीं कर पाये थे। परन्तु उन्होंने पी.एच.डी. की इस न्यूनता को वेद सूक्तो की व्याख्या करके छोटे–छोटे ग्रन्थ

लिखना प्रारम्भ कर पूर्ण किया। जो कि सामान्य जनता में बड़े ही प्रसिद्ध हुए। एक ग्रन्थ प्रकाशित होता था तो दूसरे ग्रन्थ को प्रकाशित करने की मांग आ जाती थी। इस प्रकार लगभग उन्होंने 40 ग्रन्थ विभिन्न वैदिक विषयों को लेकर लिखे और उनको प्रकाशित भी किया। कुछ दिनों में ही उन्होंने प्रकाशन का एक बहुत बड़ा व्यवसाय सा खड़ा कर दिया। इसलिए अपनी बेटी श्रद्धा के नाम से 'श्रद्धा प्रकाशन' खोला जो थोड़े समय में ही प्रसिद्ध हो गया। उनके ग्रन्थों को प्रायः दानदाता ही प्रकाशित करवाते थे। इसलिए उनके ग्रन्थों में मूल्य के स्थान पर श्रद्धा मूल्य ही लिखा होता था। उनके प्रकाशन में सबसे विशेष बात यह है कि जब वह किसी मन्त्र की व्याख्या करते थे तो इतने भाव विभोर होकर लम्बी व्याख्या करते थे कि जब पाठक उसे पढ़ता तो उस पुस्तक को अधूरी छोड़ने का मन ही नहीं करता था। उन्होंने केवल मन्त्रों की व्याख्या ही नहीं की अपितु अन्य विषयों पर भी छोटे–छोटे ग्रन्थ लिखे। जैसे– आदर्श परिवार, किसको नींद नहीं आती? आदि अनेक ग्रन्थ हैं, जो बहुत अच्छे माने जाते हैं। आगे चलकर जनता की मांगों में अपने भाषणों के कैसेट भी बनाये। आनन्द स्वामी जी के स्वर्गवास होने के पश्चात् जो सन्यासी जैसा भी, मधुरभाषी हो, और जिसके जीवन में सरलता और आध्यात्मिकता पूर्ण रूपेण हो ऐसे यदि कोई थे तो वे केवल रामप्रसाद जी ही थे। इसलिए पंजाब, उत्तरप्रदेश, हिमाचल प्रदेश, हरियाणा, राजस्थान, गुजरात, दिल्ली और महाराष्ट्र आदि सभी प्रान्तों में उनके पास इतने कार्यक्रम आते थे कि वे सब जगह नहीं जा पाते थे। जब वे अपने घर पर होते थे तो समस्त दिन उनके घर पर आने–जाने वालों का तांता लगा रहता था। अपने हाथ से फल काटकर प्रातःकाल से सायंकाल तक आगन्तुकों को खिलाते रहते थे। उनको दूसरों को खिलाने में बड़ा आनन्द मिलता था। उनके कितने ही ऐसे यज्ञमान परिवार थे जो उनके सगे सम्बन्धियों जैसे हो गये थे। उनके घर में जब भी जाओ उनका हँसता हुआ चेहरा सदैव लोगों को पुनः आने के लिए आमन्त्रण सा दे रहा होता था।

1980 में गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के विवाद समाप्त हो जाने के पश्चात् रामप्रसाद जी को गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के आचार्य एवं प्रो. वाइस चान्सलर पद पर प्रतिष्ठित किया गया। इस तरह वे अपने जीवन का विकास करते हुए गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के आचार्य एवं उप–कुलपति बन गये। यहाँ पर भी उनकी प्रसिद्धि और विद्वतापूर्ण उनकी व्याख्यान कला ही उनको आचार्य बनाने का पुनः कारण बनी। यद्यपि यह स्थिति उनके तनाव का कारण भी बनी रही। आचार्य रामप्रसाद जी जहाँ विनम्र थे वहाँ वे फ्रन्टीयर के वीर जुझारु एवं संघर्षशील व्यक्तित्व वाले भी व्यक्ति थे। जब उनको वेद विभाग का अध्यक्ष बना दिया गया तो उनका विरोध होना प्रारम्भ हो गया। विरोध करने पर भी जब

कुछ नहीं हुआ तो शिक्षा पटल में एक प्रस्ताव लाया गया कि वेद विभाग को समाप्त करके वेद विभाग को संस्कृत विभाग में मिला दिया जाय। उस समय मैंने और भाई रामप्रसाद ने मिलकर गुरुकुल के स्नातकों को और आचार्य प्रियव्रत को प्रेरित किया कि यदि गुरुकुल कांगड़ी में वेद ही नहीं रहेगा तो गुरुकुल कांगड़ी का क्या अस्तित्व रहेगा? तत्कालीन कुलपति डा. सत्यकेतु विद्यालंकार ने विवश होकर आचार्य प्रियव्रत वेद वाचस्पति को शिक्षा पटल में विशेष आमन्त्रित सदस्य के रूप में बुलाया। आचार्या दमयन्ती कपूर ने अपनी जोरदार आवाज में कहा कि "वेद को समाप्त करने का प्रस्ताव लाने का साहस किसने किया"। इस प्रकार रामप्रसाद जी के संघर्ष से वेद विभाग टूटने से बच गया। जब वे आचार्य पद पर थे तो कभी भी वे छात्रों के सामने नहीं झुके। किसी भी कीमत पर 60 प्रतिशत की उपस्थिति कम होने पर छात्रों को परीक्षा में बैठने की स्वीकृति नहीं देते थे। उनके एक अत्यधिक साहसपूर्ण कदम की घटना स्मरण हो आती है।

गुरुकुल के किसी कर्मचारी ने कहा कि "मैं एम.ए. की परीक्षा दूंगा। मुझे कोई भी आचार्य जी सहित अध्यापक पकड़कर देखे।" आचार्य रामप्रसाद जी ने इस चैलेन्ज को स्वीकार किया और अपनी कुर्सी डालकर उस कर्मचारी के पास बैठ गये। वह कर्मचारी नकल तो कर नहीं सकता इसलिए अपनी उत्तर पुस्तिका में आचार्य रामप्रसाद जी को गाली लिखना प्रारम्भ कर दिया। परन्तु आचार्य जी ने अपना धैर्य नहीं छोड़ा उसकी सब गालियां सुनते रहे, और उन्होंने कहा "तू चाहे 'रामप्रसाद गाली पुराण" लिख दे, मैं तुझे नकल नहीं करने दूंगा।" इसका परिणाम यह हुआ कि उसने परीक्षा देनी छोड़ दी। इसी सन्दर्भ में एक दूसरी घटना याद आती है। वे मित्रों के मित्र थे। मैं और आचार्य रामप्रसाद जी प्राध्यापक लगे ही थे कि मैंने परीक्षा में एक एम.एस.सी. के छात्र को नकल करते हुए पकड़ लिया। परीक्षा समाप्त होते ही मुझे अनेक छात्रों ने घेर लिया। रामप्रसाद जी भी वहीं पर थे मैंने उन छात्रों को समझाते हुए कहा "मैंने अपने कर्तव्य का पालन किया है, अब तुम जो चाहे कर सकते हो यह तुमको सोचना है।" उनमें से एक छात्र ने क्रोधित होकर हमसे कहा "मेरा पेपर पांच दिन के बाद है मुझे पकड़कर दिखाना"। हमने उस छात्र के चैलेन्ज को स्वीकार कर लिया। परीक्षा अध्यक्ष ने उस दिन मेरी ड्यूटी नहीं लगाई, इन दिनों में रात्रि को मेरे घर पत्थर भी फेंके गये। जब रामजी को इस बात का पता चला तो उन्होंने परीक्षा अध्यक्ष से कहकर अपनी ड्यूटी लगवाई। जिस छात्र ने चैलेन्ज किया था उसको रंगे हाथों पकड़ा। उसने मारने तक की भी धमकी दी। रामप्रसाद जी ने कहा "ऐसे कितने ही छात्र आये हैं और चले गये हैं, तुम्हें जो करना है कर लेना।" इसके परिणाम स्वरूप वह छात्र यहाँ से विद्यालंकार नहीं कर पाया और यहाँ से चला गया। इस प्रकार की घटनाएं उनके मजबूत व्यक्तित्व को परिलक्षित करती थी।

जब उन्होंने लिखना प्रारम्भ किया, तो, धीरे–धीरे उन्हें लिखने का एक व्यसन सा हो गया। चाहे किसी का भाषण हो रहा हो, चाहे वह स्वयं यज्ञ ही करा रहे हो, परन्तु वे अपने लिखने में व्यस्त रहते थे। कई बार कई विद्वानों ने उनका अपमान भी किया। वे विद्वान सोचते थे कि जो हम भाषण दे रहे हैं वे उनको नोट कर रहे हैं और उनको अपने ग्रन्थों में प्रकाशित करेंगे। परन्तु वे अपमान करने पर भी उत्तर नहीं देते थे, परन्तु लिखना भी नहीं बन्द करते थे। वस्तुतः स्थिति यह थी कि उस समय वे किसी का भाषण नोट नहीं कर रहे होते थे, बल्कि उनके मस्तिष्क में मन्त्र की व्याख्या चल रही होती थी, उसको लिपिबद्ध कर रहे होते थे। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में अनेक बार उथल–पुथल हुए हैं और अनेक दलगत राजनीति के संकट के बादल भी मंडराये। उस विषम परिस्थिति में वे विचलित नहीं होते थे उस स्थिति को धैर्यपूर्वक सम्भाल लेते थे। वे स्वयं एक ईमानदार व्यक्ति थे इसलिए हमेशा ईमानदार व्यक्ति को पसन्द करते थे। वे कुछ दिनों विश्वविद्यालय के कार्यवाहक कुलपति भी बने। उस समय वित्ताधिकारी त्यागपत्र देकर चला गया था। वित्त विभाग से इतना जल्दी वित्ताधिकारी का आना सम्भव नहीं था। इसलिए वित्ताधिकारी बनने के लिए कई प्रो. तथा आचार्य रामप्रसाद जी के निकटतम व्यक्ति वित्ताधिकारी बनने के इच्छुक थे। परन्तु उस समय उन्होंने कुल सचिव डॉ. वीरेन्द्र अरोड़ा से कहा "मैं तो पैसे के मामले में जयदेव पर ही विश्वास कर सकता हूँ। अन्य किसी पर नहीं।" और उन्होंने मुझे विश्वविद्यालय का बित्ताधिकारी मनोनीत किया।

9 अप्रैल 1995 का दिन विश्वविद्यालय की शिष्ट परिषद के समय बड़ा ही भयावह दिन था। कुछ स्थानीय बदमाशों ने सभागार में आकर मेजों पर जूतो सहित ऐसा ताण्डव नृत्य किया था कि उस समय सभी शिष्ट परिषद के सदस्य किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये थे। आचार्य रामप्रसाद जी में यह साहस था कि उन्होंने खड़े होकर सबको ललकारा और अपनी ओजस्वी वाणी में बाहर से आये हुए सभी राजनीतिक पाटियों को सम्बोधित करते हुए समझाया कि "इस तरह समस्याओं के समाधान नहीं हुआ करते है। आप अपनी बात शान्ति से कहिए, आप जबरदस्ती निर्णय नहीं करवा सकते हैं।" उनके व्यक्तित्व के विषय में यह प्रसिद्ध उक्ति सिद्ध होती है कि– "न्यायात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः" अर्थात् धीर पुरुष न्याय के पथ से कभी विचलित नहीं होते हैं, चाहे कितनी ही विषम परिस्थिति क्यों न उत्पन्न हो गयी हों।

आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार एक आध्यात्मिक और विद्वान पुरुष थे, उन्होंने अपने व्यक्तित्व को शून्य से विकसित करते–करते उच्च पदों तक विकसित किया था। आजकल सामान्य रूप से पदों को प्राप्त करने के लिए व्यक्ति प्रत्येक प्रकार का गिरे से गिरा साधन अपनाता है। चापलूसी – अवसरवादिता का प्रयोग करके अयोग्य व्यक्ति भी ऊँचे पदों पर

आसीन हो जाते हैं। उच्च पदों वाले व्यक्तियों के पास कई घन्टे बैठक देकर दूसरों की निन्दा करके ऐसे व्यक्ति पद हेतु किसी भी पतित अवस्था तक को प्राप्त करते हैं। परन्तु रामप्रसाद वेदालंकार को जो पद प्राप्त हुए थे, वे सब स्वाभाविक तौर पर थे, न की चापलूसी पर। जिस समय श्री वीरेन्द्र जी विश्वविद्यालय के कुलाधिपति और आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान होते थे और वे पंजाबी भी थे, परन्तु आचार्य रामप्रसाद को कभी भी उनके पास मंडराते नहीं देखा गया। न वो उनके पास बैठकर घन्टों चापलूसी करते थे। दूसरी ओर स्वामी ओमानन्द सरस्वती जो कि पंजाबी भी नहीं थे और वे उस समय सभा के किसी उच्च पद पर भी नहीं थे। आचार्य जी उनके पास जाते थे, उनके चरणों में नतमस्तक होते थे और उनके जीवन से प्रेरणा भी प्राप्त करते थे। जिस समय हम दोनों छात्रावस्था में थे उस समय स्वामी ओमानन्द सरस्वती इधर हरिद्वार में आते थे तो वानप्रस्थ आश्रम में आश्रम के अतिथि न बनकर हम दोनों के पास आकर ठहरा करते थे। उस समय हमारे पास न धन था और न ही कोई उच्च पद था। केवल हमारी स्वामी जी के प्रति श्रद्धा थी और स्वामी जी का हमारे प्रति स्नेह था। उस समय स्वामी जी का आना हमारे पास ऐसे ही था जैसे कि श्री कृष्ण का विदुर की कुटिया में जाकर केले के छिलके खाना। आचार्य रामप्रसाद जी लगभग 15–16 वर्ष तक गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के आचार्य एवं प्रो. वाइस चान्सलर रहे। कभी भी उनको सभा के अधिकारियों को स्टेशन पर छोड़ने अथवा लाते हुए नहीं देखा गया, क्योंकि वे एक सच्चे वेदों के विद्वान् थे। इसलिए स्वाभिमान उनकी सबसे बड़ी पूंजी थी, वे अक्सर कहा करते थे कि हम कणाद, गौतम और वशिष्ठ के प्रतिनिधि हैं। हमें कभी भी धनी एवं राजनीतिक अधिकारियों के समक्ष अपनी गौरवमयी आत्मा को नहीं बेचना चाहिए।

जब वे गृहस्थ आश्रम की व्याख्या करते थे तब श्रोताओं को ऐसा लगा करता था कि जैसे आकाश का स्वर्ग धरती पर उतर आया हो। जो उनके जीवन में नहीं होता था, उस विषय पर कभी नहीं बोलते थे। विवाह से पहले वे एक श्लोक पर बहुत अधिक व्याख्यान करते थे, जिसका भावार्थ था कि– स्वयं परिश्रम से अर्जित किया हुआ धन उत्तम होता है। पिता अथवा नौकरी आदि से प्राप्त धन मध्यम होता है। और स्त्री द्वारा कमाया धन अधम होता है। उनको जो पत्नी मिली वह एक अध्यापिका पद पर काम करने वाली थी जब तक समझा बुझाकर अपनी पत्नी का नौकरी से त्याग पत्र नहीं दिलवाया तब तक उन्होंने उस विषय पर भाषण देना बन्द कर दिया था। उनकी नौकरी छुड़वाने के पश्चात् ही उन्होंने उस श्लोक पर पुनः भाषण करना प्ररम्भ किया। जब आर्य समाजों से कार्यक्रम आते थे तो जिस आर्य समाज के उत्सव पर जाने की स्वीकृति वे देते थे, उसके बाद यह नहीं देखते थे कि अन्य आर्य समाज जो दक्षिणा भी उस आर्य समाज से देने में अधिक समर्थ था, वहाँ न जाकर वहीं जाते

थे, जहाँ पहले स्वीकृति दे दिये होते थे।

आचार्य राम प्रसाद वास्तव में एक व्यक्ति न होकर एक संस्था थे। थोड़े ही काल में उन्होंने जो यश एवं कीर्ति अर्जित की थी। वैसी कीर्ति बहुत थोड़े व्यक्ति प्राप्त कर पाते हैं। जो भी स्त्री पुरुष उनके सम्पर्क में आते, उन सबकी एक अनुभूति होती थी कि राम प्रसाद जी मुझसे ही सबसे ज्यादा स्नेह करते हैं। विवाह से पहले उनके सम्बन्ध सामाजिक रूप में बहुत अधिक लोगों से थे। उनकी पत्नी ने जब उन सम्बन्धों को सीमित करना चाहा तो स्पष्ट रूप से वे अपनी पत्नी से कहा करते थे कि– देखो सरोज! इस बहन से या इस व्यक्ति से मेरा सम्बन्ध तुम्हारे सम्बन्ध से पहले का है। हमारा आध्यात्मिक सम्बन्ध है, तुम इस पर अंकुश लगाने का प्रयास मत करो। वास्तव में वे एक परिवार के न होकर पूरे समाज के थे।

उनके आचार्य काल में जब कोई छात्र आकर यह कह देता था कि आचार्य जी मेरे पास कोई आर्थिक सहारा नहीं है और मैं ऐसे विषय से एम.ए. कर रहा हूँ, जिसमें विश्वविद्यालय मुझे छात्रवृत्ति भी प्रदान नहीं कर रहा है, तो ऐसे छात्रों को वे अपने पास से आर्थिक सहायता प्रदान करते थे। उनके ऐसा करने से उनको इतना यश प्राप्त हो गया था कि वे कितने ही ट्रस्टों के ट्रस्टी बन गये थे। वानप्रस्थ की अनेक माताएं उन पर अगाध श्रद्धा रखती थी। समस्त भारत में अनेक ऐसे व्यक्ति थे जो आचार्य रामप्रसाद जी को अपना संरक्षक मानते थे। संरक्षक बनने में कई बार लोगों ने उन्हें धोखा भी दिया। उनके विद्यार्थी जीवन में एक बार की घटना है कि एक विद्यार्थी जिसने महाविद्यालय ज्वालापुर में शिक्षा प्राप्त की थी। रामप्रसाद जी को संरक्षक बनाकर ऋषिकेश में संस्कृत महाविद्यालय में पढ़ने लगा। एक रात को वह आश्रम में आया, राम प्रसाद जी ने उसको नीचे कमरे में जहाँ एक सेवक रहता था उस कमरे में रात को ठहरा दिया। प्रातःकाल हम दोनों गुरुकुल में पढ़ाने चले गये, जब दोपहर वापस लौटे तो वह सेवक रोते हुए मिला, उसने शिकायत की, "वह आपका छात्र मेरे एक हजार रुपये चुराकर चला गया, मैं गरीब व्यक्ति हूँ मैं एक हजार रुपया कहाँ से लाऊंगा"। रामप्रसाद जी ने कहा– "रुपया आपका नहीं, हमारा गया है। आप चिन्ता न करें, आपको रुपया लौटा दिया जायेगा"। उस छात्र का एक थैला ऊपर रामप्रसाद जी के कमरे में रखा हुआ था। सायंकाल जब मैं भ्रमण करके वापस लौटा तो उस समय देखा कि वह छात्र रामप्रसाद जी को यह कहकर लज्जित कर रहा था कि– "मैं आपके यहाँ क्या रुका कि आप मुझपर चोरी का आरोप लगा रहे हैं"। इस तरह वह बुरी तरह रामप्रसाद जी को डांट रहा था। मेरे आने पर वे मुझे एक तरफ ले गये और मुझे कहने लगे कि यह तो बहुत ही सात्विक बालक है, मैंने इस पर बेकार ही चोरी का आरोप सेवक के कहने पर लगा दिया। अब मुझे प्रायश्चित करना पड़ेगा। मैंने उनसे कहा "आप यह विश्वास पूर्वक कैसे कह सकते हैं कि यह सत्य बोल रहा

ज्ञान-विज्ञान की भूमि को व्रताभ्यास से उर्वर बनाए रखने वाला आदर्श आचार्य

निधन से दो दिन पूर्व वह सपत्नीक बस की प्रतीक्षा करते हुए मुझे सिंहद्वार पर मिले, सदा की तरह मुस्कराते हुए, स्नेहार्द्र आँखों में एक विशेष चमक लिए। बातचीत हुई, परिवार के बारे में पूछा और फिर मेरे अनुरोध पर किसी दिन आतिथ्य की कृपा के लिए कुटीर पर पधारने का आश्वासन देकर वह यात्री की प्रतीक्षा मुद्रा में आ गए। उनकी यह धर्मयात्रा महायात्रा में बदल जाएगी, यह कौन जानता था? कभी न मिलने के लिए वह बिछुड़ गए। हा, दुर्दैव! तेरा वज्रव्यवहार न बदला है और न बदलेगा।

मैंने उन्हें विद्यार्थी, अध्यापक, रीडर, प्रोफेसर, आचार्य एवं कार्यवाहक कुलपति के रूप में देखा है। पद का अभिमान सदैव उनसे दूर रहा। गुरुकुल के आचार्य पद की महिमा उन्होंने बनाए रखी। वह वेदमूर्ति आचार्य प्रियव्रत जी तथा पंडित रामनाथ जी वेदालंकार की परम्परा का ह्रदय से निर्वाह करते रहे। छान्दोग्य उपनिषद् पर वह शोध कार्य में भी प्रवृत्त हुए पर वेदप्रचार तथा प्रशासनिक कार्यों में फँसे रहने के कारण इस कार्य को पूरा न कर सके। मैं उन्हें जब भी याद कराता, हँस पड़ते और निरीह मृग के जाल में फँस जाने की छटपटाहट याद कराते हुए बिहारी का आधा दोहा पढ़ते – **'ज्यों ज्यों सुरझि भज्यौ चहत, त्यों त्यों उरझत जात।'** उन्होंने वेद को सामान्य जन तक ले जाने का व्रत लिया, वह बड़ा पाण्डित्यपूर्ण ग्रन्थ लिख सकते थे पर जन सामान्य के लिए छोटी छोटी शताधिक पुस्तकें लिखकर उन्होंने संतोष कर लिया। अपने इस कार्य में उन्हें आशातीत सफलता मिली। उनकी इन लघुकाय पुस्तिकाओं ने वेदों के प्रति जन सामान्य को आकृष्ट किया। वेद की चर्चा घर घर पहुँची। ऋषि दयानन्द की यही आकांक्षा थी, उन्होंने ऋषि ऋण से उऋण होने के लिए जीवन भर व्रताभ्यास किया। परमेश्वर ने भी तो सब मनुष्यों के लिए इस कल्याणकारी वाणी को प्रकट किया है– **यथेमां वाचं कल्याणी मावदानि जनेभ्यः,**। स्त्री–पुरुष, नर–नारी, बाल–वृद्ध सभी के लिए जीवनदायी है यह वाणी और जो इस वाणी की उपासना करता है, व्याख्या–उपदेश करता है, वह परमात्मा का कार्य करता है। वह द्विज थे। उन्हें श्रुतियों के व्रताभ्यास ने पवित्र कर दिया था। **'पावमानी द्विजानाम्'** कथन उनका मार्ग दर्शक था।

उनकी एक पुस्तिका 'वरदा वेदमाता' उनके उद्देश्य को स्पष्ट कर देती है। भर्तृहरि शतक उन्हें प्रिय था। मैंने उनके प्रवचनों में प्रायः भर्तृहरि के श्लोकों के उद्धरण सुने हैं। वह मंत्रों की रोचक एवं सरल व्याख्यायें करते थे।

उन्हें कुछ वर्ष पूर्व कहीं से यह ज्ञात हुआ कि मैं नित्य अग्निहोत्र करता हूँ। एक दिन वह अचानक घर पर पधारे। आकर उन्होंने मेरी पत्नी को हवन कुण्ड उपहार में दिया, मैं उनके इस स्नेह से अभिभूत था। बोले– आप विद्वान् ब्राह्मण हैं, मैं आपको क्या दूँ? पर आप यह श्रेष्ठकर्म अबाध सम्पादित करते रहें, इस आशा के साथ यह कुण्ड आप लोगों को सौंप रहा हूँ। उनके द्वारा सम्पादित दैनिक अग्निहोत्र तथा यज्ञ सुधा का उपयोग मेरी पत्नी डा0 शैलजा बड़ी श्रद्धा से करती हैं। उन्होंने संध्या–अग्निहोत्र के मंत्र तथा मंत्रार्थ इन्हीं पुस्तकों से सीखे हैं। मेरे वेद के गुरु काशी निवासी पण्डित दत्तात्रेय दीक्षित तथा ब्रह्मचारी भगवान चैतन्य थे। उन्होंने मुझे परम्परागत ढंग से वेद पढ़ाया था पर अर्थ सहित मंत्र का अनुशीलन मैंने आर्यसमाज के सम्पर्क से आकर ही किया। ऋषि दयानन्द, आचार्य प्रियव्रत, आचार्य अभयदेव, आचार्य रामनाथ वेदालंकार तथा रामप्रसाद वेदालंकार की पुस्तकों से वेद के बारे में बहुत कुछ नया सीखा। ऋषि दयानन्द और आचार्य सायण को पढ़ने के बाद ही वेदाध्ययन की दिशा मिल सकती है, ऐसा मेरा विश्वास है। उपनिषद् और ब्राह्मण ग्रन्थों का पूर्ण अनुशीलन भी गुरुकुल आकर ही कर सका। इस प्रकार गुरुकुल मेरी भी ज्ञानभूमि है।

आचार्य रामप्रसाद जी मन, बुद्धि और व्यवहार में समान थे। वह विद्वान् थे, चरित्रवान थे, शील और धैर्य के धनी थे पर उनकी सबसे बड़ी विशेषता थी उनकी निश्छलता। उनमें आजकल के विद्वानों की तरह छद्म शिष्टता नहीं थी। डा. महावीर से वह अक्सर मेरे बारे में पूछते रहते और जब कभी मैं उनसे मिलता तो उनका मुख मण्डल प्रफुल्लित हो उठता। मैं नहीं जानता कि उनके मेरे बीच कौन सा ऐसा सम्बन्ध था जो दैवी सूत्र से जुड़ा था। निष्काम, निःस्पृह तथा ईश्वरीय सम्बन्ध। हाँ कभी–कभी वह भावातिरेक में कह देते थे कि यदि आप हिन्दी में न होकर वेद–संस्कृत में होते तो बहुत बड़ा काम करते। मैं कह देता यदि आप जैसा कोई व्यक्ति कहीं छात्रावास में मिल जाता तो मैं वेदाध्ययन ही करता। ब्राह्मण होने के नाते वेद तो हमने निष्कारण पढ़ा है, यह हमारा धर्म है।

मेरी स्थिति इस समय बड़ी विचित्र है। लिखते हुए भी मर्मान्तक पीड़ा हो रही है, उनके कई संस्मरण हैं जो समयाभाव के कारण नहीं लिखे जा सके, कभी अवसर मिला तो

उस महनीय व्यक्तित्व के कर्तृत्व पर भी सविस्तार लिखूँगा। ज्ञान–विज्ञान और प्रज्ञान की भूमि को अपने कर्तृत्व से निरन्तर हरा–भरा बनाए रखने वाले ऐसे व्यक्ति विरल ही मिलते हैं। इन शब्दों के साथ उनकी स्मृति में अनेक भावभीनी श्रद्धांजलियाँ। उनका परिवार सुखी रहे, उनका चिरंजीव पुत्र उनके अधूरे कार्य को आगे बढ़ाए। आचार्य जी ने जीवन के अन्तिम क्षण तक वेद का कार्य किया। यह उन पर प्रभु की अपार कृपा थी। उनका प्राणान्त भी वेदाभ्यास से ही हुआ, ऐसे प्रभु भक्त वेदनिष्ठ महापुरुष को देखकर ही किसी मनस्वी ने कहा था–

दग्धं दग्धं पुनरपि पुनः काञ्चनं कान्तवर्णं,
न प्राणान्ते प्रकृतिविकृतिर्जायते चोत्तमानाम्।

– डॉ. विष्णुदत्त राकेश
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
गुरुकुल कांगड़ी वि0वि0 हरिद्वार

मेरे प्रेरणास्रोत-आचार्य रामप्रसादजी वेदालंकार

परम सौभाग्य का वह क्षण था, जब प्रथम बार हरिद्वार में गंगा तट पर स्वामी श्रद्धानन्द जी की पुण्यस्थली गुरुकुल कांगड़ी में एक विलक्षण व्यक्तित्व के दर्शन किये थे। आँखों में छलकता हुआ सात्त्विक स्नेह, मुख–मण्डल पर अनोखा आध्यात्मिक तेज, वाणी में अमृत का प्रवाह। गुरुकुल झज्जर में वैदिक वाङ्मय का अध्ययन करते समय देवताओं के स्वरूप की जो कल्पना हृदय में अंकित हो गयी थी, उसका प्रत्यक्ष रूप अपनी आँखों के सामने देखकर मन का मयूर प्रसन्नता से नांचने लगा था। मुझे क्या पता था कि जिस अद्भुत व्यक्तित्व को मेरे प्यासे नयन स्नेह, श्रद्धापूर्वक निहार रहे हैं आगे चलकर इनका स्नेह, आशीर्वाद पाकर मैं धन्य हो जाऊँगा। मैं संस्कृत–साहित्य का एम0ए0 का छात्र था। सौभाग्य से मुझे श्रद्धेय डॉ0 रामनाथ जी वेदालंकार, डॉ0 निगम शर्मा जी एवं प्रो0 वेदप्रकाश जी शास्त्री जैसे अपने विषय के परमनिष्णात गुरु प्राप्त हुए थे, इन गुरुओं का निश्छल स्नेह मेरे लिए सदैव सुलभ था और आज भी है, किन्तु जिस प्यार के सागर को स्मृति के झरोखे से याद कर रहा हूँ वे आचार्य रामप्रसाद जी मेरे क्या थे? मैं इस सम्बन्ध की शब्दों में व्याख्या नहीं कर सकता। लगभग 28 वर्ष तक उनका प्यार, आशीर्वाद अविच्छिन्न रूप से पांता रहा। मुझे एक क्षण भी ऐसा याद नहीं आता, जब वे मुझसे नाराज हुए हो। दुनियां के और तमाम स्नेहिल व्यक्तियों को नाराज होते हुए क्रोध करते हुए देखा है, किन्तु उनको कभी क्रोधी मुद्रा में नहीं देखा। मैं एक विद्यार्थी था, वें वेद–विभाग के प्राध्यापक थे। उस समय भी उनका यश सब ओर फैल रहा था, किन्तु कितनी सहजता, सरलता और निश्छलता थी उनके मधुर व्यवहार में। अहंकार और क्रोध उनको कभी स्पर्श नहीं कर पाता था। बहुत से ऐसे प्रेरक प्रसंग हैं जो आज भी रोमाञ्चित कर देते हैं। कुछ घटनाएं प्रस्तुत कर रहा हूँ–

आचार्य जी के जीवन में कभी–किसी ने आलस्य और प्रमाद नहीं देखा। वेद के प्रचार–प्रसार का कार्य सत्तर और अस्सी के दशक में भी उसी प्रकार करते थे जैसे जीवन के अन्तिम क्षणों में करते रहे।

एक दिन की बात है। आचार्य जी अपना बैग उठाये हुए बड़ी तेजी से रेलवे स्टेशन से वानप्रस्थाश्रम की कुटिया में आते हैं, विश्वविद्यालय में अध्यापन के लिए जाने का समय हो

चुका था, इसलिए सीढ़िया चढ़ते हुए मुझसे कहते हैं – महावीर! जाओ लक्सर का एक टिकट ले आओ। मैंने कुछ नाराज होते हुए कहा– आप अभी तो आये हैं, फिर चलने की तैय्यारी, थोड़ा आराम भी कर लिया कीजिए। मेरी बात सुनकर मुस्कराते हुए कहते हैं– बहस मत करो, ज्वालापुर स्टेशन पर जाकर एक टिकट ले आओ। मैं निरुत्तर हो गया और लक्सर का टिकट लाकर उनके हाथ में दे दिया, लेकिन मेरे आश्चर्य की कोई सीमा न रही जब मैंने देखा कि आचार्य जी ने उस टिकट को फाड़कर फैंक दिया। मैंने टिकट फाड़ने का रहस्य पूछा और आचार्यश्री का उत्तर सुना तो विस्मित हो गया– आचार्यजी कह रहे थे, मैं लक्सर स्टेशन पर उतरकर ज्वालापुर का टिकट नहीं ले पाया था, क्योंकि ट्रेन छूट रही थी और मुझे चिन्ता हो रही थी कि कहीं विश्वविद्यालय पहुंचने में विलम्ब न हो जाये, मैं चलती हुई ट्रेन में चढ़ गया, यह सरकारी चोरी थी इसलिए यह टिकट लेकर मैंने फाड़ दिया है।

धन्य है आचार्यजी आपकी यह शुचिता। इस पवित्रता को आपने कभी नहीं छोड़ा। उपकुलपति के रूप में पंजाब विश्वविद्यालय चंडीगढ़ की चयन–समिति में विषय विशेषज्ञ के रूप में गये। लेखा–विभाग का लिपिक उस समय इनकी मुखाकृति को देखता रह गया जब देयक में केवल साधारण बस का किराया और एक ओर का रिक्शा भाड़ा केवल 5 रुपये भरा हुआ देखा। वह आग्रहपूर्वक अनुनय–विनय करता रहा। प्रो0 साहब आप ये क्या कर रहे हैं? आचार्यजी कहते हैं– ईश्वर की साक्षी में बिल्कुल ठीक कर रहा हूँ, मैं घर से पैदल–पैदल सिहंद्वार पहुँचा, वहाँ से मुझे चण्डीगढ़ की बस मिल गई, बस–स्टैण्ड से पाँच रुपये में रिक्शा करके यहाँ आ गया, यहाँ से आप मुझे वापिस बस–स्टैण्ड छोड़ ही देंगे, फिर बस से हरिद्वार पहुँच जाऊँगा।

उस लिपिक ने अपने सेवाकाल में यह पहला दृश्य देखा था जब चयन–समिति का कोई सदस्य वह भी उपकुलपति टी0ए0 बिल का दो सौ बावन रुपये का चैक प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर रहा था।

आचार्यजी को सारा संसार प्रभुमय दीखता था। घर में, विश्वविद्यालय में यात्रा में सर्वत्र परमपिता परमात्मा की सत्ता प्रतिक्षण उन्हें महसूस होती रहती थी।

आचार्य जी के जीवन के ऐसे अनेक प्रसंग हैं जो स्मरण कराते हैं पं0 दीनदयाल उपाध्याय, श्री लालबहादुर शास्त्री और आचार्य चमूपति सदृश महापुरुषों के पवित्र जीवन को।

मैं एम0ए0 करके शोध–कार्य की योजना बना रहा था। इसी बीच मेरे एक मित्र ने मेरी ओर से उपाधि महाविद्यालय पीलीभीत में संस्कृत प्रवक्ता पद हेतु मुझे न बताते हुए स्वयं आवेदन–पत्र भेज दिया। वहाँ से साक्षात्कार पत्र आया, मैंने जाकर वह पत्र आचार्य जी को दिखाया। वे कहने लगे– तुम्हें साक्षात्कार में अवश्य जाना है। मैंने कहा– मेरा वहाँ कोई परिचित नहीं है, बिना सिफारिश के क्या कोई मेरी नियुक्ति कर लेगा? मैं नहीं जाऊँगा। मेरे स्पष्ट मना करने पर आचार्यजी के मुख से निकले हुए, प्यार भरे उन शब्दों को स्मरण कर सत्ताईस वर्ष बाद भी रोमाञ्चित हो रहा हूँ– महावीर तुम्हें जरूर जाना है। यदि तुम्हारी नियुक्ति नहीं हुई तो आने–जाने का सारा मार्ग व्यय मेरा और नियुक्ति हुई तो तुम्हारा। ढेर सारा आशीर्वाद देकर उस देवता ने मुझे स्नेहपूर्वक पीलीभीत भेजा उनके आशीर्वाद और ईश्वर की कृपा से हंसते–हंसते 21 वर्ष से भी थोड़ी आयु में विभागाध्यक्ष के पद पर नियुक्ति हो गयी। मैंने अपने जीवन के हर मोड़ पर पूज्य आचार्य जी को अपार स्नेह की वर्षा करते हुए पाया है।

पुष्पसम कोमल वज्रसम कठोर–

समय का चक्र बड़ी तीव्र गति से चलता है। आचार्य जी बिना किसी छल प्रपंच के सफलता की सीढ़िया चढ़ते चले गये। प्राध्यापक से रीडर फिर प्रोफेसर, आचार्य, उपकुलपति आदि सम्मानजनक पदों को विभूषित करते हुए आगे ही आगे बढ़ते रहे। ढेर–सारी उपाधियां प्राप्त करने का प्रयास नहीं किया, किन्तु प्रभु–कृपा से बड़ी–बड़ी सभाओं में, शोध–संगोष्ठियों में, आर्यसमाज के विशाल सम्मेलनों में हृदय–गुहा से प्रवाहित होने वाली उनकी वैदिक–ज्ञान गंगा में सहस्रों श्रोताओं को स्नान करते हुए और भक्ति के आँसू बहाते हुए मैंने अनेकों बार स्वयं देखा है। मैं उन ऐतिहासिक क्षणों का साक्षी हूँ जब हमारे गुरुकुल कांगड़ी वि0वि0 में आयोजित विज्ञान की बड़ी–बड़ी शोध संगोष्ठियों में आचार्यजी बोलते तो विभिन्न वि0वि0 के वरिष्ठ प्रोफेसर कहते कि इस जीवन में आज पहली बार ऐसा व्याख्यान सुना है, जिसे मृत्युपर्यन्त कभी नहीं भूलेंगे। आचार्यजी की वाणी बोलती थी, नेत्र बोलते थे, प्रभु–भक्ति की आभा से मण्डित मुख–मण्डल बोलता था और बोलता था जीवन।

आचार्य एवं उपकुलपति के पद पर रहते हुए उन्हें कई बार विषम परिस्थितियों में कुलपति पद का कार्यभार वहन करना पड़ा। स्वभाव से कोमल, किसी भी व्यक्ति के साधारण कष्ट को देखकर द्रवित हो जाने वाले आचार्यजी को गुरुकुल की प्रतिष्ठा एवं सिद्धान्तों के परिपालन में चट्टान की तरह सुदृढ़ रूप में हमने अनेक अवसरों पर देखा है। साधु स्वभाव के

कारण उनकी दृष्टि में न कोई बड़ा था न कोई छोटा, सबके प्रति समदृष्टि, सबका हित–चिन्तन जहाँ गये सबका मन मोह लिया।

जैसे गुरुकुलीय परम्परा एवं आर्य धर्म रक्षा की पवित्र भावना से पूज्य आचार्य प्रियव्रत जी ने अपने प्रिय शिष्य रामप्रसादजी को, दर्शन वाचस्पति पं0 सुखदेवजी ने डॉ0 जयदेवजी को और वेदमूर्ति डॉ0 रामनाथ जी ने प्रो0 वेदप्रकाश जी को दूर–दृष्टि से अपने–अपने विभागों में स्नेहपूर्वक प्रतिष्ठित किया था उसी स्नेहिल भाव से आचार्यजी मुझे पीलीभीत से गुरुकुल कांगड़ी वि0वि0 में ले आये थे।

परमात्मा और उसकी अनुपम कृति वेद पर आचार्यजी की अगाध श्रद्धा थी, इसीलिए अपनी प्यारी बेटी का नाम श्रद्धा रखा। दिन रात सोते–जागते, खाते–पीते, उठते–बैठते उनके मन मन्दिर में वेद का चिन्तन चलता रहता था और लेखनी उस पवित्र चिन्तनधारा को कागज पर अंकित करती रहती थी। यही कारण है कि वेद–विषयक 65 से अधिक पुस्तकें लिखकर लाखों दिलों में वेद की ज्योति जलाई। मैंने विद्वानों की लिखी हुई मोटी–मोटी पुस्तकें देखी हैं, उनमें वैदुष्य होता है किन्तु वे पुस्तकें प्रायः पुस्तकालयों में आलमारियों की शोभा बढ़ाती हैं, उन्हें कभी कोई शोधार्थी पढ़ लेता है, किन्तु आचार्य जी की छोटी–छोटी पुस्तकों को लाखों श्रद्धालुओं ने पढ़ा और बहुतों का जीवन बदल गया। वेद के कठिन से कठिन शब्दों को सरल से सरलतम बना देना और उसे श्रोताओं और पाठकों के हृदय में उतार देना उनकी वक्तृकला और लेखनकला की अद्भुत विशेषताएं थी। वेद बहुत कठिन हैं, विद्वान् ही वेद पढ़ सकता है, इस धारणा को आचार्यजी ने असत्य सिद्ध कर दिया। भारत के विभिन्न नगरों, महानगरों में उन्हें सुनने के लिए लाखों प्रभु भक्त तरसते थे। वे वैदिक विचारों को सबके दिलों में उतार देना चाहते थे। विश्राम करना तो कभी जाना ही नहीं। बड़ी से बड़ी विपत्ति आने पर कभी घबराये नहीं, विचलित हुए नहीं। संकट की घड़ियों में आपका प्रभु–विश्वास और निखर कर चमकता था।

एक कहावत प्रसिद्ध है। पिता पुत्र से और सद्गुरु अपने शिष्य से पराजय चाहता है। इस कहावत के साकार रूप थे पूज्य आचार्यजी। सोचता हूँ– आज की दुनियां में कोई–ऐसा व्यक्तित्व मिलेगा। भुलाये नहीं भूलता वह क्षण– हनुमान रोड, आर्यसमाज देहली में मेरा, प्रो0 एस0सी0 धमीजा का तथा आचार्य जी के अध्ययन काल के सखा डॉ0 सत्यव्रतजी राजेश का रीडर पद का साक्षात्कार था। आचार्य जी कुलपति पद का कार्यभार वहन कर रहे थे। साक्षात्कार से पहले दिन आचार्यजी की पूज्या बहिन जी का विकासनगर (देहरादून) में

स्वर्गवास हो गया। वे अपनी बहिनों को माँ से भी अधिक सम्मान देते थे। क्या करें, एक ओर बहिन की मृत्यु का समाचार दूसरी ओर अपने सखा और शिष्य का साक्षात्कार। हृदय को कठोर किया और देहली पहुँच गये, अनेक दुर्गम बाधाओं को पारकर तीनों को रीडर बना दिया। प्रातःकाल से अन्न का एक कण ग्रहण नहीं किया था। सायं चार बजे हनुमान रोड़ आर्यसमाज से चले, मुझे और डॉ0 राजेशजी को अपने पास बैठा लिया। थैले में से निकालकर भोजन पात्र खोला, तीन परांठे थे एक–एक हम दोनों को दिया एक स्वयं खाया और इन्टरव्यू के निर्विघ्न संपन्न हो जाने पर प्रभु का धन्यवाद करने लगे। मुजफ्फरनगर से अब उन्हें अपनी बहिन को श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने विकासनगर जाना था, हम उतरने लगे, बलपूर्वक हम दोनों की जेब में 50–50 रुपये रखते हुए बड़े प्यार से कहते हैं– बच्चों के लिए मिठाई अवश्य ले जाना। कितना प्यार भरा हृदय था।

आचार्य जी की अपने गुरुओं के प्रति अगाध श्रद्धा थी। पं0 विद्याधर जी, स्वामी आत्मानन्दजी, आचार्य प्रियव्रतजी एवं डॉ0 रामनाथजी वेदालंकार सदृश गुरुओं को प्राप्त कर वे स्वयं को धन्य समझते थे।

विधि का खेल कितना विचित्र है। अन्तिम समय में मुझे अपने स्थान पर ब्यावर (राजस्थान) भेजकर स्वयं चण्डीगढ़ चले गये और स्नेह का बन्धन एक क्षण में इस तरह तोड़ डाला, मानों कभी किसी से कोई ममता रही नहीं। जिस प्रसन्न मुख–मण्डल को देखकर प्रतिदिन आनन्दित हुआ करता था, वह मुख–चन्द्रमा अन्तिम क्षणों में दिखाई न दिया।

आज पूज्य आचार्य जी भौतिक रूप से इस संसार में नहीं हैं किन्तु उनका स्नेह, आशीर्वाद, निश्छल जीवन सदा याद आता रहेगा और प्रेरणा देता रहेगा। उनकी पावन स्मृति को मेरा कोटि–कोटि प्रणाम।

–डॉ0 महावीर
प्रोफेसर एवं निदेशक–
श्रद्धानन्द वैदिक शोध संस्थान
गुरुकुल कांगड़ी वि0वि0 हरिद्वार।

"अखिलम् - मधुरम्"

किसी मनुष्य का जीवन सर्वदा एक रस रहे, यह बड़ा कठिन है। सदा एक रस रह पाना इसलिये भी कठिन है कि मनुष्य – जीवन में उतार–चढ़ाव आते ही रहते हैं। इन उतार–चढ़ावों के माध्यम से समय और परिस्थितिवश कभी नम्रता आती है तो कभी झुञ्झलाहट भी आती है। न चाहते हुए भी यह सब वार्तालाप और व्यवहार में प्रकट भी हो ही जाते है। औरों की क्या कहें? मैं तो संन्यासी हूँ, मुझे झुञ्झलाहट नहीं आनी चाहिये, परन्तु आती है। चाहता हूँ कि ऐसा न हो किन्तु ऐसा लगता है, जैसे कोई बरबस ऐसा मुझसे करा रहा है। यद्यपि यह मेरे अपने व्यक्तिगत हिताहित की दृष्टि से नहीं होता, होता है मात्र सैद्धान्तिक दृष्टि से– परन्तु होता तो है और मैं यह मानता हूँ कि यह मेरी निर्बलता है, मेरा दूषण है और यह चाहता हूँ कि इससे बचा रहूँ, ऐसा न हो, ऐसा न करूँ, किन्तु सफलता नहीं मिल पाती। जब कोई सिद्धान्त विरुद्ध, भ्रान्त, मिथ्या तथा कुतर्कपूर्ण वार्तालाप होता है तो मुझसे सहन नहीं होता। सहन होना चाहिये भी नहीं, किन्तु समाधान तथा उत्तर सरल भाषा में भी दिये जा सकते हैं, मधुर में न सही किन्तु मैं तड़प उठता हूँ और टीसपूर्वक तड़प कर उत्तर देता हूँ। परन्तु एक व्यक्ति मुझे अपने जीवन में ऐसा मिला कि जिसमें कटुता कम से कम मैंने तो कभी भी नहीं पायी।

वह समाधान या उत्तर न दें ऐसी तो बात नहीं थी। समाधान भी करते थे, उत्तर भी देते थे किन्तु अतीव मधुर भाषा में। वार्तालाप में मधुर, भाषण–प्रवचन में मधुर और लेखन में मधुर।

एक समय था, जब मैं आर्य वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर (हरिद्वार) में रहता था। लगभग तीन वर्ष 59 से 62 तक मैं वहाँ रहा। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में शिक्षा ग्रहण करने वाले कुछ ब्रह्मचारी भी वानप्रस्थाश्रम में रहते थे। उनमें एक थे रामप्रसाद जी। रामप्रसाद जी यज्ञ कराने में विशेष रुचि लेते थे, उनकी वाणी भी 'वाग्वै यज्ञं' के अनुसार यज्ञ बन चुकी थी, यज्ञमय बन चुकी थी अथवा जन्मजात ही वाक्–वै–वाग्वै यज्ञः थी। जो भी हो, उनका यज्ञ कराना, पौरोहित्य कार्य सफल था, वह सफल पुरोहित थे।

आर्य वानप्रस्थाश्रम का निवास छोड़कर मैं कुछ दिन छोटा खेड़ा आश्रम में दिल्ली

रहा, फिर लगभग दो वर्ष आर्य समाज मन्दिर शेरकोट जनपद बिजनौर (उ0प्र0) में निवास किया। सन् 1964 से मेरा निवास गंगा तट पर बालावाली जनपद बिजनौर में रहा। वहाँ कार्त्तिक पूर्णिमा पर यजुर्वेद पारायण यज्ञ चार दिन होता था और साथ ही रात्रि को वेद–प्रवचन कार्यक्रम रहता था। रामप्रसाद जी से मैं प्रभावित था ही, वहाँ उन्हें ही यज्ञार्थ बुलाने लगा, साथ में ब्रह्मचारी जयदेव जी को भी।

दोनों ब्रह्मचारी यज्ञ कराते तथा ब्रह्मचारी रामप्रसाद जी द्वारा रात्रि को तीस मिनट प्रवचन भी होता। जो मधुरता यज्ञ कार्य में बिखेरते थे, वही प्रवचन में भी बिखरती थी। श्रोता मन्त्र–मुग्ध होते ही थे, स्वयं मैं भी झूम जाता था। चार वर्ष यही क्रम चलता रहा।

कुछ काल पश्चात् ब्रह्मचारी रामप्रसाद जी आचार्य रामप्रसाद जी हो गये। अपने शिक्षण स्थल गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में ही प्राध्यापक हो गये। पता चलता रहा कि आपका अपने विद्यार्थियों के प्रति भी वही मधुमय व्यवहार है। अन्ततोगत्वा वह अवसर भी आया, जब आपने लेखन–कार्य प्रारम्भ किया तो आपके लेखों, आप की मौलिक रचनाओं, आपकी पुस्तकों में लिखी जाने वाली भाषा में भी वही माधुर्य रस होता था।

वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर में तो मेरा जाना प्रायः प्रतिवर्ष ही होता रहता है। कभी–कभी किसी वर्ष में तो अनेक बार जाना हो जाता था। आप बारम्बार यह माँग करते थे कि वानप्रस्थाश्रम के भण्डार में भोजन न करके मेरे आवास पर किया करें। आप निस्संकोच पहुँचिये, मैं होऊँ या नहीं, वहाँ तो आपकी पुत्री हैं, आप यथा समय पहुँचकर भोजन किया कीजिये। 'भोजन कर सकते हैं', शब्द का प्रयोग कभी नहीं किया। 'भोजन किया कीजिये' ही उनकी वाणी से उच्चारण होता था। उनके आग्रह पर इनके गृह पर भोजन करना प्रारम्भ कर ही दिया। इतने मधुर भाषी देव पुरुष के आग्रह की कब तक उपेक्षा की जा सकती थी। भोजन सुस्वादु, उत्तम तो होता ही था किन्तु उनका 'आगतम्–स्वागतम्' के अनुसार मधुमय आतिथ्य जो था, वह उनके भोजन के स्वाद में भी चार चाँद लगा देता था, फिर तिस पर सोने में सुगन्ध उनकी धर्मपत्नी का मधुमय व्यवहार। इस समय श्री आचार्य रामप्रसाद जी हमारे मध्य में नहीं हैं। परन्तु वह अपना माधुर्य अपनी धरोहर स्वरूप हमारे पास छोड़ गये हैं जो हमारे द्वारा भुलाया जाना सम्भव नहीं है। यही कारण है कि मेरे पास उनके लिये 'अखिलम्–मधुरम्' से अधिक उपयुक्त शब्द नहीं है। यही मेरी उनके प्रति विनम्र श्रद्धाञ्जलि है।

– श्री वेदमुनि परिजातक
अध्यक्ष – वैदिक संस्थान, नजीबाबाद

सौम्य एवं साधुमना : प्रो. रामप्रसादजी का पुण्य स्मरण

मैंने वेदों के विद्वान् तथा लोकप्रिय प्रवचन–कर्त्ता प्रो. रामप्रसाद जी का नाम तो तब सुना था जब मैं अजमेर में परोपकारिणी सभा का संयुक्त मंत्री था तथा वहाँ के राजकीय महाविद्यालय में अध्यापन करता था। अजमेर निवासिनी साधु प्रकृति की देवी श्रीमती नरेन्द्र बब्बर प्रांयः उनकी चर्चा करती तथा ऋषि मेले में उन्हें आमंत्रित करने का आग्रह भी करती। तद्नुसार वे प्रवचनार्थ अजमेर आये तो उनसे विस्तृत चर्चा हुई। तदन्तर मेरे 1980 में पंजाब विश्वविद्यालय की दयानन्द शोध पीठ के अध्यक्ष पद पर आ जाने के बाद तो उनसे भेंट करने के अनेक अवसर मिले और मैंने उन्हें सरल मन, और साधु प्रकृति का व्यक्ति पाया। वेद और ऋषि दयानन्द के प्रति उनकी अनन्य श्रद्धा ने उन्हें एक लोकप्रिय धर्मोपदेशक तथा वैदिक प्रवक्ता बनाया। फलतः वे स्वदेश में ही नहीं विदेश में भी वेदों की मानवीय शिक्षाओं के प्रचारार्थ गये और लाखों व्यक्तियों को अपने सदुपदेशों से कृतार्थ किया।

प्रो. रामप्रसाद जी का जीवन इस बात का साक्षी है कि किस प्रकार एक साधारण व्यक्ति अपनी लगन, परिश्रम, अध्यवसाय और दृढ़ निश्चय से अपने जीवन का एक उच्च लक्ष्य स्थिर करता है और स्वजीवन में उसे प्राप्त भी कर लेता है। 7 जनवरी 1936 को उत्तर पश्चिम, सीमान्त प्रान्त के जिला मर्दान के एक ग्राम थाना में श्री गंगाकिशन के घर में जन्म लेने वाले रामप्रसाद जब देश विभाजन के पश्चात् भारत आये तो उनकी आयु मात्र ग्यारह वर्ष की थी। पहले वे मुरादाबाद के चन्दौसी नगर में कपड़े के व्यापार में लगे किन्तु अध्ययन की लगन उन्हें स्वामी आत्मानन्द जी द्वारा स्थापित 'दयानन्द उपदेशक विद्यालय यमुनानगर' में ले आई। यहाँ उन्होंने आर्य शास्त्रों का गम्भीर अध्ययन किया। तत्पश्चात् वे गुरुकुल कांगड़ी के छात्र बने। यहाँ से उन्होंने 1966 में वेदालंकार की उपाधि ग्रहण की और साथ ही एम.ए. (वैदिक साहित्य) भी किया। ध्यातव्य है कि गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में वेद विषय लेकर एम.ए. का पाठ्यक्रम नया–नया चालू ही हुआ था और पं. रामप्रसाद सम्भवतः उसके प्रारम्भिक सत्र के विद्यार्थी ही थे।

एम.ए. करने के पश्चात् वे कांगड़ी के वेद विभाग में प्रवक्ता के पद पर नियुक्ति पा गये। कालान्तर में रीडर, प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष, उपकुलपति तथा कार्यवाहक कुलपति के

दायित्वपूर्ण पदों पर कार्य करते रहे। रामप्रसाद जी का वेदों और वेदांगों (विशेषतः निरुक्त) का गहन अध्ययन था, जिसकी साक्षी उनसे पठित छात्र बराबर देते थे। उन्होंने वेद की सार्वभौम शिक्षाओं कों जनसाधारण तक पहुँचाने के लिए पचासों लघु ग्रन्थों की रचना की। धनी मानी दानी सज्जनों के सहयोग से उनके ये लघु ग्रन्थ निरन्तर छपते रहे और स्वाध्यायशील जनों ने उन्हें हाथों हाथ अपनाया। ऐसे ग्रन्थों में वेद व्याख्या परक ग्रन्थों की संख्या सर्वाधिक है। इसके पश्चात् ईशोपनिषद् व्याख्यान्, नचिकेता के तीन वर (कठोपनिषद् पर आधारित), याज्ञवल्क्यमैत्रयी संवाद (बृहदारण्यकोपनिषद् पर आधारित), विदुरजी की दृष्टि में बुद्धिमान कौन? तथा महान विदुर के महान उपदेश (विदुर नीति पर आधारित) आदि ग्रन्थों ने भी लोकप्रियता पाई।

मेरा भी गुरुकुल कांगड़ी में अनेक बार जाना होता तो प्रो. रामप्रसाद जी के मिलने का सुखद प्रसंग उत्पन्न हो जाता। किसी शोध–समिति की बैठक हो अथवा पी.एच.डी. की मौखिक परीक्षा लेनी हो अथवा किसी गोष्ठी आदि के आयोजन में रामप्रसाद जी से मुलाकातें होतीं तो नई प्रेरणा मिलती। ब्रिटिश गाइना के भारत मूल के एक मेघावी छात्र सतीश ने मेरे परामर्श से ऋषि दयानन्द की बृहत–त्रयी (सत्यार्थ प्रकाश, संस्कार विधि तथा ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पर पी.एच.डी. के लिए शोध का विषय चुना। एक तकनीकी बाधा के कारण वह मेरे विभाग में पंजीकृत नहीं हो सका तो मैंने उसे प्रो. रामप्रसाद को अपना शोध निर्देशक बनाकर शोध करने का परामर्श दिया। फलतः सतीश ने अत्यन्त परिश्रम पूर्वक ऋषि दयानन्द के तीन प्रमुख ग्रन्थों की विवेचना करते हुए यह शोध प्रबंध अंग्रेजी में लिखा। मैं और स्व. डा. सुधीर कुमार गुप्त (राजस्थान विश्वविद्यालय के विगत संस्कृत विभागाध्यक्ष) इस शोध–प्रबन्ध के परीक्षक थे। यदि यह ग्रन्थ छप जाये तो अंग्रेजी पठित समाज को स्वामी दयानन्द के महान् वैदुष्य की जानकारी मिलना सुगम हो सकता है। ऐसे उदार तथा साधुमना रामप्रसाद जी थोड़ी आयु में ही दिवंगत हो गये, यह हम सबके लिए अत्यन्त शोक का विषय है। उनकी पूत आत्मा को शतशः नमन्।

– डॉ. भवानीलाल भारतीय
सेवानिवृत्त प्रोफेसर तथा अध्यक्ष
दयानन्द शोघ पीठ पंजाब विश्वविद्यालय
8/423, नन्दन वन, जोधपुर

आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार

आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार का सम्पर्क मुझसे इस शताब्दी की छटी दशाब्दी से है। 1954 में मैं वैदिक साधन आश्रम यमुनानगर के दयानन्दोपदेशक महाविद्यालय में स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती के आचार्यत्व में पं0 विद्याधर जी स्नातक तथा पं0 जगदीश चन्द्र जी दर्शनाचार्य से अध्ययन कर रहा था। ये ददूह (रेणका–हिमाचल) अपनी बहन के पास गए हुए थे। वहीं से उन्हें लेकर पिशोरी लाल जी यमुना नगर आए थे। सादे और पतले से युवक थे तथा काशिका साथ लाए थे। उनका प्रवेश हमारी ही कक्षा में हुआ था। मेरे अधिक निकट होने से वे मुझसे बातें बताते रहते थे। चन्दोसी में वे कपड़े की दुकान पर बैठा करते थे। उसका एक हास्यास्पद संस्मरण उन्होंने सुनाया। वे पाकिस्तान बनने पर वहाँ से आए थे तथा चन्दोसी में जमने का प्रयास कर रहे थे। वहाँ के दुकानदारों को कई बार डोकरी कहते देख कर उन्होंने समझा कि यह भी कोई नारी के लिए सम्मानजनक शब्द होगा। एक दिन एक युवती उनसे वस्त्र खरीदने आई तो उन्होंने उसे भी आइये डोकरी कहा। वह चिढ़कर कहने लगी कि– आपको मैं डोकरी दीखती हूँ। ये कहने लगे कि दुकानदारों को मैंने स्त्रियों को डोकरी कहते देखा तो कह दिया। मुझे तो इसके अर्थ का भी पता नहीं है। आप बतायें इसका अर्थ क्या है? उसने कहा कि डोकरी बुढ़िया को कहते हैं। तब इन्होंने माफी मांग कर युवती को शान्त किया।

ये दुकान पर भी कोई न कोई पुस्तक रखते थे। एक विद्वान् से संस्कृत पढ़ने का भी प्रयास करते थे। कुछ वैराग्य भी था। कभी–कभी अपनी माता को– यह काल है सबसे बली– कविता सुनाया करते थे तो वे रोने लगती थीं तथा बीच में ही रोक कर, इसे मत गा कहती थी।

आश्रम में आने पर इनका हमारी ही कक्षा में प्रवेश हुआ तो हमने देखा कि उनमें विद्वान् बनने की ललक थी। अष्टाध्यायी को वे काशिका के माध्यम से पढ़ना चाहते थे। पढने में इतना ध्यान देते थे कि शरीर की परवाह भी कम करते थे। 1959 में हम स्नातक बने वे वहीं अध्यापन कार्य करने लगे तथा मैं दयानन्द महाविद्यालय, हिसार में विद्यावाचस्पति के लिए

चला गया। वहाँ परीक्षा उत्तीर्ण कर जब मैं लौटा तो सबसे पहले मिलने उन्हीं के पास यमुना नगर गया। मुझे याद है, रात्रि में भोजन के बाद साथ–साथ खाट बिछाकर हम बातें करने लगे तो बातों ही बातों में सारी रात बीत गई। प्रातः ब्रह्मचारी सेवाराम जी उठे तो हम बाते ही कर रहे थे।

फिर हम पृथक् हो गए वर्षों के लिए। मैंने शास्त्री, प्रभाकर वेदशिरोमणि तथा एम.ए. की। मैं फिर एक बार इनसे मिलने आया। उस समय डा. जयदेव जी तथा ये आर्यवानप्रस्थ में गोशाला की ओर ऊपर रहते थे। ये तथा डा. जयदेव जी भी मेरे से मिलने मेरठ गए। मैं तो गुरुकुल घटकेश्वर में आचार्य बनकर आंध्र चला गया और इन्होंने भी एम.ए. कर ली।

मान्य आचार्य प्रियव्रत जी वेदवाचस्पति तथा सुखदेव जी दर्शनवाचस्पति के सेवा निवृत्त होने का समय आया तो उन्होंने अपने सब आर्यसमाजी छात्रों को वहाँ रखने का मन बनाया उनका चिन्तन था कि गुरुकुल तभी गुरुकुल रह सकता है जब इसमें काम करने वाले आर्यसमाजी हों। आज की सोच में तथा तब की सोच में महान् अन्तर है। पहले के लोग गुरुकुल के विषय में सोचते थे तथा आजकल अपनी कुर्सी सुरक्षित रखने में ही अधिकारियों का चिन्तन और प्रयत्न चलता है। वेद विभाग के लिए आचार्य जी आदि ने किसी आर्यसमाजी को लाने के लिए कहा तो आचार्य रामप्रसाद जी तथा डा. जयदेव जी को हमारी याद आई तथा रामप्रसाद जी का तार गया कि पहली गाड़ी से आ जाओ। वहाँ मैं स्वयं आचार्य था 20 अध्यापक तथा 500 छात्र थे। कौन आए उस साम्राज्य को छोड़कर। किन्तु रामप्रसाद जी को मैं कुछ अस्वस्थ छोड़कर गया था। मैंने तार रख लिया और सोचने लगा कि क्यों तार भेजा है उन्होंने? जब यहाँ के प्राध्यापक की बात आए तो निषेधात्मक निर्णय लेना पड़े। मुख्यमन्त्री का पद छोड़कर केन्द्र में मन्त्री कौन बने? परन्तु जब उनकी अस्वस्थता को ध्यान में लाया जाए तो अभी चलो की ध्वनि प्रबल रहे। अन्ततः मैं उन्हें देखने आया और उनके आग्रह को न टालकर विश्व के सबसे समृद्ध, लगभग 3750 बीघे भूमि वाले उस गुरुकुल को तथा यहाँ से अधिक वेतन को छोड़कर रामप्रसाद तथा जयदेव से हारकर यहीं रहकर अध्यापन स्वीकार कर लिया।

यहाँ हम लगभग 24 वर्ष साथ रहे। जीवन में अनेक अनुकूल–प्रतिकूल अवसर आए परन्तु समय की गाड़ी अपनी गति से चलती रही। बाहर प्रकट न होती हुई भी अन्दर कहीं पड़ी प्रेम की गांठ ने मनों को मिलाए रखा। उन्होंने गुरुओं से जो सीखा था उसे अपने मनन

चिन्तन और अध्ययन का सहारा देकर काग़जों पर उकेरा तथा वैदिक साहित्य की अभिवृद्धि में अपना वृहद् योगदान दिया। अनेक संस्थाओं के वार्षिकोत्सवों पर वे जीवित तथा जीवन के बाद भी सम्मानित हुए तथा विश्वविद्यालय के उच्च आयामों को छुआ।

काल चक्र प्रबल है। वह क्या करता है इसे काल का नियन्ता ही जानता है। ज्वालापुर में उन्हें हृदयाघात हुआ। मैं मिलने गया तो बताया कि उन्हें यह गैस का प्रभाव था। हँसते रहे बताते रहे। महर्षि के कार्यों की पूर्ति का व्रत लिए वे पानीपत तथा चण्डीगढ़ गये। लोग श्रद्धा का नाटक तो करते हैं किन्तु श्रद्धा को वास्तविकता नहीं देते। न पानीपत वालों ने उनके लेने के लिए कार भेजी और न चण्डीगढ़ वालों ने। हृदय पर धक्के खाते चण्ड़ीगढ़ गए और वहीं अन्तिम सांस ली।

वे आ़ज हमारे मध्य में नहीं हैं। शरीर की दृष्टि से वे जा चुके हैं किन्तु उनके कार्य, उनका व्यवहार, उनका साहित्य और श्रद्धा–अनुव्रत सी योग्य सन्ताने तथा सरोज जैसी सुपत्नी के रूप में आज भी वे हम सबके बीच हैं। कीर्तिर्यस्य सःजीवति – जिसका यश है वह जीवित है, अमर है। नाशवान् शरीर के बाद भी व्यक्ति यशः शरीर से जीवित रहता है। वे भी इस दृष्टि से जीवित हैं।

– डॉ. सत्यव्रत राजेश,
दयानन्द नगरी,
ज्वालापुर, हरिद्वार।

आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार : क्या कोई उन्हें भूल पायेगा?

पूज्य आचार्य रामप्रसाद जी, ऐसे सशक्त जीवन्त व्यक्तित्व के मालिक थे, जो जीवन में शायद ही किसी को कभी मिलते हों। यदि किसी से उनका साक्षात्कार भले ही कुछ पलों के लिये हुआ हो, उन्हें वह विस्मृति के गोद में नहीं समा सकेगा। वे एक व्यक्ति नहीं बल्कि ऐसी औषधि थे जो उनके पास छटपटाता जाता था, वह धीरज एवं शांतमय होकर निकलता था। यदि कोई आवेगशील क्रोध में दनदनाता व्यक्ति उनके पास पहुँचता, उनके दो शब्द उसके क्रोध को पल में भगाने हेतु पर्याप्त होते थे।

गुरुकुल उनकी कार्यस्थली रहा, लेकिन उनके तेजस्वी व्यक्तित्व की छटा पूरे भारत वर्ष में फैली। गुरुकुल में आचार्य जी को सभी समस्याओं का निवारक पुरुष माना जाता रहा है। चाहे कितनी ही जटिल एवं पेचीदा समस्या हो, भले ही प्रशासनिक हो या कर्मचारियों के परस्पर व्यवहार की हो सभी आचार्य जी को समाधान पुरुष के रूप में देखते थे। ऐसे मानव जो अपना नहीं, सबका है। ऐसे देवता पुरुष जो दूसरों की खुशी में अपनी खुशी एवं मुस्कान बिखेरते थे। मैंने खोज–खोजकर गुरुकुल में यह पूछने की कोशिश की, क्या कोई गुरुकुलवासी ऐसा भी है, जिसने उन्हें क्रोध से लाल–पीले होते देखा हो? उनके भाव भंगिमाओं में कभी तनातनी देखी हो? लेकिन मुझे कोई ऐसा प्राणी नहीं मिला जो इस विलक्षण व्यक्ति में ऐसी भंगिमा देख सके। बाहर से इतने कोमल और अन्दर से न्याय, अन्याय की बात आने पर लौह पुरुष की तरह अविचल चट्टान की तरह खड़े होने वाले इन महानायक को आज मैं किन शब्दों में याद करूँ।

उनकी स्मृति प्रत्येक कुलवासी के लिये एक संचित निधि है, जिसकी पूर्ति की ही नहीं जा सकती। किताबों में पढ़ने वाले आदर्श व्यक्ति को धरा के आंचल में पनपते इस मनुष्य को ही जिसने देखा, उसने आदर्श मान लिया। क्योंकि सामान्यतः इस प्रकार के सरल व्यक्ति लोक में मिलते ही कहाँ हैं।

वे सही मायने में दूसरों के दुःखों को अपनी चादर में लपेट लेते थे। दूसरों के हित के

लिये अपने व्यस्ततम समय का सारा पूर्व निर्धारित कार्यक्रम रद्द कर देते थे, मैंने अनेक बार यह देखा कि आचार्य जी के बाहर जाने के कार्यक्रम नियत रहते थे, लेकिन कभी किसी को उनकी आवश्यकता महसूस हुई तो उसके लिये वे सबसे पहले तैयार होते थे, भले ही इसके लिये उन्हें कोई भी मूल्य चुकाना पड़े।

उनके जीवन को जिसने पास से देखा, वह याद करता रह जायेगा कि पल–पल का सदुपयोग करने वाला ऐसा मानव आज कहाँ? चाहे वे यात्रा में हो या चाहे वे गुरुकुल में बैठे हो, चाहे वे घर की बैठक में हो, उनकी अपनी निजी डायरी, साथ में लिखा कोई वेद मंत्र और कलम चलती हुई, जिसमें उसकी भावभीनी वयाख्या। चिन्तन का यह क्रम उनके सांस में समाहित था। तभी तो उन्होंने जन–जन में वैदिक संस्कृति का संदेश पहुँचाने हेतु पचासों पुस्तकों को लिख डाला। जैसा सोचते थे, वैसा वे बोलते थे, वैसा ही आचरण करते थे। स्वाभाविक सोचने एवं स्वाभाविक बोलने का ऐसा अंदाज मैंने अपने जीवन में उनके अतिरिक्त शायद ही किसी का देखा हो।

बाहर से आने वाला कोई भी अतिथि, विशिष्ट विद्वान या महत्वपूर्ण राजनैतिक, आचार्य जी से मिलते हुए वह उनके मनोरम व्यक्तित्व की झाँकी को एक यादगार के रूप में चमत्कृत होते हुए ले जाता था। मैंने अनेको ऐसे व्यक्तियों के मुँह से इस व्यक्तित्व का जादुई करिश्मा सुना है। शांत, सरल, मधुर, द्वेष रहित मीठी मुस्कान के धनी इस व्यक्ति को कैसे कोई भूल पायेगा जिसने कार्य एवं व्यवहार से लोगों के हृदय पर अपना वर्चस्व कायम किया।

अजातशत्रु के नाम को सार्थक करने वाले ऐसे व्यक्ति गुरुकुल की फुलवारी में असमय में ही अपनी सत्ता को छोड़कर परमात्मा की गोद में चले गये और हम आज उनके बिना अपने को शून्य में ताकते नजर आते हैं। यह रिक्त स्थान कभी नहीं भरा जायेगा, ऐसे व्यक्ति रोज–रोज सामने नहीं आते, ऐसे पुरुष कभी–कभी ही किसी भाग्यशाली के जीवन में आते हैं।

गुरुकुल में पढ़ने वाले एक बच्चे की नहाते समय डूबने से मौत हो गई। दुःख एवं क्षोभ की इस घड़ी का सामना किया आचार्य जी ने अपने नैतिक साहस से। वे पहुँच गये उस बालक के माता–पिता के गाँव में, क्रोधित एवं आक्रोश से घिरे गाँववासियों के बीच में। लड़के की माँ के सामने पहुँचकर उन्होंने कहा, मैं लड़के को वापिस नहीं ला सकता लेकिन रामप्रसाद

खड़ा है माँ, जो चाहे दण्ड दे दो। मैं सहन करने को तैयार हूँ। उनकी आँखों से उस समय आँसू निकल रहे थे। लड़के की माँ रामप्रसाद जी को इस रूप में देखकर कुछ भी न कह सकी। कितने लोगों में ऐसा साहस होता है, परिस्थितियों से सामना करने का। उनकी, घटनाओं से सामना करने की अपनी अलग शैली थी। उनका आत्मबल देखते ही बनता था।

गुरुकुल में मैंने अनेकों बार देखा, चाहे कर्मचारियों की आपसी लड़ाई हो, छात्रों के आपसी झगड़े हों, शिक्षकों के बीच वाद–विवाद हो, आचार्य रामप्रसाद जी के पास मामला आते ही सभी पक्ष सन्तुष्ट हो जाते थे। हम सोचते थे कि क्या है इस इन्सान में?, जो सबको अपना मानता है, सबको दुलार देता है, सबकी खुशी में अपनी मुस्कान बिखेरता है। और खुद सबसे निर्विकार दिखलाई देता है।

उनकी भाषणशैली उनके व्यक्तित्व के अनुरूप ही जादुई करिश्में को लिये थी। साधारण घटना को साधारण तरीके से उनके कहने का अन्दाज, ऐसा था कि सुनने वाला मंत्रमुग्ध रूप से बड़ी देर तक यह सोचता रहता था कि क्या इस बात का इतना प्रभाव भी पड़ सकता है? यह उनकी वाणी का कमाल होता था कि हम सोच भी नहीं पाते थे और उनकी बात हमारे लिये प्रेरणा का स्रोत बन जाती थी। उनकी वाणी के प्रवाह में साक्षात मंदाकिनी का वास था, तभी तो निर्झर झरने की तरह फूटते, उनके श्रीमुख से निकले शब्द, कल–कल की आवाज के साथ कर्ण शंकुलो में कंपन पैदा करते थे। ऐसे मीठे प्रवचनों को अब हमें कौन सुनायेगा? यह स्थान तो अब रिक्त हो गया है दूर–दूर तक। इसकी पूर्ति कैसे होगी? सब कुछ बियाबान लग रहा है। आचार्य रामप्रसाद जी आप चले गये, लेकिन छोड़ गये वह सब यादें, जो आज हम गुरुकुलवासी अपने सीनें में लिये उन्हें संभाल रहे हैं।

– डॉ. जगदीश विद्यालंकार
पुस्तकालयाध्यक्ष
गुरुकुल कांगड़ी वि.वि. हरिद्वार

मेरे पतिदेव स्व. श्री रामप्रसाद वेदालंकार

यों तो सभी सम्बन्ध बड़े प्रिय और मधुर होते हैं – भाई–बहन, माता–पिता, पुत्र–पुत्री, बन्धु–मित्र, गुरुजन, सब का अपना महत्व है और उपयोग भी, पर पति–पत्नी का सम्बन्ध इन सब से परे, अनूठा है, जिसमें अजीबोगरीब सानिध्य, अपनापन और आत्मीयता होती है। इस मामले में मुझे औरों का पता नहीं पर मैं अत्यन्त भाग्यशालिनी रही हूँ कि मुझे आचार्य जी जैसा पति मिला। मैं नहीं जानती कि पति प्रेम की वस्तु है या पूजा की, सेवा की है, समर्पण की पर मुझे इन से जो मिला वह शब्दातीत है। उन्हें 'पतिदेव' कहने में मुझे गर्व अनुभव होता है। उन से मुझे पवित्र प्रेम मिला, आदर्श और श्रेष्ठ मार्गदर्शन, उत्कृष्ट व्यवहार और जीने की कला की सीख भी। वे मेरे प्रियतम साथी, परामर्श दाता, गुरु और पथ प्रदर्शक भी थे। आज उन्हें सशरीर सम्मुख न पा कर मेरा हृदय चीत्कार कर उठता है, मन सिसकियाँ भरता है, तड़प कर रह जाती हूँ। यह जानते हुए भी कि मृत्यु जीवन का अनिवार्य सत्य है, अटल नियम है, उस गृहस्थी सन्त का वियोग जैसे मेरा सब कुछ छीन कर ले गया हो। अब तो मात्र प्रभु का ही सहारा है जिस के वे दीवाने थे।

12 अक्टूबर 1972 को मैं उन के साथ विवाह सूत्र में बँधी। उन्हें मैंने अपना जीवन संगी स्वीकार किया। इस बन्धन की भी विचित्र कथा है। आचार्य जी को मेरा जीवन साथी बनाने में पूज्या माता दयावंती बनाती जी की प्रेरणा और कृपा रही। वे बाल विधवा थी और वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर में अपनी कुटिया में रहती थीं। उन्हीं के द्वारा आचार्य जी से मेरा परिचय हुआ। आचार्य जी उन दिनों आश्रम में ही रहते थे और ब्रह्मचारी जी के नाम से प्रसिद्ध थे। आश्रम के ऋषि तुल्य उन की ख्याति थी। इन्होंने अपनी योग्यता और विद्वता से एवं मृदुल व्यवहार में आश्रमवासी माताओं–बहनों का असीम स्नेह, प्यार, दुलार पाया। इसी आश्रम में रहते हुए इन्होंने गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय से अपनी पढ़ाई पूरी की और इसी विद्यालय में कार्यरत हुए और एक के बाद एक पद प्राप्त करते रहे। इस का एक मात्र लक्ष्य वेदों का प्रचार और प्रसार था। महर्षि दयानन्द की शिक्षानुसार वेद का पढ़ना और पढ़ाना वेद–विषय पर ही कलम चलाना इन का ध्येय था। इसी ध्येय की पूर्ति के लिये इन्होंने पूर्व जीवन का कपड़ों का व्यापार का धंधा छोड़ दिया और वेद–साहित्य में एम.ए. किया। नौकरी करने की इन की इच्छा नहीं थी पर जब इन के गुरु स्वामी आत्मानन्द जी ने इन्हें समझाया कि गुरुकुल में पढ़ाना भी वेद का प्रचार प्रसार है तब इन्होंने वहाँ अध्यापन कार्य स्वीकार

किया। विवाह के उपरान्त हम आश्रम के समीप ही किराये का मकान ले कर रहने लगे। मैं दिल्ली के एक महाविद्यालय में अध्यापिका थी। हमारा विवाह आदर्श विवाह था। इन्होंने दहेज नहीं लिया। मजे की बात यह है कि जिस व्यक्ति के बैंक खाते में कोई राशि न हो और वह दहेज भी न ले तथा यह भी न चाहे कि उस की पत्नी नौकरी करे, है न विचित्र बात। पं० सुखदेव जी के समझाने पर कि गृहस्थी कैसे चलेगी, इन्होंने मुझे दिल्ली में अध्यापन कार्य जारी रखने की अनुमति दे दी। अनुमति तो मिल गई। उस समय मेरी नौकरी को 11 वर्ष हुए थे। मैंने सोचा कि कुछ वर्ष और कर लूँ जिस से 20 वर्षों के बाद मैं पेन्शन की हकदार हो सकूँ और तब नौकरी छोड़ूँ अर्थात् अवकाश ले लूँ। मैं ज्यादातर दिल्ली रही और वे ज्वालापुर। आना–जाना बना रहा। मैं हृदय से आचार्य जी की सेवा करना चाहती थी पर मजबूर थी। इसी बीच प्रभु ने दो बच्चे दिए, पुत्री श्रद्धा व पुत्र अनुव्रर्त। मैं दिल्ली माडल टाउन अपनी बड़ी बहन विद्या बहन जी के पास रही। वहीं दोनों बच्चे उन के प्यार की छत्रछाया में पले। छुट्टियों में मैं ज्वालापुर आती और आश्रम का भी आनन्द लेती। सन् 1981 में मैं दिल्ली छोड़ कर स्थायी रूप से ज्वालापुर आ गई। कितना सुन्दर और आनन्दमय हमारा जीवन था। सचमुच एक वैदिक आदर्श परिवार को हमारा 'सुखी गृहस्थ', सुख का धाम स्वर्गाश्रम' जैसी पुस्तकों का सृजन आचार्य जी ने इसी काल में किया। साथ–साथ पदोन्नति भी होती गई रीडर बने, प्रोफेसर बने, उप कुलपति और कुलपति भी। इस बीच सब के सब रूप देखे। सारा दिन प्रभुमय जीवन, प्रभुमय चिन्तन, प्रभुमय व्याख्यान, प्रभुमय लेखन, प्रभुमय अध्यापन। हमारे गृहस्थ में गृहस्थी कम ब्रह्मचारी और सन्यासी अधिक आते थे। इस प्रकार हमारा छोटा सा गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थ और सन्यास का भी आनन्द देने लगा। मुझे उन सब अतिथियों की सेवा का सौभाग्य मिलता जिसे मैं पूरे मन से करती कभी थकती न थी, फिर भी गृहस्थ में कभी नोंक–झोंक तो हो ही जाती।

एक दिन की बात है कि एक ब्रह्मचारी इन के पास आया और अपनी आवश्यकता बताई। शायद 1972 की बात है। इन्होंने मुझ से पूछा– तुम्हारे पास कितने पैसे हैं? उस दिन मेरे पास भी पैसे नहीं थे। मैंने इधर–उधर से निकाल कर कहा– 'एक रुपया सत्तर पैसे' यह पैसे इन्होंने मुझ से ले कर ब्रह्मचारी को दे दिये। ब्रह्मचारी के जाने के पश्चात् मैं बहुत नाराज हुई, कहा– अब आप गृहस्थी हैं, ब्रह्मचारी नहीं। कुछ विचार कर काम करें।' उत्तर में अपनी सहज सरल मुस्कान बिखेरते हुए प्यार से बोले– तुम्हारे पास आटा है, घी है, दाल है, चावल है, शायद सब्जी भी हो पर उस बेचारे के पास तो कुछ भी नहीं है। परमात्मा पर विश्वास रखो। मैंने कहा– मुझे उस पर बहुत भरोसा है। उस दिन परमात्मा की ऐसी कृपा हुई कि 153 रु0 का कहीं से मनीआर्डर आ गया। मैं आश्चर्य चकित रह गई।

कुछ दिनों के बाद फिर एक अद्भुत घटना घटी। घर में चावल और घी नहीं था।

मैंने इन से बाजार जा कर चावल और घी लाने को कहा। ये उस दिन इतने व्यस्त रहे कि सारा दिन बाजार नहीं जा पाये। सायंकाल हमारे यहाँ 8, 10 मेहमान आ गये। अब तो मैं और परेशान हो गई कि कैसे काम चलेगा? अब तो बाजार जाना और भी कठिन है। मेहमानों को चाय–पानी दे कर जब मैं निवृत्त हुई तो उनमें से एक ने कहा कि आप की बहन जी ने ये चावल और घी भेजा है। रख लें। यह देख कर मैं आश्चर्य चकित रह गई कि प्रभु यह तेरी कैसी लीला है। मैं व्यर्थ ही सुबह से परेशान हो रही हूँ।

कुछ दिन बाद एक और घटना घटी। घर में कुछ लोग आये। ये उन के स्वागत सत्कार में सेब पर सेब काटते चले गये। जब सब सेब समाप्त हो गए तो मेहमानों के जाने के बाद मैंने पतिदेव से कहा– "अब आप ब्रह्मचारी नहीं, गृहस्थी हैं। गृहस्थ में सोच समझ कर कार्य करना पड़ता है। एक ही बार में आप ने इतने सेब काट दिए।" सुन कर हँसने लगे। थोड़ी देर के बाद मेरी बहन ने दिल्ली से सेब की पेटी भेजी जो कोई व्यक्ति ले कर आया था। है न कमाल? यह किस का कमाल है। प्रभु की करुणा का? अथवा नेक नीयती का? या फिर उस पर भरोसे का? पूर्ण समर्पण का?

एक बार की बात है। मैंने कहा– 'मुझे अच्छी फिल्म देखने का शौक है।' कहने लगे– मैं आप की इच्छा की कद्र करता हूँ। ऋषि दयानन्द ने भी कहा है कि गृहस्थ आश्रम में आओ तो सभी सुखों का भोग करो पर यदि मैं फिल्म देखने जाऊँगा तो गुरुकुल में ब्रह्मचारियों पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। वे कहेंगे कि यदि हमारे आचार्य जी फिल्म देख सकते हैं तो हम क्यों न देखें? इसलिये मैं कभी सिनेमा हाल नहीं जाऊँगा। मैंने कहा– और तो कोई बात नहीं। मैं स्कूल जाती हूँ। नौकरी करती हूँ। मुझे "सोसाइटी में मूव" करना होता है। मुझे पता नहीं, धर्मेन्द्र कौन है? हेमा मालिनी किस का नाम है। मेरा उत्तर सुनकर यह एक दम गम्भीर हो गये। कुछ देर में बोले– कि 'जिस सोसाइटी की तुम बात करती हो उसे मैं देखना भी नहीं चाहता। मैं तो केवल उस सोसाइटी को पसन्द करता हूँ जिस में महापुरुषों की चर्चा हो।' बात समाप्त हो गई। कुछ दिन बाद हमारे विद्यालय में एक अध्यापिका ने अपनी पदोन्नति पर 'तपस्या' फिल्म सब को दिखाई पर मैंने जाने से इन्कार कर दिया। इन्हें पता चला। कई मास बीतने के बाद इन्होंने यह घटना किसी प्रिय व्यक्ति को सुनाते हुए अपनी प्रसन्नता व्यक्त की। कहा– मैंने इन्हें कभी फिल्म देखने से नहीं रोका, पर जब मुझे पता चला कि सारी अध्यापिकाएं फिल्म देखने गईं और यह नहीं गई तो मुझे बड़ी खुशी हुई। यह सुन कर मैं मन ही मन प्रसन्न हुई कि यह मेरे आचरण से प्रसन्न है। यह मेरा परम सौभाग्य है। इन के सन्त जीवन को देखती तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होती और मैं प्रभु का धन्यवाद करती और यह प्रार्थना भी कि प्रभु! मुझे शक्ति प्रदान कर कि मैं इस सन्त के जीवन में कभी कांटें न बिछाऊँ। यदि कोई काँटा आ जाए तो उसे चुन लूँ। कितना सुन्दर जीवन था हमारा। जब कोई

आत्म–प्रशंसा करता कि यह वेदाकूल आदर्श परिवार है। मुझे बहुत अच्छा लगता। मैं अतिथियों का स्वागत बड़ी प्रसन्नता, उमंग और उत्साह से करती। ससुराल वालों से भी मुझे भरपूर प्यार दुलार मिला। उस में तो हम दोनों देवी–देवता तुल्य पूजे जाते। वेदानुकूल इन का जीवन देख कर मैं फूली नहीं समाती।

एक बार की बात है कि एक माता जी ने कहा– सारी बातें पति से नहीं कहा करते। मैंने इन से शिकायत की कि मुझे वह माता जी ऐसा कर रही थीं। पर मुझे अच्छा नहीं लगा। पूछने लगे– तुम ने क्या उत्तर दिया?' मैंने कहा– मैं निरुत्तर रही।' बोले– उस ने मुझ से भी यही बात कही थी। तू वेद पढ़ी होती तो मेरी तरह यह जवाब देती कि वेद में लिखा है– कि पत्नी से कुछ मत छिपाओं।' हमने अपने जीवन में किसी को जज नहीं बनाना। हम दोनों लड़ते–झगड़ते और वह हमारी जज बनती यह मुझे कदापि पसन्द नहीं। दो के बीच की समस्या का समाधान केवल वे दो ही कर सकते हैं। तीसरे के द्वारा समस्या विकट बन जाती है। घर परिवार की छोटी–छोटी बातों का समाधान वेद द्वारा होता। कभी–कभी मैं हंसी में कह देती 'वेद क्या है मानों जादू का पिटारा है। जिससे सब समस्याओं का समाधान हो जाता है। तब वे बड़े गर्व से कहते– जानती हो वेद मुझे अपनी पत्नी से भी प्यारा है। वेद मुझे अपने बच्चों से भी प्यारा है। मेरे लिये वेद सब से अधिक मूल्यवान निधि है।" परिवार में हों घर पर या फिर सफर में– गाड़ी में, बस में या मंच पर कलम चलती रहती। कभी कभी मैं कह देती कि आप मंच पर ब्रह्मा बन कर बैठते हैं, उस समय लेखन शोभा नहीं देता। लोग क्या कहेंगे। उत्तर मिलता – तुम इसकी चिन्ता मत करों। जब वेदमंत्रों का उच्चारण होता है तो मेरे भीतर एक लहर दौड़ती है और सोचता हूँ कि जल्दी से लिख लूँ। और जो श्रोता इतनी जिज्ञासा ले आये हैं उन्हें सुना दूँ। यह था उन का अद्भुत वेद–प्रेम। अनुपम वेद–प्रेम।

ऐसे महान विद्वान् और वेदों के अनन्य भक्त की पत्नी बनने का मुझे सौभाग्य प्रभु ने दिया। वे वेदों के भक्त थे। मैं उन की भक्त हूँ. कितना गुणगान करूँ कम है। इसलिये उन के चिर वियोग का गम भी कम नहीं। यह गंम की आग तब और प्रचण्ड हो जाती है जब इन के प्रशंसक, भक्त, अनुयायी प्रियजन आ कर अपना दुःख व्यक्त करते हैं।

अन्त में यह कह कर अपनी लेखनी को विराम दे रही हूँ–

कहानी सुन रहा था बड़े शौक से जमाना।
तुम्हीं सो गये दास्तां कहते कहते।।

–श्रीमती सरोज आर्य

हमारे पिता

किसी संस्कृत विद्वान् ने आर्य पुरुष के लक्षण इस प्रकार बताये हैं –

शान्तस्तितिक्षुर्दान्तश्च सत्यवादी जितेन्द्रियः,
दाता दयालुर्नम्रश्च आर्यः स्यादष्टभिर्गुणैः।।

1. शान्तः –	जो स्वभाव से शान्त हो
2. तितिक्षुः –	सहनशील हो (सुख–दुःख, हानि–लाभ, मान–अपमान आदि में सम रहता हो।)
3. दान्तः –	जो मन को वश में रखता हो अर्थात् चंचल न हो
4. सत्यवादी –	जो मन, वचन, कर्म से सत्यवादी हो
5. जितेन्द्रियः –	जो जितेन्द्रिय हो
6. **दानशील –**	दान–शील हो
7. दयालु –	केवल मनुष्यमात्र के लिए नहीं अपितु प्राणियों के लिए भी जिसके मन में दया हो
8. नम्र –	जिसमें तनिक भी अभिमान न हो

इन आठों गुणों को पूर्ण रूप से अपने जीवन में धारण करने वाले मेरे परमस्नेही पूज्य पिताजी सच्चे आर्य थे। आदर्श जीवन, समय के पाबन्द, प्रभु विश्वासी, कोमल हृदय, प्रचारक, कर्मठ, सरल, निश्छल, द्वेष रहित, मनुष्य तो दूर प्राणीमात्र के लिए हृदय में प्यार समेटे हुए, ईश्वर के अनन्य भक्त, आशावादी, क्रान्तदर्शी, स्वाध्यायी, अत्यन्त नम्र एक कुशल आचार्य का जीवन हम सबके लिए प्रेरणास्पद है। हमारा अहोभाग्य है, परमेश्वर की असीम कृपा है कि वे हमें पिता के रूप में प्राप्त हुए। कहने को पिता, परन्तु उनका ममत्व माता से किसी रूप में कम न था और शिक्षा एवं मार्गदर्शन सच्चे गुरु से कम नहीं। उनका संपूर्ण जीवन हमारे लिए प्रेरणा का स्रोत है। इन्हीं भावों को मन में रख कर मैं अपनी यादों के बिखरे

फूलों को समेटकर अर्पण कर रही हूँ जिससे कि हम भी अधिक नहीं तो कुछ तो प्रेरणा लेकर आगे बढ़ने का प्रयास कर सकें।

उनके पिता ने नाम रखा 'राम', जिससे कि पुत्र को बुलाने के बहाने भगवान का नाम तो निकले, परन्तु धन्य हैं वे पिता जिनके पुत्र ने अपने पिता के ही मुख पर नहीं अपितु संपूर्ण संसार में वेद प्रचार–प्रसार करके भगवद् जनों के केवल मुख पर ही नहीं परन्तु हृदयों में प्रभु को बसा दिया। और धन्य है वे गुरु जिनसे शिक्षा–दीक्षा पाकर वेदप्रचार किया और उन्हीं के चरणों में अपना वेद प्रचार–प्रसार (जिस भी रूप में व्याख्यान, पुस्तक, कैसेट्स इत्यादि) को अल्प प्रयास कह कर समर्पित कर दिया। दृढ़ निश्चय तो इतना कि हिन्दुस्तान/पाकिस्तान के विभाजन पर जब माता भारत आ गई तो 11 वर्ष की आयु में पाकिस्तान से अकेले ही बहिन जीजाजी के लाख समझाने पर भी यह कहना कि या तो मर जाऊँगा या माँ से मिल जाऊँगा। और हिन्दुस्तान के लिए अकेले ही चल पड़े। माता–पिता से अत्यन्त स्नेह के साथ–साथ मिले अर्चना के संस्कार। पिता ने जीवन को मोड़ दिया और बस फिर जब सच्ची राह पकड़ी तो बस सीधा मंजिल की डगर के अन्त तक अनुगामी बने रहे। पिता का यह कहना कि तुम्हें कौन खाने को देता है?– पुत्र का उत्तर– आप ले आते हैं, माँ बना देती है। फिर पिता की गहरी नींव यह कह कर रखना कि इस संसार के समस्त माता–पिता मिल जाए तो भी एक मक्की का दाना अथवा साग का पत्ता नहीं बना सकते। ऐसे परमात्मा की स्तुति/भजन/उपासना रोज़ अवश्य करो। स्कूल में बड़े भाई को 7 पुरुस्कार मिले और ये पहली/दूसरी में फेल हो गये तो एक ओर बड़े भाई की डाँट और अन्य जनों के उपहास के केन्द्र बने। पर फिर भी पिता का केवल इतना कहना बेटा अगले साल मेहनत करना। केवल पिता ही ऐसे थे जो इन्हें कुछ न कहते थे। परन्तु शायद उसी भट्टी के ताप में सोने ने कुन्दन बनना शुरु कर दिया था। बस फिर जो ठानी और पुरुषार्थ किया तो कुछ ऐसा हुआ कि पहले टीचर पढ़ाता था और फिर ये कक्षा को पढ़ाते थे। पिताजी की जेब से दुअन्नी चुपके से लेने पर जब पकड़े गए तो भी पिता ने ऐसा प्यार से मोड़ा की सुधार, बिना प्रयास हो गया। इनका गुलेल एक बहुत प्रिय खिलौना होता था। 7 गुलेलें इकट्ठी तो की थी पर कभी चलाई नहीं थीं। जब एक बार ऐसे ही आज़माने को चलाई तो एक चिड़िया तड़फती हुई गिर पड़ी। मन तो व्यथित हुआ परन्तु पहला भय यह था कि पिताजी आज नहीं छोड़ेंगे। बड़े घर में बात फैलती भी जल्दी है तो ये गद्दे में जाकर छिप गए। परन्तु आखिर कब तक। इस पर भी पिता की प्रभावपूर्ण **वाणी का** बाण पड़ा कि जब किसी को जीवन दे नहीं सकते तो किसी का

जीवन लेने का क्या हक है? वहीं पर उस गुलेल का भी सम्बन्ध समाप्त हो गया। 11 साल की अवस्था में जब पिता का देहान्त हुआ तो रात को बल्लियाँ गिनते हुए मन गहरी सोच में डूब जाता। सोते हुए बड़े भाई के साथ लेटे–लेटे न जाने मन किस सोच में खो जाता।

माता ने 40 तोले सोना रखा, विवाह पर दिया तो कहा कि मुझे केवल आशीर्वाद चाहिए और आधा बड़े भाई को एवं आधा छोटे भाई को दे दिया। युवावस्था में भी चंचलता और चपलता से कोसो दूर गम्भीर स्वभाव, स्वाभिमान एवं सच्ची लग्न की धुन थी। पिता के पश्चात् हिन्दुस्तान आकर सुबह स्कूल जाना, आकर बड़े भैया का दुकान में हाथ बंटाना और साथ–साथ अथवा रात को पढ़ना, यही दिनचर्या थी। इसमें भी समय निकाल कर सत्संग जाना, किसी विद्वान के मिलने पर दो श्लोकों का अर्थ जान लेना कितना आनन्दप्रद होता है उनसे अधिक कौन समझ सकता था? उपदेश सुना कि व्यापार में आटे में नमक के बराबर लाभ कमाना चाहिए तो बस जो बालक इतने ग्राहकों से चुटकियों में सौदा करता था मोल भाव करके, वो सच और एक दाम पर जो अड़ा, तो चाहें बड़े भाई से सौदा नहीं बिका, डाँट पड़ी, तो भी पर्वत की तरह टस से मस नहीं हुआ चाहे अपने चाचा के साथ छोटी जगह में अलग सामान बेचना पड़ा। व्यापार में रस तो उनके लिए था ही नहीं, स्वाध्याय, सत्संग में रुचि देखकर पूज्य जीजाजी और बेजी ने स्वामी श्रद्धानन्द के आश्रम दयानन्दोपदेशक महाविद्यालय में भेज दिया। घर से आर्थिक सहयोग न मिलने पर भी हिम्मत न हारी। पूज्य गुरुजनों के सहयोग से, क़ठोर तप करके आगे बढ़ते रहे कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा।

जीवन एक तपस्वी की भाँति जिया, जो कुछ हुआ उसे बाँट दिया। अपने पास कुछ न रखा। आयु के 35 वर्ष में, वे गुरुकुल काँगड़ी .... में प्राध्यापक के पद पर थे तो विवाह हुआ। प्रभु की अनुपम अनुकम्पा ऐसी रही कि जीवन साथी भी इतना कर्मठ, सुयोग्य, प्रभु भक्त, कदम के साथ कदम मिला कर चलने वाला, प्रत्येक शुभ कार्य में सहयोगी ही नहीं अपितु बढ़–चढ़ कर करने वाला मिला। माँजी का प्रभु कृपा से ऐसा साथ था जिससे उनका पथ विचलित होना तो बहुत दूर की बात है, पथ स्पष्ट, निष्कंटक ही नहीं अपितु सुगम एवं आनन्दप्रद हो गया। नियमित संध्या, हवन, सात्विक भोजन, अतिथियों का सहृदयतापूर्वक सत्कार, समस्त परिवार बन्धुओं का प्यार एवं आशीर्वाद एवं संत जनों का आवागमन एवं उपदेश, एक वैदिक आदर्श परिवार का जीता जागता स्वरूप था। अन्त समय में भी माँजी ही उनके साथ कंधे से कंधा मिलाते हुए चण्डीगढ़ तक साथ थी।

मनुष्य की वाणी बोलती है परन्तु पूज्य पिताजी का जीवन बोलता था। अपनी दीक्षा के समय जो उपदेश गुरुजनों से मिला कि स्वाध्याय जीवन में कभी न छोड़ना तो अन्त समय तक वह उनके साथ रहा। सादा जीवन, सादा भोजन, नियम से सोना/जागना, यज्ञ, संध्या तो सदा ही रहा। जो संस्कार अर्चना के पिता से पाए थे वे अपने बच्चों को देने में कोई कसर नहीं छोड़ी और उसी शालीनता से दिए जैसी धरोहर में प्राप्त किए थे। माँजी ने कहना कि बच्चों को कुछ सिखाओ – तो उत्तर में यह कहना कि मेरी व्यस्तता के संस्कार क्या कम हैं? अपने घर में अच्छे–अच्छे उद्धरण, श्लोक इत्यादि का लगाना, महापुरुषों के चित्र लगाना, नियम से संध्या, हवन, समय के पाबन्द, और ईश्वर पर पूरा भरोसा रखने वाले।

कर्त्तव्य के पक्के, प्रभु के प्यार में बोलते–बोलते नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित होती थी। लक्ष्य प्राप्ति के लिए सदा तत्पर, एक गृहस्थी के रूप में संत, कभी गुस्सा नहीं, डाँटा नहीं, बच्चों को विद्या अध्ययन में सही मार्गदर्शन देना, योजनापूर्वक चलना सिखाना, जीवन में उदाहरणों, प्रेरणाओं और कहानियों से बहुत बड़ी–बड़ी बाते सिखाना, चलते–फिरते मन्त्र अथवा श्लोकों के अर्थ बताना, छोटी–छोटी बातों में जीवन के रहस्य को समझाना, एक कुशल विद्वान एवं एक परमस्नेही पिता ही दे सकता है। अपने छोटे से छोटे अथवा बड़े से बड़े काम के लिए स्वयं संलग्न रहना, कभी किसी से कहना नहीं। गृहस्थ जीवन में रहकर भी प्रचार–प्रसार करते रहे। उस पर भी कभी बच्चों को यह प्रतीत नहीं हुआ कि प्यार में कमी हो। सागर तो भरा है कोई जितना ले ले, खाली नहीं होता। आशीर्वाद सदा यही, फूलों की तरह खिले रहो और फलों की तरह फलो। कभी किसी से गिला नहीं रखा।

गृहस्थ जीवन में पंच महायज्ञों को कभी नहीं छोड़ा। ब्रह्मयज्ञ, वेवयज्ञ, पितृयज्ञ, अतिथि यज्ञ, बलिवैश्वदेव यज्ञ सदा चलते रहे। रोज कुत्ते/गाय को भोजन कराना। सदा विद्वानों, संन्यासियों, महापुरुषों, विद्यार्थियों का आवागमन।

एक घटना स्मरण आ रही है– डाक्टर परिवार । माता की मृत्यु । अन्तेष्टी पर जब सब रो रहे थे तो पिताजी ने कहा कि आप चाहो तो आपकी माँ जिन्दा हो सकती है! सब अवाक्, हैरान! परिवार को फिर समझाया कि आपमें से कोई यह नहीं कहता कि मेरी माता बड़ी सुन्दर थी, नाक ऐसी थी, आँखें ऐसी थी,......... सब कह रहे हैं बड़ी सात्विक थी, सुबह जल्दी उठती थी, संध्या, हवन करती थीं .... इत्यादि तो आज वो माँ रूपी गुलदस्ता टूट गया है, गुण रूपी फूल नीचे गिर गए हैं आओ इन्हें चुने और अपने जीवन में धारण कर लें तो

माँ जिन्दा हो जाएगी क्योंकि उनके गुण हममे आ जाएगें। आओ आज हम यही उपदेश ग्रहण करें। फूल जो सदा सबको सुगन्धि देता था, नीचे काँटे होने पर भी सदा मुस्कुराता रहता था और सबको खिले रहने की प्रेरणा देता था, वह आज टूट गया है, पंखुड़ियाँ बिखर गई हैं आओ इन्हें चुने और सब मिलकर कुछ ग्रहण करें जिससे की फूल अपनी सुगन्ध सदा बिखेरता रहे और मुस्कुराता रहे। अन्त में–

भरोसा कर तू ईश्वर पर तुझे धोखा नहीं होगा।
यह जीवन बीत जाएगा, तुझे रोना नहीं होगा।।

स्वभाव से अत्यन्त संकोची

घटना– (चने खाकर तीन दिन तक बोलते रहे।) तीसरे दिन जब भोजनालय में मंत्री .... ने पूछा कि वे विद्वान भोजन कर रहे हैं तो पता चला कि वो भोजनालय में आए ही नहीं। भोजनालय का न पता होने से और किसी से न कहने के स्वभाव से वे तीन दिन तक बाज़ार से चने ही खा रहे थे। बाहर खाने के स्थान होटल इत्यादि तो बहुत होते हैं परन्तु एक विद्वान को आदर्शों में बाहर होटल इत्यादि पर खाना नहीं था अतः चने लेकर वे तीन दिन तक चने ही खाते रहे।

अन्त समय में भी जब एक Heart Attack हो चुका था तो जब एक महीने बाद चंडीगढ़ कहीं यज्ञ में गए तो उन्होंने आर्य समाज में ऊपर के कमरे में इन्तज़ाम किया। तो माँजी के कहना चाहने पर भी, कि "सीढ़ियाँ चढ़ना मना है। अतः कहीं नीचे इंतजाम कर दे," इन्होंने रोक दिया। यह बहुत भयानक सिद्ध हुआ। परन्तु स्वभाव में ही किसी को कष्ट न देना, न कुछ कहना और अत्यन्त संकोची होना कूट–कूट के भरा था।

पिता के रूप में सदा घर में कभी किसी वस्तु की कमी न होने दी। शायद ही कभी किसी पर क्रोध किया हो, जब अनु मुझे तंग करता था उस पर भी तभी क्रोध करते थे अन्य किसी कारण से क्रोध किया ही नहीं। प्रातःकाल 4–5 बजे उठ कर संध्या का नियम घर में रखना जिसमें प्रातःकालीन मन्त्र एवं सायंकाल भजन, संध्या, आरती अथवा रात्रि के प्रायश्चित, ध्यान आदि का नियम से पालन। उसके बाद प्रातः भ्रमण और आसन, स्नान इत्यादि के बाद ठीक 6:30–7:00 बजे जाकर हवन के कमरे में बैठ जाना। कोई देर से आए जैसे तैयार होने

में बच्चे अथवा घर में काम के कारण माँजी, तो कभी कुछ न कहना, चुपचाप अपना समय पर पहुँच कर लिखना अथवा पढ़ने बैठ जाना। रोज़ की डायरी भरनी, अपने नियम, संकल्प एवं योजना में चूकने पर काटा (x) काटा और होने (√) लगाना इन्हीं डायरियों से अपना जीवन बनाना। एकाग्रता तो इतनी कि जब लिखते। पढ़ते हों तो कोई आ जाए तो पता ही नहीं होता था। पुस्तकें प्रचार के लिए स्वयं लिखना, प्रूफ देखना, छपाना, कागज़ लाना, स्वयं उठाकर थैले भरकर जहाँ जाना बाँटना, कोई कुछ दे दे तो ठीक न दे तो ठीक, उद्देश्य प्रचार था। कहना बहुत आसान है पर स्वयं करना बहुत कठिन। पुरुषार्थ अलग, पैसा भी यदि दान न हो तो, अपना ही लगाना। जो भी आए छोटा–बड़ा, स्वागत सत्कार करना, अच्छे से खिलाना, समय देना, उनकी समस्याओं को सुलझाना और प्रसन्न करके, समाधान करके विदा करना स्वभाव था। स्वयं दिन भर समय मिलने पर ऑफिस में, घर में पढ़ते–लिखते रहते। भोजन अथवा कमरे में भी डायरी साथ।

बड़ी पवित्र और प्यार से भरी हुई प्रतिक्षण प्रेरणा देने वाली है पूज्य पिताजी की जीवन गाथा। हम दोनों भाई, बहनों के पूर्व जन्मों के कुछ पुण्यकर्म अवश्य रहे होंगे जो ऐसे देवतास्वरूप पिता और ममतामयी मांजी के पुत्र–पुत्री होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। आज हमारे स्नेहिल पिता शरीर रूप में हमारे साथ नहीं हैं, किन्तु हृदय कहता है कि प्रेरणा और यादों के रूप में वे सदा हमारे रोम–रोम में बसे हैं।

प्रभो! हमें शक्ति देना कि हम उनके बताये मार्ग पर कुछ कदम चल सकें।

– श्रद्धा, अनुव्रत

यज्ञिय जीवन की प्रतिमूर्ति

आचार्य रामप्रसाद का जन्म श्री गंगा बिशन जी के घर में ग्राम थाना, मलाकण्ड एजेन्सी जिला मरदान, फ्रण्टीयर (वर्तमान पाकिस्तान) में हुआ। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा राजकीय उच्च विद्यालय थाना में हुई। डी.ए.वी. हाईस्कूल रावलपिण्डी, आदर्श हाईस्कूल चन्दौसी तथा श्यामसुन्दर मेमोरियल हाई स्कूल चन्दौसी से आपने हाई स्कूल परीक्षा उत्तीर्ण की।

दशम कक्षा पास करके आप लगभग सन् 1959 में दयानन्द उपदेशक महाविद्यालय यमुनानगर (अम्बाला) में वेदादि शास्त्रों की उच्चतम शिक्षा प्राप्त करने के लिये प्रविष्ट हो गये।

सन् 1960 में मैं जब द0उ0 महाविद्यालय में आचार्य पद पर सेवा करने के लिये गया था उस समय ब्र0 रामप्रसाद, ब्र0 सत्यव्रत (राजेश) और ब्र0 हरिदत्त, ब्र0 वेदव्रत आदि सात विद्यार्थी इस महाविद्यालय में शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। आर्य समाज के मूर्धन्य संन्यासी स्वामी आत्मानन्द जी इस संस्था के कुलपति थे और पं0 विद्याधर जी जो कि स्वामी आत्मानन्द जी के ही सुयोग्य थे, महाविद्यालय के मुख्याधिष्ठाता थे। महाशय ताराचन्द पुस्तकालयाध्यक्ष, वानप्रस्थी कांशीराम भण्डारी और रामचन्द्र, सेवाराम गो सेवक थे। एक धर्मार्थ औषधालय भी था। महाविद्यालय का वातावरण अत्यन्त सात्विक था। कोई राजकीय परीक्षा की तथा राजकीय सेवा की कोई भावना छात्रों में नहीं थी। केवल वेदादि शास्त्रों के गम्भीर अध्ययन के उपरान्त महार्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित वैदिक धर्म के प्रचार–प्रसार की भावना ही छात्रों के चित्त में ओत–प्रोत थी। प्रत्येक रविवार को छात्रों को यमुनानगर, जगाधरी, सहारनपुर और अम्बाला छावनी आदि के आर्य समाजों में साप्ताहिक सत्संग में यज्ञ कराने और प्रवचन हेतु भेजा जाता था। अम्बाला छावनी रामप्रसाद जी का प्रिय आर्य समाज था।

स्वामी आत्मानन्द सरस्वती अपने समय में काशी के उच्चकोटि के विद्वानों में गिने जाते थे। वहाँ एक–एक विषय के विद्वान थे किन्तु स्वामी जी व्याकरण, दर्शन, साहित्य आदि सभी विषय समान रूप से पढ़ाया करते थे। स्वामी जी की योग में बहुत ऊँची स्थिति थी। स्वामी जी के आदर्श जीवन और अद्भुत विद्वत्ता के कारण पं0 शिवकुमार शास्त्री, पं0

जगदीशचन्द्र दर्शनाचार्य, स्वामी ब्रह्ममुनि, स्वामी, मुनीश्वरानन्द, ब्र0 सत्यप्रिय जी आदि विद्वान्, इस महाविद्यालय के शिक्षा–यज्ञ में अपनी विद्या–आहुति डालकर इसे सर्वाङ्गपूर्ण यज्ञ बनाने का प्रयास करते रहते थे। स्वामी जी महाराज योग एवं उच्च सदाचार की शिक्षा देते थे। पं0 विद्याधर जी वेद और निरुक्त पढ़ाया करते थे। मैं व्याकरण, दर्शन, साहित्य और आर्य सिद्धान्त पढ़ाता था। श्री रामप्रसाद जी सबसे बड़े छात्र होने के नाते छोटी कक्षाओं को पढ़ाते थे और अधिकारी वर्ग के कार्यों में भी हाथ बंटाया करते थे।

एक दिन किसी विद्यार्थी ने एक काला साँप जो कि उसके कमरे में घुस आया था, मार डाला। स्वामी जी निरीक्षण के लिये आये। कमरे में खून पड़ा हुआ देखकर कहा यह क्या है। मैंने बतलाया कि अमुक छात्र ने काला साँप मार डाला है। स्वामी जी ने कहा कि ऋषियों के आश्रमों में साँप, सिंह आदि ऐसे ही भ्रमण करते रहते हैं। इन्हें कभी मारना नहीं चाहिये। श्री रामप्रसाद जी आदि सभी छात्रों को एकत्र कर 'अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः' (योग दर्शन) इस पातञ्जल सूत्र की बड़ी अच्छी व्याख्या बच्चों को सुनाई। और अपने जीवन की घटनायें सुनाई कि एक दिन एक काला साँप मेरे साथ मेरे बिस्तरे पर रात को सोता रहा और कुछ समय के पश्चात् स्वयं चला गया।

एक दिन गोसेवक श्री सेवाराम ने रामप्रसाद जी को अपने पास बुलाया और पूछा कि आप ये इतने बड़े–बड़े पोथे क्या पढ़ते रहते हो। मैंने तो स्वामी जी महाराज से एक ही वाक्य पढ़ा था कि– 'गौ की सेवा करनी चाहिये'। मुझसे तो यही पाठ अभी तक पूरा नहीं हुआ है। यह प्रश्न युधिष्ठिर के 'सत्य बोलो' जैसा था। श्री सेवाराम ने श्री रामप्रसाद जी को क्रियात्मक जीवन का बड़ा सुन्दर पाठ पढ़ाया। यह पाठ मुझे रामप्रसाद जी कई बार सुनाया करते थे।

श्री रामप्रसाद जी ने दयानन्द उपदेशक महाविद्यालय से सिद्धान्तभूषण, और सिद्धान्त– शिरोमणि परीक्षा बड़ी योग्यता के साथ उत्तीर्ण की। सिद्धान्त शिरोमणि में एक वेद सम्बन्धी एक शोध–ग्रन्थ लिखा था, यदि वह उपलब्ध हो तो प्रकाशित करना चाहिये। उपदेशक विद्यालय की शिक्षा के उपरान्त आप वेदादिशास्त्रों की शिक्षाप्राप्त करने के लिये गुरुकुल कांगड़ी चले गये। वहाँ उस समय के उच्च कोटि के विद्वान् पं0 आचार्य प्रियव्रत जी व पं0 रामनाथ जी आदि के चरणों में बैठकर वैदिक साहित्य का गम्भीर अध्ययन किया और वेदालंकार तथा वैदिक साहित्य से ही एम0ए0 परीक्षा उत्तीर्ण की। गुरुकुल कांगड़ी में अध्ययन काल में आप वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर में एक कमरे में रहते थे। साथ का कमरा श्री जयदेव जी के पास था। यहाँ रहते हुये उस समय के वानप्रस्थ आश्रम के प्रबन्धक श्री हरिप्रकाश जी के कार्य में पूर्ण हाथ बंटाया। जो छात्र गुरुकुल में पढ़ने आते थे उनके आवास,

भोजन और छात्रवृत्ति की व्यवस्था करना श्री रामप्रसाद जी अपना ही कर्त्तव्य मानते थे। **'परोपकाराम सतां विभूतयः'** के लिये समर्पित रहते थे।

सुयोग्य विद्वान् के अध्यापन, लेखन और उपदेश ये तीन कार्य प्रधान होते हैं। कोई विद्वान् केवल अध्यापन का ही कार्य करते हैं, कोई लेखन में ही व्यस्त रहते हैं और कोई उपदेश मात्र ही कर सकते हैं। श्री रामप्रसाद जी इन तीनों ही कार्यों में व्यस्त रहे। तीनों कार्य समान रूप से चलते रहे।

आपने द0उ0 महाविद्यालय, यमुनानगर, गुरुकुल झज्जर, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरद्वार (वेदभाग) में अध्यापन के अतिरिक्त, आचार्य और उप–कुलपति पद पर कार्य भी किया।

उत्तर प्रदेश, दिल्ली, मध्यप्रदेश, आन्ध्रप्रदेश, हरयाणा, पंजाब, हिमाचल, राजस्थान, महाराष्ट्र, गुज्जरात, नेपाल और अमेरिका आदि में वैदिक धर्म का नाद बजाया। आपने वैदिक धर्म के प्रचार–प्रसार के लिये लगभग 4 दर्जन पुस्तकें लिखीं। श्री रामप्रसाद जी के जीवन में भर्तृहरि का अधोलिखित श्लोक अक्षरशः चरितार्थ होता है–

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा
सदसि वाक्पटुता युधि व्रिकमः।
यशसि चभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौः
प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम्।।

ईश्वर और विद्वानों की पूजा, सामाजिक जीवन में अद्भुत संगतिकरण और विद्या आदि शुभ गुणों के दान की उच्च भावना से ओतप्रोत होने से आचार्य रामप्रसाद जी को एक यज्ञिय जीवन की प्रतिमूर्ति कहा जा सकता है। वह प्रतिमूर्ति अब कहाँ चली गई? यज्ञिय जीवन के अभिलाषी उस प्रतिमूर्ति को इधर–उधर ढूंढ़ते फिरते हैं, किन्तु अब उन्हें वह दिखाई नहीं देती है। अब तो वह अनुव्रत के रूप में ही उस दिव्य मूर्ति के दर्शन हो सकते हैं।

अनुव्रतः पितुः पुत्रों माता भवतु सम्मनाः।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वावाचं वदत भद्रया।।

–आचार्य सुदर्शन देव जी
संस्कृत सेवा संस्थान
776/34, हरिसिंह कालोनी,
रोहतक।

एक अद्भुत व्यक्तित्व

आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार का नाम लेते ही कई स्मृतियाँ मानस–पट पर एक साथ उभर आती हैं। जो उन के विविध चित्रों से उसे विभूषित करती हैं। उन चित्रों में उनका गौर वर्ण, सौम्य, हँसमुख चेहरा, भावपूर्ण आँखें और मृदुभाषी रसीली मधुर वाणी, विशुद्ध भारतीय वेशभूषा, सात्त्विक और कर्मठ जीवन, निष्काम–सेवा, मानवीय करुणा से ओतप्रोत संवेदनशील हृदय, वेद मंत्रों का उद्घोष करने वाला ओजस्वी व्यक्तित्व अपने रंगों और रेखाओं से बहुत कुछ कह जाता है। कहाँ से मैं प्रारम्भ करुँ समझ नहीं आता। क्या भूलूँ? क्या याद करूँ पता नहीं चलता। फिर भी 'रामप्रसाद' नाम मात्र एक नाम नहीं, अपितु एक अद्भुत व्यक्तित्व का प्रतीक थे। राम प्रसाद एक व्यक्ति नहीं, समष्टिगत चैतन्य का एक धवल रूप थे जो मानवी आकार में दिव्य गुणों का भण्डार थे।

मेरा उन से प्रथम परिचय सन् 1972 में मॉडल टाऊन दिल्ली (उनके ससुराल में) में उनकी धर्मपत्नी सरोज आर्या के माध्यम से हुआ। श्रीमती सरोज आर्या से मेरा परिचय 1961 में दिल्ली प्रशासन के एक राजकीय विद्यालय में हुआ। तब से वे मेरी छोटी बहन, घनिष्ठ मित्र और शुभचिन्तक रहीं हैं। तब कौन जानता था कि उन के पतिदेव रामप्रसाद जी से यह परिचय अटूट, प्रगाढ़ भ्रातृभावना से रिश्ते में बदल जाएगा। उनकी साधारण वेशभूषा, सौम्य और शान्त स्वभाव और मृदु वाणी में एक विलक्षण आकर्षण था जिसने मुझे उन्हें 'भाई' सम्बोधन देने पर विवश किया। वे भी मुझे अपनी बड़ी बहन मानते। मिलने पर पाँव छूते। बड़ा अजीब लगता। आर्य जगत् और वैदिक संसार जिनके पाँव छूता हो, वेदों के प्रखर व्याख्याता और गुरुकुल विश्वविद्यालय, हरिद्वार के उपकुलपति विद्वान् वेदरत्न आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार मेरे पाँव छूएं? यह उन की विनम्रता और उम्र में बड़े लोगों के प्रति आदर–भावना ही थी जिससे मैं भावविभोर होकर मंत्रमुग्ध सी उन का चेहरा निहारती। चूँकि मेरा विषय भी वेद और संस्कृत था, अतः वेदों पर उन्हें मुझ से चर्चा करने में रस मिलता। विवाहोपरान्त ज्वालापुर में जब उन्होंने गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया तो मुझे सरोज सी सुयोग्य, सुशिक्षित, प्यारी सखी और बहन के साथ रामप्रसाद जी जैसा एक आध्यात्मिक भाई भी मिला। मैं भी प्रिय सरोज के पास ज्वालापुर जाना तभी पसन्द करती जब रामप्रसाद जी ज्वालापुर में होते। उन के सान्निध्य में अनुभवों के आदान प्रदान के साथ वेद–मंत्रों पर चर्चा का सुअवसर मिलता। ऐसे अवसर बहुत अधिक तो सुलभ नहीं हुए पर जितने हुए उनके

आधार पर मैं यह कह सकती हूँ कि वे गुदड़ी में लाल थे। साधारण होकर भी असाधारण थे। उन की जड़ें धरती के ऊपर जितनी दृष्टिगोचर होतीं थीं उससे अधिक धरती के अन्दर गहरी थीं।

वेदों का सन्देश जन जन तक पहुँचाने वाले सच्चे मिशनरी–

अपनी वाणी तथा लेखनी द्वारा वेदों को सरल सुबोध व्याख्या करके रामप्रसाद जी ने उनका सन्देश जन मानस तक पहुँचाया। वेद–सेवा ही उनके लिये प्रभु–सेवा थी। मानों राष्ट्र–कवि मैथिलीशरण गुप्त के शब्दों में वे कह रहे हों–

न तन सेवा न मन सेवा
न जीवन और न धन सेवा
मुझे है इष्ट जन – सेवा
सदा सच्ची भुवन–सेवा

एक सच्चे मिशनरी सिपाही के सदृश वे अपने लक्ष्यः हेतु बलि हो गये।

शरीर से दुर्बल और वर्षों से मधुमेह से ग्रस्त होते हुए भी वे अपने संयत खान–पान और संयमी जीवन से उसका सामना करते रहे। सक्रियता और कर्मठता नहीं छोड़ी। संकल्प के धनी, अपने व्रत के पालक और अदम्य उत्साह की प्रतिमूर्ति थे वे।

अपने प्रवचनों की श्रृंखला में चण्डीगढ़ के अन्तिम दौरे पर जाने से पूर्व धर्मपत्नी श्रीमती सरोज आर्या ने उन से विनयपूर्वक प्रार्थना की और आग्रह भी किया कि आप अभी – अभी पानीपत के कार्यक्रम से लौटे हैं। चिकित्सकों ने आपको अधिक श्रम करने से मना किया है। अतः आप चण्डीगढ़ का कार्यक्रम स्थगित कर दें। दोनों बच्चों (श्रद्धा और अनुव्रत) के अगले दिन दिल्ली से ज्वालापुर आने का भी वास्ता दिया कि कल वे घर लौटेंगे। ताला बन्द देख उन्हें निराशा होगी। 'पर वे नहीं मानें' उत्तर दिया– "बच्चों के लिये तुम रुकना चाहती हो तो रुक जाओं मैं आश्रम से किसी ब्रह्मचारी को लेकर चला जाऊँगा"। दृढ़ चट्टान की तरह उनका निश्चय अटल था संकल्प बलवान था बच्चों का मोह उन्हें अपने कर्तव्य–पालन से न रोक सका। पत्नी का प्यार उन्हें अपनी सीमा में न बाँध सका। उनके भीतर असीम प्यार, वेदों का सन्देश घर घर पहुँचाने का संकल्प ज्वालामुखी बन कर धधक रहा था। जो उनके दुर्बल शरीर को ऊर्जा प्रदान कर रहा था। उन्हें गतिमान और शक्तिमान बना रहा था। मृत्यु उस अमर पथ के पथिक की राह देख रही थी और वह तीव्रता से लपक कर अपनी बात जनमानस तक पहुँचाने को व्याकुल हो रहे थे। आखिर मृत्यु की जीत हुई। उसने उसे (राम प्रसाद जी को) वर कर अमर कर दिया और बुलन्दियों के शिखर तक पहुँचा दिया। आकाश

में यह ध्वनि प्रतिध्वनि बन कर गूँज उठी–

खुदी को कर बुलन्द इतना
कि हर तकदीर से पहले
खुदा बन्दे से खुद पूछे
बता तेरी रजा क्या है?

वे खुदा के बन्दे, प्रभु के प्यारे, वेदों के दुलारे, संकल्प–शील, व्रतशील तपोमय जीवन के सहारे अपने लक्ष्य बिन्दु तक पहुँच कर शहीद हो गये। चण्डीगढ़ की भूमि को इस बलिदानी का रक्त मिला। वह भाग्यशालिनी हो गई। उनके पार्थिव शरीर को श्रद्धांजलि देने ज्वालापुर में अथाह जन–सागर उमड़ पड़ा। दूर–दूर से आये विद्वान, सन्यासी, वानप्रस्थी, साधक, भक्त प्रशंसक, प्रिय जन, स्नेही सम्बंधी सभी ने अपनी भावभीनी श्रद्धांजलियाँ अर्पित की।

रामप्रसाद नाम की सार्थकता–

सचमुच रामप्रसाद अर्थात् प्रभु का प्रसाद बन कर धरापर उतरे। मैं नहीं जानती यह नाम उन्हें किस ने दिया। पर प्रभु के प्रसाद की तरह राम प्रसाद जी को लोगों ने ग्रहण किया। जिसे उनसे जो कुछ भी मिला–प्यार, दुलार, स्नेह, आशीर्वाद, उपदेश, सन्देश, आदेश, निर्देश– वह उसे पा कर कृतकृत्य हो गया। यही कारण है कि उनके आकस्मिक निधन के समाचार से उनके प्रशंसकों, भक्तों और चाहने वालों का अपार जन–समुदाय बिलख –बिलख कर फूट–फूट कर रो पड़ा। जाने अनजाने अपनी मूल्यवान् भावांजलि दिवंगत आत्मा को अर्पित की।

विद्वत्ता और विनम्रता का बेजोड़ सम्मिश्रण–

रामप्रसाद जी वेदों के विद्वान् थे। प्रायः विद्वान अहंकार युक्त होते हैं। रावण प्रकाण्ड पण्डित था पर अहंकारी था। अहंकार को आध्यात्मिक उन्नति के मार्ग में सर्वाधिक बाधा डालने वाला दोष माना जाता है। परन्तु यदि हम अहंकार दोष की तीव्र आलोचना करने वाले योगी सिद्ध महात्माओं के जीवन पर दृष्टि डालें तो वे स्वयं भी सूक्ष्म अहंकार से ग्रस्त मिलेंगे। जहाँ भी वे जाएंगे अपने लिये प्राथमिकता और सर्वोच्च आसन चाहेंगे, न मिलने पर वे तुरन्त दुर्वासा बन जाएंगे। क्रोध और रोष उनके चेहरे से टपकने लगेगा। कारण कहीं न कहीं बहुत गहरे में वे यशलिप्सा और लोकैषणा से पीड़ित हैं। यशलिप्सा लोभ बनकर उनके भीतर सूक्ष्म अहंकार का पोषण कर रही होती है। पर मुझे यह कहते हुए गर्व का अनुभव हो रहा है कि आचार्य रामप्रसाद जी इस भयंकर किन्तु सूक्ष्म महामारी से अछूते थे।

मेरे आध्यात्मिक गुरु स्वामी योगीराज नानक ने एक बार अपने प्रवचन में कहा था कि जीवन को सुखी बनाने के लिये सर्वदा व्यवहार में तीन बातों का ध्यान रखो–

1– अपने सुख के लिये किसी को दुःख मत दो।

2– दूसरों से सुख की अपेक्षा मत करो।

3– जो सुख तुम्हें मिल रहा है उसके लिये प्रभु का धन्यवाद करो।

उपर्युक्त सरल किन्तु महत्वपूर्ण कसौटी पर कसने से लगता है– वे इस कसौटी पर शत प्रतिशत खरे उतरते हैं।

आचार्य रामप्रसाद जी के जीवन का सर्वाधिक मोहक, आकर्षक, सराहनीय एवं महत्वपूर्ण पहलू उनका सहज सौम्य, सन्तुलित, विनम्र व्यवहार था। वे संयत, संयमी, सदाचारी पुरुष थे। वें दिव्य सम्पदा के भण्डार थे। उनके स्वभाव में प्रतिशोध, तीव्रता, आक्रोश का नामोनिशान भी नहीं था। इसके लिये अवश्य ही उन्होंने अपने जीवन को साधना की भट्टी में झोंका होगा। उनकी जिन्दगी स्वयं एक हवन थी जिसमें उनकी सम्पूर्ण मानवी दुर्बलताएं आहुति बन चुकी थी।

उन पर स्वनाम धन्य सुकवि की ये पंक्तियाँ अक्षरशः घटित होती हैं–

दीप में कितनी जलन है
धूप में कितनी तपन है
यह बतायेंगें तुम्हें वे
जिन्दगी जिनकी हवन है

विद्वत्ता और विनम्रता के मिश्रण ने रामप्रसाद जी के जीवन में मानों सोने में सुगन्ध भर दी थी।

घर–परिवार में–

प्रायः देखा जाता है कि जो व्यक्ति समाज में अधिकाधिक यश बटोर लेता है और जनता का प्रियभाजन बन जाता है, जगह–जगह जिसे सम्मानित एवं पुरस्कृत किया जाता है उसे बाहर के लोगों का स्नेह, सम्मान तो मिलता है पर घर–परिवार में उसे वह सम्मान नहीं मिलता। कारण घर की मुर्गी दाल बराबर। पत्नी और बच्चे उसे कोसते हैं, क्योंकि घर परिवार वालों को वह समुचित प्यार नहीं दे पाता और उनके प्रति अपना दायित्व नहीं निभा पाता। परन्तु मुझे यह कहने में लेशमात्र भी संकोच नहीं कि स्वर्गीय रामप्रसाद जी इसका अपवाद थे। वे एक ऐसा अद्भुत व्यक्तित्व थे जिन्होंने अपने घर–परिवार को, पत्नी और

बच्चों को न केवल स्नेह–दुलार एवं सम्मान दिया अपितु उनके लिये समुचित सुख–सुविधा के साधन भी जुटाये। उसी का यह परिणाम है कि उनकी धर्मपत्नी सरोज आर्या न केवल रामप्रसाद जी के गुणों के गीत गाती हैं अपितु उनके महान गुणों के सम्मुख एक शिष्य के सदृश श्रद्धापूर्वक सिर भी झुकाती हैं। अस्वस्थ होते हुए भी पति की सेवा में जी जान से जुटी रहती थीं और अन्त समय में भी वे उनके साथ थीं।

रामप्रसाद जी की प्यारी बेटी श्रद्धा तो मानों उनकी सजीव अनुकृति हैं। उसे अपने स्वर्गीय प्रातः स्मरणीय पिता से श्रेष्ठ संस्कार और ऊँचे विचार मिले। भरपूर स्नेह और दुलार भी। फलतः आज की इस घोर भौतिकवादी आधुनिक उच्छृंखल युवा पीढ़ी में प्यारी पुत्री श्रद्धा सात्त्विक जीवन जीने वाली, निर्मल मन और पवित्र बुद्धि वाली मेधावी विदुषी हैं। उसकी रुचियाँ परिष्कृत और परिमार्जित हैं। सुपुत्र अनुव्रत आर्य भी अल्पायु होते हुए भी परम पूजनीय पिता जी के आकस्मिक निधन के उपरान्त अपनी माँजी और बहन श्रद्धा के प्रति अपना दायित्व निभाने में निष्ठापूर्वक तत्पर है।

यही नहीं बाल्यावस्था में ही आचार्य रामप्रसाद जी ने अपने बहन–भाई, माता–पिता सबका परित्याग कर वेदों के अध्ययन एवं उपासना में अपने आपको समर्पित कर दिया था। उनके प्रति उनके परिवार के शेष जीवित सदस्य यथा भाईयों, बहनों और उनके बच्चों का अनन्य प्रेम भाव देखकर तो आश्चर्य को भी आश्चर्य होता है। कैसा अद्भुत व्यक्तित्व था आचार्य रामप्रसाद जी का, जिसमें प्यार का अपार सागर लहरा रहा था। जो असीम प्रेम का स्वामी था जिसका प्रेम बँटने पर और भी बढ़ जाता था। जो कोई उनसे एक बार भी मिल लेता उसे ऐसा प्रतीत होता कि रामप्रसाद जी की उसके साथ अनन्य आत्मीयता है। पर वह आत्मीयता दर्पणवत् अनासक्त थी। दर्पण जो सम्मुख आये उसी का चेहरा दिखाता है और फिर अपने निराकार स्वरूप में लय हो जाता है।

रामप्रसाद जी का प्रेम घर परिवार की सीमाओं में ही नहीं बंधा, वह वानप्रस्थाश्रम की सब माताओं और बन्धुओं में भी बंटा। ठीक ही है जिसका प्रेम मानवता में बंट चुका हो वह मानव के साथ कैसे बंध सकता है? वे गृहस्थी साधु थे और कर्मठ योगी।

पद का गर्व भी उनके स्वभाव की विनम्रता और सेवा भावना को नहीं दबा पाया।

मेरे यहाँ दिल्ली में आते दोनों हाथों में फलों से भरे झोले उठाये हुए। मैं यह दृश्य देख कर रोमांचित हो जाती। गुरुकुल विश्वविद्यालय का विद्वान आचार्य एवं उपकुलपति, वेदों का व्याख्याता, आर्यसमाज का धुरंधर उपदेशक दोनों हाथों में फलों से भरे थैले उठाये अपनी भारतीय वेशभूषा में प्रसन्नतापूर्वक चला आ रहा है। मुझे चाणक्य की याद आ जाती।

भारत का चोटी का कोटि का महान विद्वान, अद्वितीय कूटनीतिज्ञ, चन्द्रगुप्त को सम्राट् बनाने वाला, उसका महामंत्री एक साधारण कुटिया में रहता था। इतना ही नहीं लोक–सेवा की भावना रामप्रसाद जी के रोम–रोम में भरी थी। मानों उसे उन्हें घुट्टी में पिलाया गया, हो, माँ के दूध के साथ। मुझे ज्वालापुर उनके निवास पर कई बार जाने का सौभाग्य मिला। मैं यह देखकर दंग रह जाती कि वे कभी किसी बूढ़ी माता को चावल सस्ते दाम पर लाकर दे रहे होते थे तो कभी किसी का टूटा छाता मरम्मत कर रहे होते। कलम चलाने वाले कोमल हाथ कर्मठता का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत करते।

अतिथि– सत्कार उनके स्वभाव की एक और अनोखी विशेषता थी। हरिद्वार तीर्थ स्थल है। गंगा जी में स्नानार्थ प्रायः लोग देश–विदेश से निरन्तर आते रहते हैं। शायद ही उनका कोई भक्त, प्रशंसक या प्रिय जब ऐसा हो जो हरिद्वार आया हो और उन्हें न मिला हो। प्रायः सारा दिन आने जाने वालों का उनके निवास पर जमघट लगा रहता। पर बिना जलपान और अल्पाहार के कोई उनके आवास से न लौटता। परिचित–अपरिचित सबसे समान व्यवहार उनकी उदारता का बेजोड़ उदाहरण है। फिर इस व्यवहार में औपचारिकता कम और आत्मीयता अधिक होती थी। इससे उन्हें बड़ी तृप्ति और सन्तुष्टि मिलती थी। इस पुनीत कार्य में उनकी सहयोगिनी धर्मपत्नी श्रीमती सरोज आर्या का भी कम योगदान नहीं अपितु यह कहना चाहिये कि गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने के उपरान्त 'गृहिणी गृहयुच्यते' की बात चरितार्थ होती है। श्रीमती सरोज आर्या एक सुशिक्षित, योग्य, आर्य संस्कारों तथा उदात्त भावनाओं वाली सेवा–परायण धर्मपत्नी पाकर रामप्रसाद जी कृतकृत्य हो गये। सरोज जी ने एक सच्ची अर्द्धांगिणी बनकर उनके प्रत्येक कार्य में सहयोग दिया। विवाहोपरान्त श्रीमती सरोज आर्या ने दिल्ली की सरकारी नौकरी केवल इसलिये छोड़ दी कि जनता–जनार्दन की सेवा में रत अपने भोलेनाथ फक्कड़ पति की वे समुचित देखभाल कर सकें। उनका यह त्याग समीचीन और प्रशंसनीय था और भारत की आदर्श नारी के अनुरूप था। पतिदेव ने इसका स्वागत किया और उन्हें इतना अधिक सम्मान एवं स्नेह दिया कि 'यत्र नार्यः पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' की सूक्ति को सार्थकता मिल गई।

मानवीय करुणा और निष्काम सेवा–

आचार्य रामप्रसाद जी न केवल प्रखर प्रतिभा के धनी थे, अपितु उनके पास एक ऐसा संवेदनशील हृदय था जिसने मानवीय करुणा को मूल्य प्रदान किया। उनके हृदय से फूटी करुणा की अजस्र धारा हर दुःखी और पीड़ित की सेवा में उन्हें रस प्रदान करने लगी। धन से सेवा का ढोंग रचने वाले मिथ्या यशलिप्सा के इच्छुक पूंजीपति उद्योगपति समाजसेवियों की सूची में अग्रगण्य रहते हैं। पर तन से सेवा कर दूसरों को सुख पहुँचाना, विरले कोमल

निर्मल हृदय वाले मनुष्य ही जानते हैं। तन से सेवा दुष्कर कार्य है। इसीलिये कहा गया है– 'सेवाधर्म परमगहनो योगीनामपि दुर्लभः'। यह दुर्लभ कार्य रामप्रसाद जी के स्वभाव का मुख्य अंग था। बाल्यकाल से ही दीनदुःखियों, जरूरतमन्दों और असहायों की सेवा और सहायता उन की सहज प्रवृत्ति थी। उन्होंने अपनी लेखनी और वाणी द्वारा तो आर्य–जगत् वैदिक समाज की भरपूर सेवा की जिससे उनका यश चारों ओर भारत के कोने–कोने में फैल गया। जिस गुरुकुल विश्वविद्यालय में उन्होंने ज्ञानार्जन किया और कालान्तर में वर्षों तक वहाँ ज्ञान दान दिया, वहाँ उनकी उज्ज्वल कीर्ति की पताका आज भी लहरा रही है और युगयुगों तक लहराती रहेगी। 'यशः जीवति स जीवति।' जिसका यश जीवित है वह कभी मर नहीं सकता।

रामप्रसाद जी की इस उज्ज्वल कीर्ति को चार चाँद लगाने वाली उनकी 60 वर्ष के लगभग वे पुस्तकें हैं जो 'श्रद्धा साहित्य प्रकाशन' द्वारा प्रकाशित हुई। उपकुलपतिं पद पर रहते हुए अति व्यस्त जीवन में भी उनकी लेखनी निरन्तर चलती रही, स्थान–स्थान पर उनके प्रवचनों की शीतल मंदाकिनी भी बहती रही जिसने आर्य जनमानस को वेदों की सरल व्याख्या द्वारा तृप्त कर दिया। उनकी लेखनी और वाणी का सर्वोत्तम गुण उनकी सरल भाषा और सीधी सादी शैली है। सामान्य जीवन में घटित उदाहरणों द्वारा अपनी बात को रोचक बनाते हुए वेदमंत्रों के गूढ़ रहस्यों को खोलने में वे सिद्धहस्त थे। मानों समुद्र की गहराई में छिपे हुए अमूल्य रत्नों को बाहर निकाल कर तट पर उन्हें बेमोल बिखेर दिया हो। वे रत्न जन साधारण के लिये सुलभ हो गये। पाण्डित्य–प्रदर्शन की भावना से उन्होंने अपने आपको, सर्वथा दूर रखा। सेवा और निष्काम–सेवा उनका आजीवन व्रत रहा। भलाई कर और कुएं में डाल। **"Do good & forget it"**. यह उनका आदर्श वाक्य था।

ऐसे महान विलक्षण व्यक्तित्व के धनी आचार्य रामप्रसाद जी वेदालंकार का पार्थिव शरीर भले ही आज हमारे बीच नहीं है, यह एक कटु यथार्थ है, पर उनका यशः शरीर सदियों तक अपना सौरभ और प्रकाश धरा–गगन को सुवासित एवं प्रकाशित करता रहेगा।

उस दिव्य आत्मा को कोटि–कोटि नमन्!

–प्रकाश कपूर
महासचिव– आध्यात्मिक साधना संघ
ध्यानयोग आश्रम, दिल्ली।

सहृदय व सरलता की मूर्ति

वैसे तो मेरा परिचय गुरुकुल महाविद्यालय झज्जर (हरियाणा) से ही था। उसके बाद दिल्ली में भी अनेक स्थानों पर यज्ञों पर आचार्य जी से मिलन होता रहता था। उनके प्रवचन सुनने का भी सौभाग्य मिला। उनके प्रवचनों का जनसाधारण में बहुत प्रभाव होता था। उसका कारण था उनके प्रवचन में मधुरता, कथात्मकता व आत्मीयता होती थी। वे बोलते बोलते इतने अधिक भावविभोर हो जाते थे, अनेक बार नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगती थी। उनके प्रवचन सदा वेदमूलक ही होते थे, किन्तु वेद की गम्भीर बातों को लौकिक दृष्टान्तों व कहानियों से इतना अधिक रोचक बना देते थे जो श्रेष्ठ जनों को सरलता से हृदयंगम हो जाती थी। जो उनके प्रवचनों को एक बार सुन लेता था, उसकी उत्कण्ठा बार–बार सुनने को सतत बनी रहती थी। स्व0 आनन्द स्वामी जी की भाषण शैली ही आपको अतीव प्रिय थी।

जब आचार्य जी गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी (हरिद्वार) में गुरुकुल के रीडर, आचार्य, कुलपति आदि पदों पर कार्यरत थे उन दिनों में मेरा अनेक बार मिलन उनसे हुआ। उन दिनों मिलते ही कहा करते थे, मेरी प्रबल इच्छा है कि आप और आचार्य सुदर्शन देव जी विश्वविद्यालय में ही आ जाओ। और कहा करते थे सों की विद्या का लाभ यहाँ के छात्रों को मिले तो अच्छा रहेगा। उनका स्वभाव बहुत मधुर, मितभाषी, मृदु था, कठोरता तो कभी प्रिय ही नहीं थी। नम्रता के तो वे पुजारी थे। **"नमन्ति फलिनो वृक्षाः, नमन्ति गुणिनो जनाः"** की भावना उनके प्रत्येक कर्म में झलकती थी।

वे स्वाध्यायशील थे। 'स्वाध्यायान्माप्रमदः' का उपदेश उनके आचरण में रमा हुआ था, खाली बैठना तो वे जानते ही न थे। स्वाध्याय में भी वे वेदों को प्रमुखता देते थे। उनके निवास पर कोई व्यक्ति आ जाता तो उनका घर का बहुत बड़ा भाग स्वाध्याय की पुस्तकों से ही भरा होता था। बाहर से आने वाले व्यक्ति को भी उपहार स्वरूप अपनी पुस्तकें भेंट किया करते थे।

अतिथि सेवा के आचार्य जी परम भक्त थे। किसी विद्वान व संन्यासी के घर आने पर यथाशक्ति श्रद्धा से सेवा करते थे। पहले अतिथि को खिलाकर तब आप खाते थे। प्रतिदिन सन्ध्या व अग्निहोत्र उनकी दिनचर्या में रम गया था। सन्ध्या का समय होते ही पूरे परिवार के साथ मिलकर ईश्वरोपासना व यज्ञ अवश्य करते थे। कितना भी आवश्यक कार्य हो किन्तु उनकी इस दिनचर्या में कभी अनध्याय नहीं होता था। बड़े पदों पर आसीन होकर भी अपनी दिनचर्या में किसी प्रकार का अवरोध न होने देना आपकी बड़ी विशेषता थी। वे

स्वभाव से धार्मिक वृत्ति के थे। 'आत्मनः प्रतिकूलानि परेसां न समाचरेत' अर्थात् जो बात अपने प्रतिकूल है, जो व्यवहार अपने अनुकूल नहीं, वे दूसरे के साथ भी कभी उसे नहीं अपनाते थे।

श्री आचार्य जी निराभिमानी थे, कभी आत्मश्लाघा नहीं चाहते थे। क्रोध करते हुए कभी नहीं देखे गये। सदा ही प्रसन्न मन और शान्त स्वभाव रहते थे। उनके विषय में नीतिकारों ने ठीक ही लिखा है–

अप्रियवचनदरिद्रैः प्रियवचनादयैः स्वदारपरितुष्टैः।
परपरिवाद निवृत्तैः क्वचित् क्वचित् मण्डिता वसुधा।।

अर्थात् जो अप्रिय वचन बोलने में दरिद्र हैं, प्रियवचन बोलने के ही धनी है, अपनी पत्नी से सदा सन्तुष्ट रहते हैं, ऐसे सत्पुरुषों से यह भूमि कहीं–कहीं ही अलंकृत होती है।

काल की गति बड़ी विचित्र है कि ऐसे श्रेष्ठ पुरुषों को भी समय से पूर्व ही काल कवलित करने से नहीं छोड़ते। उसका जीवन बड़ा ही आदर्श था। वैदिक शिक्षायें तो उनके व्यवहार में रम गई थी। अथर्ववेद का यह मन्त्र तो बहुत ही उन पर चरितार्थ हो रहा है–

मधुमन् मे निष्क्रमणम्,
मधुमन् मे परायणम्।
वाचावदामि मधुमद्
भूयासं मधुसंदृशः ।। (अथर्व0 1–34–3)

यद्यपि संसार में सरल हृदय होकर निवास करना बहुत कठिन है, किसी संस्कृति कवि ने लिखा है–

नात्यन्तैः सरलैर्भाव्यं गत्वापश्य वनस्थलीम्।
सरलास्तत्र छिद्यन्ते कुब्जाः तिष्ठन्ति पादपाः।।

बहुत सरल स्वभाव का होना भी ठीक नहीं है। क्योंकि वन में जाकर देखो जो शाखा सीधी तथा काम में आने वाली होती है, उसी पर परशु पहले चलता है और जो टेढ़े मेढ़े होते हैं, उनको कोई काटता नहीं हैं। प्रतीत होता है कालबलि ने भी सरलता की मूर्ति को हमसे असमय में ही छीनकर उनके अमृतपान से हमें वञ्चित कर दिया है। भगवान् से मेरी करबद्ध विनती है कि ऐसे सहृदय, सरल, मधुर तथा वेद के अनन्य भक्त को संसार में पुनः भेजकर जगत् के अविद्यान्धकार को दूर कराने में सहायक बनें।

– राजवीर शास्त्री
(सं0 दयानन्द सन्देश)
मोदीनगर।
दि0 19–7–99

"एक मुलाकात जो कभी भूल न पाऊँगा"

श्री रामप्रसाद जी वेदालंकार से मुझे जीवन में एक ही बार मिल पाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। पिताजी श्री रतीराम शर्मा (सिलीगुड़ी) ने एक दिन का कार्यक्रम मुख्यतः उनसे भेंट करने के लिये ही बनाया था।

जब उनके घर वेदसदन पहुँचे तो उनकी व उनकी धर्मपत्नी की आत्मीयता से हम सब अभिभूत हो गये। उनके आतिथ्य में औपचारिकता नहीं, गहरा प्यार झलक रहा था। पिताजी और माताजी के लिये ये मुलाकात/भेंट पहली नहीं थी इसलिए उनकी वार्ता में पहली मुलाकातों की बातों का प्रभाव मैं पढ़ पा रहा था। कुछ देर में ही वे वेद–प्रचार के कार्यक्रमों की चर्चा में जुट गये। आचार्य रामप्रसादजी ने बताया कि पुस्तकों की रचना 50 तक पहुँच गई है, और आगे कार्य जारी है। कैसेट भी कई आ गए हैं। कुछ देर में ही उठकर अंदर गए और ढ़ेर सारी पुस्तकें व कैसेट ले आये– हमें देने के लिए। पिताजी ने उनसे आग्रह किया कि एक पुस्तक आप और लिखें जिसका प्रकाशन व्यय मैं वहन करूँगा। कुछ पुस्तकों के प्रणयन की भूमिका का जिक्र करते हुए उन्होंने अपने भावपूर्ण अनुभव सुनाए। कुछ अनुभवों की मार्मिकता इतनी गहरी थी कि उनके आँखों के कोर गीले हो गये।

फिर कुछ चर्चा उन्होंने अपने निजी जीवन के सम्बन्ध में की। 'मेरे जीवन को बनाने में मेरी बहन का बहुत योगदान रहा है।' 'मेरे माता–पिता मुझे जल्दी ही छोड़कर चले गए थे। मेरी बहन ही मेरा सम्बल व मार्गदर्शक बनी। अभी भी जब आती हैं, तो बहुत खुश होकर लौटतीं हैं।' बहन की खुशी को बनाएं रखने में उनकी धर्मपत्नी की जो भूमिका थी– वह बहुत स्पष्ट थी।

वेद पर और श्रम करना चाहते थे और प्रत्येक कक्षा के छात्र–छात्राओं के लिए वे वेद को सुलभ करना चाहते थे।

कुछ बातें और हुई और उनकी पुस्तकों व कैसेटों का खजाना लेकर हम लोग दिल्ली लौट आये। मैंने एक–एक कर उनकी पुस्तकें पढ़ीं। उन पुस्तकों से मुझे उनकी वार्ता इतनी गहरी जुड़ी हुई दिखाई दी, जैसे कि उन्होंने अपने जीवन के अनुभूत सत्यों को ही इन पुस्तकों में उजागर कर दिया है।

मैंने उनकी पुस्तकों की कुछ अन्य विद्वानों से भी चर्चा की। डा0 वागीश आचार्य, प्राचार्य, आर्य गुरुकुल ऐटा से जब मैंने चर्चा की तो उन्होंने बताया कि उपनिषद के कुछ मंत्री

की इतनी सहज और ग्राह्य व्याख्या जो उन्होंने की है– वह मुझे कहीं भी नहीं मिली।

मेरी बहुत इच्छा थी कि मैं एक बार उनसे फिर मिलकर आऊँगा। उनकी बेटी श्रद्धा और बेटे अनुव्रत से भी थोड़ी देर मुलाकात हुई, दोनों के संस्कारों ने मुझे प्रभावित किया। दिल्ली आकर बेटी श्रद्धा से कई बार फोन पर भी सम्पर्क हुआ पर मेरी उनसे चर्चा करके उनके गहन–ज्ञान से लाभ उठाने की इच्छा अधूरी ही रह गई।

जब मुझे उनके दैहिक शरीर छोड़ने की सूचना अखबार के माध्यम से मिली तो मुझे बहुत दुःख हुआ। पिताजी को भी मैंने सिलीगुड़ी खबर की।

जीवन की लम्बाई एक बात है, और गहराई दूसरी। 'कितना जिया' से ज्यादा महत्वपूर्ण है, 'कितना किया और कैसे जिया'।

"मौत तो वह है जिसका करे ज़माना अफ़सोस वरना तो लोग हर रोज़ मेरा करते हैं।'

आचार्य जी ने 'अग्निना अग्नि समिध्यते' के अनुसार न जाने कितनी ही आत्माओं के यज्ञकुण्ड में अग्न्याधान किया होगा। जब मुझे एक ही भेंट में इतना गहरा छू गए, तो जो भाग्यवान उनके निकट सानिध्य में रहें होंगे, उन्होंने उनके पवित्र जीवन से कितना कुछ पाया होगा। इन पंक्तियों को लिखते समय मेरी आँखें आर्द्र हैं, और एक आँसू बांयी आँख से छलक कर गिर भी पड़ा है – उनकी स्मृति में।

उनकी सहधर्मिणी ने उनके संकल्पों को पूरा करने का बेड़ा उठाया है– जो स्तुत्य है। मैं ईश्वर से उनके इस संकल्प को पूरा करने के लिये उनकी शक्ति व साधन दें– ऐसी प्रार्थना करता हूँ।

न जाने मेरे जैसे कितने ही हृदय उनके वियोग से दुखित हुए होंगे, पर उनका यशः शरीर तो सदा विद्यमान रहेगा। वेद की ज्योति जो उन्होंने दीप्त की है, उसे हम बढ़ाकर उनके काम को कुछ आगे ले जा सकते हैं। **जो "दिया" उन्होंने जलाया है, उसे सब आशीष दें– यह कामना है।** पुनश्चः जब मैंने यह संस्मरण पिताश्री को सुनाया, तो उनकी आँखें भी सजल हो गयी। संक्षेप में उन्होंने कहा– वे एक महान विद्वान और महान वेदरक्षक थे। मुझे उनकी स्मृति बनी रहती है।

– डॉ0 आनन्द कुमार शर्मा
कार्यकारी निदेशक (सतर्कता)
रेल मंत्रालय, रेल भवन
नई दिल्ली–110001

'राम' तो राम थे

परम आदरणीय आचार्य रामप्रसाद जी वेदालंकार के मन में किशोर अवस्था में ही दसवीं कक्षा पास करने के पश्चात् संस्कृत एवं वेदों के पढ़ने की ऐसी तीव्र इच्छा उत्पन्न हुई कि वह मार्ग दर्शन के लिए चन्दोसी में अपना घर छोड़कर वहाँ से हमारे पास रेणुका आ गए। आदरणीय भ्राता बालमुकंद जी एवं भाभी जी (राम जी की बहिन) तथा मैंने आपस में विचार विमर्श करके यह निश्चय किया कि राम जी को यमुना नगर के पास वैदिक साधन आश्रम में पूजनीय स्वामी आत्मानंद जी के पास पढ़ने के लिए भेजा जाए।

पूज्य स्वामी जी पाकिस्तान में रावलपिंडी के पास गुरुकुल रावलां के आचार्य थे। श्री स्वामी जी त्यागी तपस्वी एवं वेदों के प्रकांड विद्वान थे। सौभाग्य से मेरा रावलपिंडी में उनसे सम्पर्क हुआ था। मेरे मन में श्री स्वामी जी के लिए अगाध श्रद्धा थी। वह भी मेरे साथ बहुत स्नेह करते थे। जब भी मैं किसी वेद मंत्र के अर्थ जानना चाहता था और उनसे पूछता था, तो वह मुझे प्यार से अपने पास बिठा कर मन्त्र का अर्थ अति संक्षिप्त और सरल ढंग से समझा देते थे।

अतः मैं रामप्रसाद जी को पूज्य स्वामी आत्मानंद जी के चरणों में वैदिक साधन आश्रम में ले गया, और उनको वेदों और संस्कृत पढ़ने के विषय में बता दिया। श्री स्वामी जी ने कहा आप निश्चिन्त होकर इन्हें मेरे पास यहाँ छोड़ जाओ। इसके पश्चात मैं दो तीन बार रामजी को मिलने वैदिक साधन आश्रम गया। हर बार मैंने रामजी को सादे और अल्प वस्त्रों में पढ़ाई में मग्न देखा। एक बार जब मैं राम जी को मिल कर स्वामी जी को मिलने गया, तो स्वामी जी ने पूछा, आप अपने रामप्रसाद को मिल आए? मैंने उत्तर में कहा, राम अब हमारा राम नहीं है। यह आपका राम है। स्वामी जी ने मुस्करा कर कहा, कुछ समय के पश्चात् राम तो मेरा भी नहीं रहेगा, यह तो जन जन का राम हो जायेगा।

आचार्य राम उच्च कोटी के वेदों के विद्वान थे। आचार्य राम मधुर भाषी मन वचन और कर्म से सत्यवादी, अहिंसावादी, धर्मात्मा, और मिलनसार थे। उनका जीवन सादा और सरल था। वह लोभ, मोह, अहंकार, ईर्ष्या–द्वेष और क्रोध से रहित थे। आचार्य राम संयमी, नम्र, सन्तोषी, सहनशील, तन मन से शुद्ध पवित्र, ईश्वर विश्वासी, श्रद्धालु तथा प्रभु भक्त थे।

सबका भला चाहने वाले परोपकारी थे। आचार्य राम का जीवन यज्ञमय जीवन था। कौन सा ऐसा गुण है जो राम में नहीं था?

कहतें हैं गुणों में एक दोष होता है। वह यह दोष होता है कि सारे गुण एक व्यक्ति में इकट्ठे नहीं हो सकते। किन्तु आचार्य राम में सभी गुणों ने इकट्ठे हो कर अपने इस दोष को मिटा दिया, अर्थात् वह सभी गुण सम्पन्न थे। आचार्य रामप्रसाद जी के सभी गुणों का वर्णन करना तो कठिन है, तथापि कुछ गुणों का वर्णन मैं अवश्य करना चाहता हूँ।

त्यागः— आचार्य राम के दो भाई और थे। एक बड़ा था, एक छोटा था। चन्दोसी में इनका कपड़े का अच्छा व्यवसाय था, घर में हर प्रकार की सुख सुविधा थी। परन्तु आध्यात्मिकता की, वेंदों के अध्ययन की एवं संस्कृत पढ़ने की तीव्र इच्छा के कारण घर—बार त्याग दिया।

नम्रताः— आचार्य राम गुरुकुल कांगड़ी के आचार्य थे। वेदों के प्रकांड विद्वान थे। उच्च कोटि के वक्ता थे। ओजस्वी, तेजस्वी, माननीय व्यक्ति थें। तथापि मेरे पांव छूते थे। इसलिए कि मुझसे आयु में कम थे। इससे मुझे बड़ी शर्म महसूस होती थी, कि एक ऐसा महान व्यक्ति मुझ जैसे साधारण जन के पांव छुए। क्या यह नम्रता की पराकाष्ठा नहीं?

सम्मानः— आचार्य राम को कई संस्थाओं की ओर से सम्मानित किया गया था। परन्तु राम के लिए मान—अपमान बराबर थे। क्योंकि राम तो उजले वस्त्रों में भी सच्चे साधु संन्यासी थे।

प्रिय सत्यः— मनुस्मृति में लिखा है, सत्य बोलो; प्रिय सत्य बोलो, अप्रिय सत्य मत बोलो। आचार्य राम मनु महाराज के इस निर्देश का मन, वचन और कर्म से पालन करते थे।

मधुर भाषीः— राम के सम्पर्क में जो भी आता था, उनकी मधुर मीठी वाणी और सद्व्यवहार से अति प्रभावित हो जाता था। और ऐसा अनुभव करता था कि राम तो केवल मेरे ही प्रिय हैं। राम का प्रवचन, उदाहरणों के साथ, वेद मंत्रों की सरल व्याख्या प्रत्येक के मन को मोह लेती थी। प्रत्येक श्रोता बार—बार उनके प्रवचनों को सुनना चाहता था।

यज्ञमय जीवनः— राम जी का जीवन यज्ञमय जीवन था। घर पर हों या बाहर हों, हवन प्रति—दिन करते थे। तथा जन—जन को यज्ञ की प्रेरणा भी करते थे। अधिकाधिक लोगों को यज्ञ कराते भी थे। वेद प्रचार द्वारा ज्ञानामृत बांटते थे। तथाधर्म प्रचार द्वारा मानव मात्र का उपकार करते थे। स्वयं कष्ट उठाकर भी सब का भला करते थे।

साहित्य रचनाः— आचार्य राम जी ने आस्सी के लगभग छोटी—बड़ी पुस्तकों की रचना की

थी। सभी पुस्तकें सर्वोत्तम हैं। अनेक विषयों पर वेदों, शास्त्रों के आधार पर, सरल, स्पष्ट, मनोरंजक तथा प्रेरणादायक पुस्तकों की रचना की गई है। राम जी सभी पुस्तकें "श्रद्धा साहित्य प्रकाशन" द्वारा प्रकाशित कराते थे। और निशुल्क बांटते थे। वास्तव में तो राम जी, पुस्तकों द्वारा ज्ञान अमृत बांटते थे। हजारों लाखों पाठक रुचि पूर्वक राम जी की पुस्तकें पढ़कर लाभ उठाते थे। तथा अपना जीवन सफल करते थे। अब भी राम जी की पुस्तकें अत्यन्त श्रद्धा और प्रेम से पढ़ी जा रही हैं। राम जी की पुस्तकें प्रेरणा के स्रोत हैं। अमृत के घूँट हैं। अनेक दानी सज्जन श्रद्धा से, "श्रद्धा साहित्य प्रकाशन" को जी खोलकर दान देते रहते थे।

प्रभु भक्तिः– रामजी नियमित रूप से प्रतिदिन संध्या–हवन, प्रार्थना किया करते थे। सत्संग में जब कभी प्रभु भक्ति के भजन गाते थे तो सभी श्रोता भावविभोर हो जाते थे।

वेद प्रचारः– आचार्य राम वेद प्रचार, धर्म, प्रचार की धुन में दूर–दूर तक जाते रहते थे। ऋषि जन्म स्थान टंकारा (गुजरात) तो दो तीन बार गए थे। अंतिम दिनों में रोग ग्रस्त होते हुए भी प्रचारार्थ चंडीगढ़ चले गए थे। वहाँ पर ही उनकी जीवन लीला समाप्त हो गई। वह अपने परम पिता की गोद में चले गए। उनके इस नश्वर शरीर के त्यागने पर, प्रत्येक छोटे बड़े, गरीब–अमीर, नर–नारी, बाल –वृद्ध, साधु–सन्त, सबकी आँखों से आँसू टपक रहे थे। राम तो राम थे, राम सबके प्यारे थे, सबके दुलारे, सबकी आँखों के तारें थे। राम तो राम थे।

परिवारः– आचार्य राम जी की पत्नी श्रीमती सरोज देवी विदुषी देवी है। उनमें भी राम जी के समान कई गुण हैं। शालीनता, नम्रता, सेवा भावना, परोपकार की भावना, आदि उनके सद्व्यवहार से स्पष्ट उजागर होते हैं। राम जी की सुपुत्री श्रद्धा के वेद मंत्रों का शुद्ध उच्चारण और सुन्दर भजन स्वयं मैंने सुने हैं। बेटी श्रद्धा विदुषी हैं, शालीनता, नम्रता, मृदुता आदि गुणों में अपनी माँ के समान है। रामजी के सुपुत्र अनुव्रत सभ्य है, मिलनसार हैं। उनमें भी प्रेम भावना, सेवा भावना में कोई कमी नहीं है। वह भी अपने पिताजी के समान मधुर भाषी बड़ों का आदर सम्मान और सेवा करने वाले हैं। आचार्य राम का परिवार धर्मपरायण तथा यज्ञ प्रेमी हैं। सभी पाठकों को आचार्य राम जी और उनके परिवार का अनुकरण करना चाहिए। मानव मात्र के लिए उनका जीवन अनुकरणीय है।

– पिशोरीलाल,
प्रेम ददाहू, ज़िला सिरमौर,
हि० प्र०

वेदरत्न प्रो० रामप्रसाद

बड़े शौक से सुन रहा था जमाना।
तुम्हीं सो गए दास्तान कहते कहते।।

भ्राता राम! फिक्र न करो। तुमने वैदिक सेना के अनुपम महारथी की तरह वीरगति पाई है। तुम्हारे अनुव्रती, तुम्हारी भार्या, तुम्हारे सहयोगी और अनेक उपकृत, प्रशंसक तुम्हारा धनुष उठाकर युद्धभूमि में तुम्हारे लक्ष्य को प्राप्त करने को अधीर हैं। तुमने वेद के अमर संदेश को घर घर पहुँचाने का जो संकल्प धारण किया था, उसे यह पूरा करने में कोई कसर नहीं छोडेंगे। तुम जैसे योद्धा का स्थान तो कोई पूरा नहीं कर सकता। फिर भी यथा साध्य जो हो सकेगा, किया जायेगा।

आचार्य गोवर्धन शास्त्री (1881 – 1927) स्वामी श्रद्धानन्द के वक्त में गुरुकुल काँगड़ी विद्यालय के मुख्याध्यापक रहे। स्वामी जी की प्रेरणा से उन्होंने रसायन और भौतिकी की पाठ्य पुस्तकों की हिन्दी में रचना की। फ्रांस के मशहूर दार्शनिक रूसो की 'ऐमील' का 'माँ और बच्चा' नाम से हिन्दी रूपान्तर किया। बाद में दिल्ली से 'प्रहलाद' नाम की पत्रिका निकाली और रामजस हाईस्कूल के प्रथम मुख्याध्यापक रहे। सन् 1920 में अपने वतन डेरा गाज़ी ख़ान (जो अब पाकिस्तान में है) के आर्य सज्जनों के आग्रह पर, दिल्ली छोड़, डेरा में ऐंग्लो संस्कृत हाई स्कूल स्थापित किया। उन का जद्दी ग्राम वहाँ की संघड़ तहसील का मुख्यालय तौंसा शरीफ़ था। वहां केवल मिडिल तक वर्नाक्यूलर स्कूल ही था। वहाँ हाईस्कूल चलाने के लिए उन्होंने संघड़ विद्या सभा की स्थापना की और अंग्रेजी, संस्कृत तथा आर्य भाषा के अध्ययन अध्यापन के लिए संघड़ ऐंग्लो–वर्नाक्यूलर हाई स्कूल खड़ा किया। ऐसे कर्मठ, पुरुषार्थी आर्य योद्धा की जन्मशती (1981) के अवसर पर संघड़ विद्या सभा ने गोवर्धन सम्मान प्रतिष्ठित किया, जो ऐसे विद्वान को दिया जाना निश्चित हुआ जिसने वैदिक मूल्यों, वैदिक सभ्यता, वैदिक, वैज्ञानिक आचार–विचार के प्रचार, प्रसार में श्लाघनीय कार्य किया हो।

प्रथम पुरस्कार के लिए चयन समिति ने आचार्य रामप्रसाद को सबसे अधिक उपयुक्त पाया। तदर्थ प्रशस्ति–पत्र में कहा गया कि वेद–वेङ्गग का अध्ययन–अध्यापन प्रो0 रामप्रसाद वेदालंकार के जीवन का अभिन्न अंग बन गया है। वैदिक साहित्य के पुनरुद्धार का संकल्प लेकर आपने निश्चय किया है कि वैदिक साहित्य ऐसे सरल, सुबोध रूप में प्रकाशित हो जिससे सामान्य योग्यता रखने वाला व्यक्ति भी उसे सहज हृदयंगम कर लाभान्वित हो तथा उसके मानवतावादी सही रूप का परिचय प्राप्त कर सके। आपके इस महत्त्वपूर्ण की उल्लेखनीय विशेषता यह है कि आप वैदिक साहित्य को बेचते नहीं हैं। श्रद्धापूर्वक दान देने वाले महानुभावों के सहयोग से आप उसे 'श्रद्धा साहित्य प्रकाशन' द्वारा प्रकाशित करके सुपात्रों में वितरण करने का प्रयास करते हैं।

11 ऐप्रिल, 1981 के दिन गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय के 81वें वार्षिकोत्सव पर प्रो0 रामप्रसाद को **'गोवर्धन शास्त्री स्मृति पुरस्कार'** द्वारा सम्मानित करते हुए आशा प्रकट की गई कि भारतीय संस्कृति के स्रोत वेद के प्रचार प्रसार के लिए आपका कार्य अक्षुण्ण गति से आगे बढ़ता रहेगा। तब तक आप द्वारा रचित 19 पुस्तकें सामने आ चुकी थीं। उनमें प्रार्थना सुमन, महान् विदुर के महान् उपदेश, वैदिक पुष्पाञ्जलि, वैदिक गृहस्थाश्रम, जीवनज्योति, आदि उल्लेखनीय हैं।

इस के बाद अगले 17 वर्षों में आपकी साधना निरन्तर, अनवरत् चलती रही। आपने 60 के करीब लघु पुस्तकों का निर्माण किया। हजारों वेद मंत्रों की सहज, सुगम व्याख्या की, हज़ारों ही पृष्ठ प्रकाशित किये, सैंकड़ों व्याख्यान दिए। कितने ही सम्मान अर्जित किए। इस दौरान प्रकाशित पुस्तकों में **वैदिक आदर्श परिवार, ईशोपनिषद्, नचिकेता के तीन वर, केनोपनिषद्, अष्टांग योग, क्रिया योग, दान दिए धन न घटे, जुआ मत खेलो, पुरुषार्थ करो, ईश्वर, मुझे सुखी करो**, आदि उल्लेखनीय हैं। आप की **'अनन्त की ओर'** का **'क्वैस्ट फार दि इनफाईनाईट'** नाम से अंग्रेजी रूपान्तर भी हुआ। दर असल विदेश में बसे भारतीय मूल के नागरिकों की ज़बदस्त मांग है कि आप के वैदिक साहित्य का अंग्रेजी रूपान्तर किया जाय, जिससे उन की नवोदित पीढ़ी लाभान्वित हो। गुरुकुल विश्वविद्यालय का अंग्रेजी विभाग यह कार्य हाथ में ले सकता है। वक्त था, गुरुकुल से 'वैदिक पाथ' नाम से अंग्रेजी जर्नल निकला करता था। उस की विदेश में बड़ी कद्र थी। उसे पुनर्जीवित करके उसके द्वारा प्रो0 राम प्रसाद का साहित्य विदेश में पहुँचाया जा सकता है।

प्रो0 रामप्रसाद कलम के धनी तो थे ही, बड़े ही मधुर कण्ठ, शालीन, ऋषितुल्य, धारावाहिक वक्ता, व्याख्याता थे। वेद मंत्रों की व्याख्या करते हुए वह सदैव, जनसाधारण की आंप बीती के दृष्टान्त देते हुए, गूढ़ से गूढ़ पाठ को भी सरल, सुबोध बना देते थे। प्रो0 रामप्रसाद की वर्णन शैली ऐसी रोचक थी कि श्रोता अथवा पाठक के बोर होने का प्रश्न ही नहीं। वह इतना और ऐसा मधुर प्रेरणादायक साहित्य पीछे छोड़ गए हैं कि उसका जितनी बार स्वाध्याय करो, उतना ही मजा आएगा और मन शान्त, निर्मल और उत्साहपूर्ण भावनाओं से ओतप्रोत अनुभव करेगा।

ऐसे मनीषी को मेरे शत् शत् प्रणाम।

– बलभद्र भारती
(पूर्व कुलपति, गुरुकुल कांगड़ी वि.वि. हरिद्वार)
"गोवर्धन" ए–15ए, विजयपथ,
तिलकनगर, जयपुर–302004

वैदिक वाङ्मय के कुशल व्याख्याकार

प्रो0 रामप्रसाद वेदालंकार वेद–वाड्.मय के तलस्पर्शी व्याख्याकार हैं। वेद के मानव जीवनोपयोगी प्रयोजन को उद्घाटित करने में अपना उदाहरण आप हैं। वेद मन्त्रों को आधार बनाकर ईश्वर भक्ति, निःस्पृहता और अनासक्ति, परिवार, समाज–राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्य–बोध, विवेक और नैतिकता जैसे विषयों को छोटे–छोटे जीवन–प्रसंगों द्वारा अपने प्रवचनों में बड़ी कुशलता से व्याख्यापित करते हैं। सच पूछा जाय तो आज वैदिक जगत् में वे एकमात्र ऐसे वेद कथाकार हैं, जो श्रोताओं को मन्त्रमुग्ध कर देते हैं। उनकी शैली में स्वाभाविक सरलता, हृदयग्राहिता और सजीव अनुभवों की आर्द्रता की पदे–पदे प्रतीति होती है। वक्ता, विषय और श्रोता तीनों में ऐसा तादात्म्य स्थापित होता है कि वे तीन रह ही नहीं जाते, एक हो जाते हैं।

प्रो0 रामप्रसाद जी की एक विलोभनीय विशेषता की ओर बरबस ध्यान जाता है। अपने गरिमामय प्रसन्न व्यक्तित्व को पुष्प–पंखुड़ियों की तरह वे चारों ओर ऐसा बिखेर देते हैं कि स्वयं शून्य हो जाते हैं। मुझे लगता है कि उनका यह शून्य हो जाना ही उनकी उज्ज्वल उपलब्धि है। अन्यथा पांडित्य–भार से वेदकथा शून्य हो जाती।

राशिराशि जीवन के क्षणचित्रों, आन्तरिक ऊर्मियों और घर–घर, गाँव–गाँव, नगर–नगर, यात्रा–प्रवास में साकार होती अगणित जीवन–कथाओं के कोश प्रो0 रामप्रसाद, इनके माध्यम से वेद को सहज ही बोधगम्य, व्यवहार्य बना देने की अनुपम क्षमता से सम्पन्न हैं। यही कारण है कि आबालवृद्ध वनिता, सामान्य– असामान्य, पंडित–अज्ञानी, सभी अपने कोमल कान्त, स्नेहिल, भावों का पुष्प–पराग उन पर छिड़कते रहते हैं।

आइए, प्रो0 रामप्रसाद जी से भेंट करें। उनकी फ्रन्टियर से गुरुकुल कांगड़ी तक की विकट जीवन–यात्रा के चित्रपट पर हृदय रोक कर, एक मंगलमय दृष्टि डालें।

प्रो0 रामप्रसाद की फ्रन्टियर से गुरुकुल कांगड़ी तक की दुर्गम जीवनयात्रा पर जब हम दृष्टिपात करते हैं, तो हमें आवाक् रह जाना पड़ता है। सामान्य मध्यवित्त परिवार। पिताश्री गंगा बिशन जी कपड़े के व्यापारी, जिनका 1946 में निधन हो गया। थाना, मलाकांड,

जिला मर्दान, फ्रन्टियर (अब पाकिस्तान) जैसे स्थान में जन्म। धार्मिक और राजनीतिक दृष्टि से विकट, विषम परिस्थितियाँ। दृष्टिपथ पर ना कोई लक्ष्य, न दिशा, न दिशाबोधक।

बालक रामप्रसाद थाना के ही गवर्नमेंट हाई स्कूल में प्रविष्ट हुए। पाँचवी बहन के यहाँ स्यात में और छठी की पढ़ाई रावलपिंडी में की। भारत में इस्लामी राज्य–पाकिस्तान बनने की घड़ी आ गयी थी। भारतमाता का शरीर कट रहा था। हिन्दुओं पर कत्ल, विनाश और दर–दर भटकने की काली घटायें उमड़ रही थीं। भयंकर अंधड़ की बेला आ गयी थी। रामप्रसाद जी के भाई, बहिन, माँ, भाभी किसी तरह भारत आ गये थे। रामप्रसाद पीछे रह गये थे। कहते हैं कि शहद और घी से लदे एक ट्रक में बैठकर अकेले मर्दान पहुँचे। और फिर मामा श्री भगवानदास के साथ विमान द्वारा अम्बाला आ गये। वहाँ से मामाजी के ससुर के यहाँ पटियाला पहुँचे। यहाँ उन्हें लेने के लिए भाई आ गये और पूरा परिवार जगाधरी कैम्प में रहा। रामप्रसाद यहाँ स्कूल जाने लगे।

अन्ततः पूरा परिवार चन्दौसी (उ0प्र0) आ गया और यहीं बस गया। 11 वर्ष के रामप्रसाद आदर्श हाई स्कूल, चन्दौसी में पढ़ने लगे, साथ ही भाई की जनरल मर्चेन्ट की दुकान में काम भी करते थे। नवीं में पहुँचे तो चन्दौसी आर्य समाज से सम्पर्क हो गया। अन्तःकरण में नयी दीप्ति कौंध गयी। वे बताते हैं– "वहाँ सत्य पर उपदेश सुना। दुकान में कार्य करता था। आचरण में निभा न सका। आर्यसमाज में तो उपदेश होते ही रहते थे। पुनः उपदेश सुना। साल बीत गया, सत्याचरण को आचरण में उतारने की आन्तरिक हलचल में। अन्ततः सफलता दृष्टिपथ पर प्रकटी। मैं तृप्त हुआ।" श्यामसुन्दर हाईस्कूल से 52/53 में मैट्रिक हुए और पढ़ाई छूट गयी।

प्रो0 रामप्रसाद जी कहते हैं, 'आर्यसमाज चन्दौसी' में ईशावास्य पर एक संन्यासी का व्याख्यान सुना। वे एक घंटा बोले। मैंने एक विद्यार्थी मित्र से पूछा– एक मन्त्र पर ये एक घंटा कैसे बोल गये? उसने कहा– "यह व्याकरण का कमाल है'। प्रो0 रामप्रसाद कहते हैं, "अब मैं 11 बजे से दिन भर दुकान में काम करता और उसके पहले गीता आदि पढ़ता या इधर–उधर भटकता। दशों दिशाएँ खुली थीं, पर मुझे किसी दिशा का बोध न था। शून्य में आँखें दौड़ लगातीं। कोई रास्ता नहीं मिला। अन्तर में पढ़ने की प्रबल आकांक्षा व्याकुल करती, पर क्या पढ़ें, कौन पढ़ाये? दुकान में काम करता ही था।

वे कहते हैं– "गुरुकुल कांगड़ी का तो मेरे दृष्टिपथ पर कहीं पता ठिकाना भी न था। इसी समय एक आर्यसमाजी सज्जन राममोहन घी वाले ने लाला विधीचन्द्र से मेरी भेंट करवा

दी। वे मुझे व्याकरण पढ़ाने लगे"। दुकान में तो मैं काम करता था, पर किसी न किसी संन्यासी, विद्वान की खोज में रहता था। ऐसे किसी व्यक्ति से मैं मिलता, तो घरवाले शंका करते कि मैं किसी दिन घर छोड़कर चला जाऊँगा। मेरी प्रवृत्ति, मेरे लक्षण उन्हें ठीक न लगते।

मैंने अपने आर्यसमाजी रिश्तेदार श्री पिशौरीलाल जी 'प्रेम' को पत्र लिखा। मैंने उन्हें लिखा कि मैं धन कमाकर दानी नहीं बनूँगा। मैं तो वह धन एकत्र करना चाहता हूँ, जो मेरे साथ जायेगा। मैं रेणका (हिमाचल प्रदेश) उनके यहाँ गया। पर पुनः वापस घर आ गया, और व्यापार करने लगा।

'मैं बरेली चला गया। वहाँ वुड वर्किंग इन्स्टीट्यूट में सीखने लगा। घरवालों को पता चल गया। घर से माँ तथा घर के 5–6 जन आकर घर ले गये। और मैं पुनः घर वापस आ गया।'

श्री पिशौरीलाल जी 'प्रेम' को मेरी व्याकरण पढ़ने की उत्कंठा ने प्रेरित किया। घर में मेरा मन नहीं लगता, इससे वे उद्वेलित हुए। उन्होंने स्वामी आत्मानन्द को लिखा था कि एक विद्यार्थी को अपने आश्रम में बुला लीजिए। घटनाचक्र बदलने लगा। स्वामी आत्मानंद जी का स्वीकृति सूचक पत्र मेरे घर आ गया। पत्र भाई के हाथ लगा। उन्होंने वह छिपाकर रख दिया। एक दिन भाई ने रुपये लेने के लिए मुझे घर भेजा, तो वहाँ स्वामी आत्मानन्द जी का पत्र मुझे दिखाई दिया। पढ़कर मैं बड़ा दुःखी हुआ। तत्काल मैं दुकान गया और पत्र छिपा देने के लिए भाई से बहुत नाराज हुआ। मैंने स्वामी आत्मानन्द जी को (वैदिक साधनाश्रम, यमुनानगर) उत्तर दिया कि मैं पूर्व मध्यमा की परीक्षा दे रहा हूँ, समाप्त होते ही आ जाऊँगा। बरेली से आया तो पिशौरीलाल जी 'प्रेम' के जीजा जी की मृत्यु पर मुझे रेणका भेजा गया। 18 दिन मैं वहीं पर था। जंगल में जाता और देर तक रहता।

प्रो0 रामप्रसाद जी कहते हैं कि 'मेरी अन्यमनस्कता और वर्तमान परिस्थिति से तटस्थता की प्रवृत्ति मुझे किसी अदृष्ट की ओर आकर्षित कर रही थी। मैं निरन्तर ये पंक्तियां गाता रहता–

कल वृक्ष देखा था हरा, तो आज सूखा दीखता,
कल फल लगे थे डाल पर, तो आज सब ही लापता।
यदि फूल सूखा आज तो, मुरझायेगी कल को कली,
सब काल के हैं गाल में, ये काल है सबसे बली।

भाई को मेरा यह विरक्ति–संगीत अच्छा न लगा, उन्होंने गाने से मना किया। इतने में जीवन–यात्रा एक अकल्पित मोड़ पर पहुँची। सभी को मेरी चिन्ता सता रही थी और सभी कुछ न कुछ मेरे सम्बन्ध में सोचते थे। मेरी बहिन मेरी विचित्र प्रवृत्ति से व्याकुल हुई। उन्होंने अपने पति से कहा, 'मेरा भाई एक दिन घर छोड़कर चला जायेगा। साधु–संन्यासियों की संगत में पड़कर गाँजा, सुलफा पीने लगेगा। उसका जीवन बरबाद हो जायेगा। यह बहुत बुरा होगा। अच्छा हो कि उसे योग्य हाथों में अपने हाथ से सौंप दिया जाय। मेरे जीजा जी को बहन की यह बात जँच गयी। उन्हें भी लगा कि कहीं भटक गया, तो बरबाद हो जायेगा। बस निश्चय हो गया कि स्वामी आत्मानन्द के पास भेज दिया जाये।

लोटा, थाली, बिछौना आदि सामान देकर मुझे श्री पिशौरी लाल जी 'प्रेम' के साथ विदा किया गया। वे मुझे स्वामी आत्मानन्द के पास साधनाश्रम यमुनानगर ले गये। उस समय स्वामी जी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान थे।

पाँच साल तक दयानन्द उपदेशक विद्यालय में वैदिक साधनाश्रम यमुनानगर के अन्तर्गत रहा। सिद्धान्त शिरोमणि परीक्षा उत्तीर्ण की। आश्रमवालों ने वहीं अध्यापन कार्य करने के लिए आग्रह करते हुए कहा कि 'इससे आप गुरु ऋण चुका सकेंगे और हम लोगों का काम हो जायेगा। मैंने स्वीकार कर लिया। स्वामी जी की मृत्यु हो गयी। विद्यालय भटिंडा चला गया। मैं भी वहाँ चला गया।

अब जीवन चक्र तेजी से घूम रहा था। लक्ष्य दूर तो था, पर राह मिल गयी थी। पं० विद्याधर जी मुझे हरिद्वार घूमने के लिए ले गये। वहाँ आर्य वानप्रस्थाश्रम में ठहरे। डॉ० मार्कस गुरुकुल कांगड़ी में थे। उनका वानप्रस्थ आश्रम में व्याख्यान होने वाला था परन्तु वे नहीं आये। मुझे भाषण करने के लिए कहा गया। चालीस मिनट के भाषण में मुझे जो यश मिला, वह मेरे लिए भी अकल्पनीय था। उस समय मैं 27–28 का था। मेरे भाषण से पं० विद्याधर जी बहुत गौरवान्वित हुए। गुरुकुल कांगड़ी में मैंने 'वेद विद्यालय' का बोर्ड लगा हुआ देखा'। मैंने उसमें प्रविष्ट होने की इच्छा प्रकट की। तत्काल प्रवेश के लिए फार्म भर दिया।

वानप्रस्थाश्रम से अम्बाला गया, जहाँ आर्यसमाज में मेरा भाषण हुआ। वहाँ से भटिंडा उपदेशक विद्यालय आ गया। गुरुकुल से स्वीकृति पत्र आ गया। जाकर वेद–विद्यालय में प्रविष्ट हो गया। निवास आर्य वानप्रस्थाश्रम रहा। चार साल में वेदालंकार हुआ। दो साल में वैदिक साहित्य में एम०ए० किया।

सफलता के शिखरपर :– प्रो0 रामप्रसाद जी अपनी निःस्पृह, निरहंकार वृत्ति को हुए बड़ी तृप्ति और सन्तोष के साथ बताते हैं– 'गुरुकुल कांगड़ी के अधिकारियों ने आग्रह किया कि यहीं रहकर अध्यापन कार्य करूँ। उन्होंने मुझे अन्यत्र जाने ही नहीं दिया। 1 अगस्त 1968 से वहीं अध्यापन कर रहा हूँ। 72–73 में रीडर बन गया। आचार्य पद पर नियुक्त हो गया। 1981 में उपकुलपति बन गया।

आशा–निराशा, योग–वियोग, निश्चय–अनिश्चय की अनदेखी, अनजानी राहों में मार्गक्रमण करते–करते प्रो0 रामप्रसाद सफलता के उच्च शिखर पर पहुँचे थे। अपनी बात समाप्त करते हुए अन्त में कृतज्ञतार्द्र वाणी में वे कहते हैं–

''फ्रंटियर से गुरुकुल कांगड़ी की इस दुर्गम यात्रा की ओर जब मैं दृष्टिपात करता हूँ, तो मेरी माता और भाईयों की मेरे लिए चिन्ताभरी व्याकुलता और लक्ष्यहीन जीवन का घनान्धकार दिखाई दे जाता है। पर श्री बालमुकुन्द जी और उनके छोटे भाई श्री पिशौरीलाल जी 'प्रेम' की दौड़–धूप और विवेकपूर्ण सक्रियता तो प्रभु के वरदहस्त के रूप में ठीक समय पर मुझे उपलब्ध हुई। श्री बालमुकुन्द जी की अनुपम आत्मीयता, सदाशयता मेरे भविष्य की चिन्ता और मेरे कल्याण की निःस्पृह अभिलाषा का मधुर फल मैं चख रहा हूँ। वह दिन मैं कभी भूल नहीं सकता जब मेरी बहिन ने योग्य समय में भावी संकटों की कल्पना से भयभीत होकर, योग्य हाथों में मुझे सौंपने का निर्णय मेरे जीजा जी के साथ लिया था।''

बड़े साहस के साथ आकाश से गिरी स्वाति की बूँद मरुस्थल में भी गिर सकती थी, पर सीपी के मुँह में गिरी और मुक्ता बनी। हमारे रामप्रसाद ने ऐसी ही एक छलांग लगायी थी, परिणाम कुछ भी हो सकता था। पर आज प्रो0 रामप्रसाद गुरुकुल कांगड़ी के उपकुलपति के रूप में हमारे सामने हैं।

वेदगगन में ही निरन्तर उड़ान भरने वाले प्रो0 रामप्रसाद को विश्व वेद परिषद द्वारा 'वेदरत्न' की उपाधि न मिलती तो ही आश्चर्य की बात होती।

कई पुरस्कारों, संस्थाओं और विद्वानों द्वारा सम्मानित प्रो0 रामप्रसाद जी का अब तक शुद्ध वेद–व्याख्या वाङ्मय प्रायः चार हजार पृष्ठों का प्रकाशित हो चुका है। यह साहित्य प्रचार की सुगमता की दृष्टि से प्रायः सौ–सौ पृष्ठों की पुस्तिकाओं में उपलब्ध है। मैंने पंडित जी से कहा कि इस सम्पूर्ण साहित्य को लुप्त होने से बचाने के लिए ग्रन्थ रूप में प्रकाशित करवाने की व्यवस्था करिए। ग्रन्थ रूप में प्रकाशित हो जाने पर यह स्थायी रूप से शुद्ध

वेद–कथा के रूप में पढ़ा जाता रहेगा और भावी वेद–कथाकारों का मार्गदर्शन भी करता रहेगा। पंडित जी ने मेरी प्रार्थना मान्य की है।

वेद सम्बन्धी भावी लेखन की योजना के सम्बन्ध में प्रो0 रामप्रसाद जी ने बड़े उत्साह से अपनी चिरपरिचित प्रसन्नता बिखेरते हुए कहा कि "48 भागों में 'वेदाध्ययन' विषय को प्रस्तुत करने की मैंने योजना बनायी है। गुरुकुल में समयाभाव अवश्य रहता है पर यह कार्य मैं पूर्ण करूँगा।"

प्रो0 रामप्रसाद जी का एकांगी, एकाकी जीवन उस समय पूर्णता को प्राप्त हुआ जब एक सुविद्य, सुशील, संस्कारक्षम महिला श्रीमती सरोज ने उनकी अर्द्धांगिनी सहचरी के रूप में उनके जीवन में प्रवेश किया। श्रीमती सरोज एक शिक्षिका थी, जो 12 अक्टूबर 1972 को पंडित जी के साथ परिणय सूत्र में बँध गयी। श्रीमती सरोज ने पंडित जी के जीवन में मधुमिश्री ही घोल दी। आनन्द, उमंग, तृप्ति, सन्तोष, प्रफुल्लता, कृतार्थता के रूप में श्रीमती सरोज के दर्शन प्रो0 रामप्रसाद के चेहरे पर निरन्तर होते हैं। पंडित जी की तमाम उपलब्धियों का श्रेय सरोज जी के हिस्से में जाता है, क्यों कि, उन्होंने घर को पंडित जी की प्रवृत्तियों के अनुकूल बनाने में कोई कसर नहीं रखी है।

काश! कि हम प्रो0 रामप्रसाद जी की पूज्या माता जी से, उनके स्नेहशील भाई से, उनकी भाभी से, सजग हितैषी श्री बालमुकुन्द जी तथा श्री पिशौरी लाल जी 'प्रेम' से, उनकी चिन्ताशील बहन तथा प्रिय जीजा जी से पूछ पाते कि आपकी व्याकुलता, आपकी चिन्ता दूर हुई या नहीं गुरुकुल कांगड़ी के उपकुलपति, वेदरत्न प्रो0 रामप्रसाद जी वेदालंकार को देखकर।

— जगदेव सिंह ठाकुर,
7/ए, जयव्यू,
जयप्रकाश मार्ग,
अंधेरी (प0), मुंबई–400053

एक महान् व्यक्तित्व

भारत माता धन्य हैं जिसने अपनी कोख में ऐसे लाल उत्पन्न किए हैं जिनके कार्यकलापों से न केवल भारत भूमि अपितु सारा विश्व गौरवान्वित हो गया। ऐसे ही नर रत्नों में पूज्य रामप्रसाद जी वेदालंकार 'वेदरत्न' का नाम सर्वोपरि है।

इस परिवर्तनशील संसार में असंख्य प्राणी जीवन धारण करते हैं और काल के विकराल गाल में अचानक समा जाते हैं। आना और जाना इस संसार में निरन्तर बना ही रहता है किन्तु सही अर्थों में उत्पन्न होना उसी का सार्थक है जिसके समुत्पन्न होने से परिवार, समाज और राष्ट्र की कीर्ति को चार चांद लग जाएँ। क्रूर विकराल काल ने उनको हम से सदा के लिए छीन लिया। उनके असामयिक निधन से परिवार, समाज और राष्ट्र को जो क्षति हुई है उसकी पूर्ति होना असम्भव है।

जब मैंने अपने दामाद रामप्रसाद के परलोकवासी हो जाने के हृदय विदारक समाचार को सुना तो माँ होने के नाते मैं असह्नय वेदना से छटपटा उठी, मेरी आँखों से बरबस आंसुओं की धारा बह निकली। उनके साथ मेरा लगभग गत चालीस वर्षों से बड़ा ही आत्मीय और घनिष्ठ सम्बन्ध था। उनकी धर्मपत्नी सरोज आर्या मेरी आदर्श पुत्री हैं। उनके असामयिक निधन से मेरी पुत्री सरोज आर्या पर दुःखों का असह्य पहाड़ टूट पड़ा है। उनकी सुपुत्री श्रद्धा और सुपुत्र अपने पिता की स्नेहिल छत्र–छाया से सदा के लिए वंचित हो गए। उन्हें इतना अवसर न मिल सका कि वे अपनी पुत्री का विवाह संस्कार अपने कर कमलों से सम्पन्न कर इस उत्तरदायित्व को निभा पाते। सरोज आर्या बड़ी विदुषी, पति परायणसाधी, साहसी एवं वीरांगना है जो बड़े, धैर्य और हिम्मत के साथ असह्य दुख को सहन कर सन्तति के प्रति माता–पिता के कर्त्तव्य को निभा रही हैं।

मानव मन स्वभाव से दुःख की निवृत्ति तथा सुख प्राप्ति की प्रवृत्ति वाला होता है। परन्तु आप एक ऐसे मन–मानस के हंस थे जो दुःख व सुख से परे ईश्वर–भक्ति के आनन्द की सम–अवस्था में विचरण करते थे।

उनका जन्म विशुद्ध आर्यपरिवार में हुआ था। आर्य समाज के प्रति उनका प्रेम वंश परम्परागत था। सौभाग्य से आर्य परिवार में जन्मी और आर्य संस्कारों से संस्कारित सुपुत्री

सरोज आर्या उन्हें सहधर्मिणी के रूप में प्राप्त हुई। इनका दाम्पत्य जीवन बड़ा आदर्शपूर्ण, सुन्दर एवं सुखद रहा। वैदिक धर्म के प्रति प्रचार–प्रसार एवं समर्पण जैसा इस दम्पत्ति का देखा गया, वैसा अन्यत्र मिलना असम्भव नहीं तो दुर्लभ अवश्य है। इन दोनों के शरीर पृथक–पृथक थे किन्तु **"संगच्छध्वम् संवद्ध्वम् सं वो मनांसि जानतम्"** इस वेदाज्ञा के अनुसार मन, वचन और कर्म में सर्वदा एकरूपता थी।

आपका व्यक्तित्व एवं कृतित्व "गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय", हरिद्वार के गौरवमय इतिहास को देदीप्यमान कर रहा है। आपने कई वर्षों तक इस संस्था में आचार्य एवं उपकुलपति के गौरवमय पद को सुशोभित किया। शैक्षणिक काल में अपने स्नेह की छत्र–छाया में आपने न जाने कितने युवकों का मार्ग–दर्शन कर उन्हें सच्चा सुयोग्य नागरिक, देशभक्त एवं समाजसेवी बनाकर जीवन जीने का मंत्र सिखाया। आपने छात्रों को उत्तम विद्या दान देकर महान उपकार किया है जो अपने आप में अनुपम है।

वे आर्य समाज के प्रकाश पुंज थे। आर्य–साहित्य के क्षेत्र में विशिष्ट सेवाओं के उपलक्ष्य में आपको समय–समय पर अनेक पुरस्कारों से सम्मानित एवं पुरस्कृत किया गया। वेदों के प्रकांड विद्वान एवं ज्ञाता होने के कारण आपको 'वेदरत्न' की मानद उपाधि से भी विभूषित किया गया।

उनका जीवन सूर्य के समान देदीप्यमान, चन्द्रमा के तुल्य शीतल, गंगाजल सम निर्मल, गिरि–शिखर सम उच्च एवं अचल तथा सागर सम गंभीर था। आप देवता स्वरूप थे। स्वभाव में कोमलता, मधुरता, उदारता एवं सौम्यता कूट–कूट कर भरी हुई थी। 'सादा जीवन उच्च विचार' की आप साक्षात मूर्ति थे। दया और सहनशीलता आपके जीवन के अंग थे। आपके चेहरे से हर समय प्रसन्नता टपकती थी। आँखों में असीम प्यार झलकता था। हृदय में सहानुभूति एवं मन में शांति विराजती थी। आपने जीवन पर्यन्त मन, वचन, कर्म से स्वप्न में भी कष्ट देना या हानि पहुँचाना नहीं सीखा। आपके सान्निध्य में बैठकर दुःखी नर–नारी शांति की अनुभूति करते थे।

आप महामानव थे। अपने दिव्य गुणों से विभूषित **'परोपकाराय सतां निभूतयः'** की उक्ति को अपने जीवन का आदर्श मान आजीवन वेद–प्रचार प्रसार एवं समाज सेवा के कार्यों में तन–मन–धन से जुटे रहे। उनके जीवन का ध्येय था **'भौतिकवादी दलदल में फँसी मानवता को बाहर निकाल कर ईश्वरीय ज्ञान व भक्ति के प्रकाश से आलौकित करना'**। इस कार्य को वे सतत् बड़ी कर्मठता, आत्मविश्वास, दृढ़ संकल्प एवं पुरुषार्थ के साथ सम्पन्न करते रहे। वे चाहते थे कि सांसारिक लोग प्रभु की शरण में जाकर लौकिक

दुःखों एवं क्लेशों से मुक्त होकर आध्यात्मिक सुख एवं आनन्द का अनुभव करें। इसके लिए वे सतत् प्रयत्नशील रहते थे।

आप गुणों के आगार थे। गीता का कर्मयोग उनके जीवन में अक्षरशः घटित होता था। वे सच्चे कर्मयोगी थे। उनके रोम–रोम से कर्मठता का अजस्त्र प्रवाह अनवरत प्रवाहित रहता था। निष्काम समाज सेवा, तप, त्याग, ईश्वर–भक्ति तथा धर्मपरायणता आदि गुण चिरकाल तक आपका नाम अमर रखेंगे। और आगे आने वाली पीढ़ियां सदा आपसे प्रेरणा लेती रहेगी।

जिसने सदाचार के बल पर
गुण गौरव का दीप जलाया।
दीप्तिमान रहा बुझ कर भी,
इस जग में वह अमर कहाया।।

वे सर्वतोमुखी प्रतिभा के धनी थे। विद्या की देवी सरस्वती के वे उपासक थे। उन्होंने शैक्षिक, धार्मिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्र को आधार बना कर जन–जन का मार्ग दर्शन किया। उनकी रचनाओं में प्रवाहित ज्ञान–कर्म की उपासना की पावन धारा, जन–मानस को वेदसुधा का पान करा कर सच्चे जीवन का मूल मंत्र दर्शाती रहेगी। आपने मानव समाज एवं राष्ट्र को जो अनुपम देन दी है वह इतिहास के स्वर्णाक्षरों में सदा अमिट रहेगी।

वे वेदों के प्रकांड पंडित, मनीषी, तत्व चिन्तक दार्शनिक, सफल वक्ता एवं अध्यात्म साहित्य के रचियता थे। आप वैदिक आदर्शों, वैदिक सिद्धान्तों एवं वैदिक संस्कृति के मर्मज्ञ थे। इस क्षेत्र में आपका ज्ञान अतुलनीय था। आप एक तपस्वी एवं सच्चे साधक थे। अहर्निश साधना में रत रह कर अपने अथक परिश्रम एवं साधना द्वारा वेदों का निरन्तर स्वाध्याय, चिन्तन एवं मनन कर लगभग 100 पुस्तकों का सृजन किया। 'श्रद्धा साहित्य प्रकाशन' द्वारा प्रकाशित अनेक पुण्य रत्नों की भेंट जो आपने मानव समाज को समर्पित की, वह सदा आपका ऋणी रहेगा।

आपके द्वारा रचित साहित्य जीवनोपयोगी, शिक्षा–प्रद, प्रेरणापद, सरस एवं अनुपम है। छोटी–छोटी रचनाओं में गागर में सागर भर दिया है। आपकी भाषा–शैली बड़ी सरस, सरलता, सुबोध, प्रांजल एवं प्रभावशाली है जो पाठक के हृदय पर गहरा प्रभाव डालती है। इसे पढ़ कर पाठक का मन–मानस विभोर हो जाता है। दर्शन के गूढ़ एवं ग्राम्भीर्य विषयों को भी बड़ी सरल, सहज, भाषा में अभिव्यक्त करने में आप सिद्धहस्त थे। आपने यमनियमों को अपने आचरण में उतार कर पाठकों के समक्ष बड़े सहज ढंग से प्रस्तुत किया है। आपके द्वारा

रचित अध्यात्म साहित्य अज्ञान–अंधकार में भूले भटके मानवों का पथ – प्रदर्शन कर उनके जीवन को सफल एवं सार्थक बना रहा है और बनाता रहेगा। आर्य जगत एवं मानव समाज आपकी रचनाओं की भूरि – भूरि प्रशंसा कर रहा है और करता रहेगा।

आपकी वक्तृत कला का कौशल अनुपम एवं प्रभावशाली था। आपकी वाक् पटुता, वाणी की मधुरता एवं सरसता श्रोताओं को भाव – विभोर कर देती थी। आपके प्रवचन इतने ओजस्वी, प्रभावशाली गहन – चिन्तन एवं ज्ञान से ओत – प्रोत होते थे कि श्रोतागण मंत्र – मुग्ध होकर शांत भाव से सुनते हुए अघाते नहीं थे। यज्ञ, प्रवचन आदि कार्यक्रमों में अध्यात्म साहित्य को प्रसाद रूप में जनता में वितरण करना आपकी विलक्षण देन थी।

आप अपने गुणों की गरिमा से आज भी जीवित हैं "कीर्त्तिर्यस्य सः जीवति" जिसकी कीर्त्ति है वह जीवित है। युग युगों तक आपकी यशोगाथा अमर रहेगी। आपका नाम आते ही एक सादगी, सौम्य, सज्जनता, सहनशीलता, त्यागी तथा दानवीरता आदि गुणों की मूर्ति सजीव हो उठती है। आपकी मधुर स्मृतियाँ एवं जीवन के असंख्य प्रेरक प्रसंग मानस – पटल पर सदा अंकित रहेंगे। किसी ने ठीक ही कहा है–

धन्य जीवन हो गया, उपकार में जो रम गया है।
जी उठा बन कर अनेकों, बीज बन जो गल गया है।
वह अमरता पा गया, जो लोकहित में मर गया है।
तार कर भूले जनों को, वह स्वयं भी तर गया है।

आज उनका भौतिक शरीर नहीं है परन्तु उनका यश शरीर सदा अमर रहेगा। मैं प्रभु से प्रार्थना करती हूँ कि ईश्वर उनकी आत्मा को शाश्वत शांति प्रदान करें एवं सुपुत्री सरोज आर्या एवं परिवार को इस असह्य दुःख को सहन करने की क्षमता दे तथा उनके बताए मार्ग पर चलने की शक्ति प्रदान करें। मैं उन्हें श्रद्धा सुमन अर्पित करती हूँ।

दीप जलते हैं, फूल खिलते हैं।
ऐसे महापुरुष बड़ी कठिनाई से मिलते हैं।

– आपकी स्नेहमयी माँ लीलावती गुप्ता
सेविका– आर्य स्त्री समाज, शक्ति नगर,
28/16 दिल्ली –110 007

अतुलनीय व्यक्तित्व के धनी : आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार जी

स्वर्गीय श्री रामप्रसाद वेदालंकार जी का नाम मुँह पर आते ही मानस पटल पर उनका शालीन, सुन्दर मुस्कराता हुआ चेहरा स्वतः ही प्रकट हो जाता है। वैसे तो उनका व्यवहार ऐसा था कि सभी को लगता था मानों वे उसी के निकट सबसे अधिक हैं मगर हमारे साथ उनकी विशेष ही घनिष्ठता थी। मेरी धर्मपत्नी सत्यप्रिया जी को उन्होंने अपनी सगी बहिन से कम नहीं माना है। मिलते ही गिला करते थें कि आप हमारे निवास पर क्यों नहीं आते। पंचकुला के कार्यक्रम पर उनसे पूरी तरह से आने का वायदा किया था मगर उसके कुछ दिनों के बाद ही बहुत ही दुःखद समाचार सुनने को मिला। यूँ तो उनकी विद्वता से प्रभावित होकर निरन्तर उनसे पत्र व्यवहार होता रहता था, मगर उनके दर्शन करने का सौभाग्य तब प्राप्त हुआ जब वे आर्यसमाज मण्डी के कार्यक्रम पर आए। उन्हीं का आकर्षण हमें मण्डी ले गया था। हमारी उनके साथ चित्र खिचवाने की बहुत लालसा थी मगर वे सन्ध्या में बैठ गए। उन दिनों सुन्दरनगर को रात्रिकालीन समय में बहुत ही कम बसें आया करती थीं तथा हम छोटे–छोटे बच्चों को भी घर पर ही अकेला छोड़ गये थे मगर चित्र खिंचवाने की इच्छा भी प्रबल थी। जब वे सन्ध्या से उठे और हमने अपनी इच्छा बताई तो वे एकदम चलने को तैयार हो गए मगर सर्दियों के दिन थे अतः सभी स्टूडियों भी बन्द हो गए थे। अन्ततः एक प्रसिद्ध स्टूड़ियो (पाल) के घर का पता पूछ – पूछ कर उनके निवास पर पहुँच कर चित्र खिंचवाया। आचार्य जी को इस प्रकार भूखा गलियों–गलियों में घुमाना हमें अच्छा नहीं लग रहा था मगर उनसे जब क्षमा मांगी तो मुस्करा कर बोले, कुछ पाने के लिए कुछ खोना भी पड़ता है .... । उसके बाद तो निरन्तर उनसे पत्र व्यवहार होता रहा और स्नेह के सूत्र भी प्रगाढ़ होते चले गए। आज भी उनके साथ लिया गया वह चित्र हमारी बैठक में शोभायमान है।

फिर निरन्तर हमारी कार्यक्रमों पर मुलाकातें होती रहीं। उनसे उनके लेखन पर अधिक चर्चा होती थी मगर घरेलू समस्याओं पर विचार करने पर भी वे बहुत अच्छी तरह से मार्ग दर्शन करते थे। मैंने उनसे कहा कि कार्यक्रमों की बहुत अधिकता रहती है अतः नौकरी

छोड़ देने का मन करता है। उन्होंने कहा कि जितनी सर्विस से पेन्शन पूरी मिलती हो तब तक तो ऐसा विचार भी मन में मत लाना और परिवार के सभी दायित्वों को भी सर्विस में रहते- रहते ही पूरा कर लो। हमारी अन्तिम भेंट उनके स्वर्गवास से कुछ महीने पूर्व ही पंचकुला आर्य समाज के कार्यक्रम पर हुई थी। वे रात को बहुत देर से आए थे। प्रातःकाल अपनी कठिनाईयां बिना किसी आक्रोश या परेशानी के सुनाते रहे तो सत्यप्रिया ने कहा कि इतनी पुस्तकों का बोझा साथ मत रखा करें। प्रातःकाल के समय भी वे उन वस्तुओं को भी चुपचाप खा लेते थे जो उनके लिए अनुकूल नहीं थी। सत्यप्रिया के टोकने पर उत्तर दिया, "आयोजकों को अलग व्यवस्था कराकर परेशान नहीं करना चाहता हूँ.... सब कुछ ठीक ही तो चल रहा है ...." । समय का सदुपयोग करने के लिए वे रेल में तथा मंच पर भी निरन्तर अपनी कलम चलाते ही रहते थे तभी वे इतना अधिक साहित्य दे पाए हैं। एक दिन रात को चर्चा होने लगी कि प्रचार कार्य में कितनी कठिनाईयां होती हैं। आचार्य विश्व देव जी भी थे। सब अपनी-अपनी हास्यात्मक यात्राओं की चर्चा करते रहे। आचार्य रामप्रसाद जी ने चूहों वाली रजाई में सोने की घटना इतना हँस हँस कर सुनाई कि सभी लोट पोट हो गए ...., उनकी अपनी आँखों से तो हँस हँस कर आँसू टपक रहे थे। फिर कष्ट दायक घटनाओं की चर्चाऐं हुई। उन्होंने बताया कि किस प्रकार वे एकदम घुप्प अन्धेरे में सफर करते रहे और फिर एक निर्जन स्थान पर टूटी फूटी स्कूल बिल्डिंग में रात काटी थी ...... ।आचार्य विश्व देव जी ने भी अपनी दुःखद घटनाऐं सुनाई मगर जब मैंने अपनी दो दुःखद घटनाओं को सुनाया तो दोनों आचार्य कह उठे कि भई इस प्रतियोगिता में तो आप ही प्रथम रहे हैं ....। स्वयं असुरक्षा में भी प्रचार करने वाले आचार्य जी ने हमें परामर्श दिया कि अपनी सुरक्षा का सदा ध्यान रखा करो तभी आप अधिक कार्य कर पाओगे। वहीं पंचकुला में एक दिन भोजन आदि करने के बाद हमारे कमरे में आचार्य जी आकर बैठ गए और बातें करते करते कब रात के दो बज गए पता ही नहीं चला। उस दिन योग ध्यान पर हमारी अधिक चर्चा हुई। अपने व्यक्तित्व के समान वे कठिन मार्ग का नहीं बल्कि सहज और सरल मार्ग से योग ध्यान करने की प्रेरणा देते थे। उन्होंने बताया कि वे किस प्रकार ध्यान करते हैं। मैंने वह विधि अपनी डायरी में नोट कर ली है तथा उससे लाभ भी हुआ है। उनके बारे में लिखते – लिखते इतनी घटनाऐं और स्मृतियाँ कागज पर उतरने के लिए उतावली हो रही हैं कि बहुत अधिक लम्बा लेख हो जायेगा। पंचकुला में मेरे प्रवचन के बाद जब प्रधान ने मेरी प्रशंसा में कुछ शब्द कहे तो उसके बाद अपने प्रवचन में आचार्य जी ने ऐसे शब्द कह दिए जो मेरे लिए प्रेरणास्त्रोत बन गए हैं।

दूसरे को प्रेरित करने का उनका अपना ही ढंग था। उन्होंने सभी विद्वानों और अधिकारियों की प्रशंसा करने के बाद कहा कि चैतन्य जी जिस ढंग से चले हुए हैं, एक दिन आयेगा कि ये हमसे भी बहुत आगे निकल जायेंगे .... । फिर मेरी ओर देखकर बोले, मैंने घोषणा कर दी है अब मैं जल्दी वह दिन देखना चाहता हूँ। यह सब उनका बड़प्पन था। वे वास्तव में ही महान थे। इतने महान कि उनके जाने के बाद उन जैसा आर्यजगत में मुझे तो दिखाई नहीं देता है। उनका चले जाना उनके परिवार के लिए नहीं बल्कि समूचे आर्यजगत और राष्ट्र के लिए एक अपूर्णनीय क्षति है। वे तहरीर और तकरीर के धनी तो थे ही मगर उनकी तहरीर और तकरीर का ढंग निराला ही था। मैंने उन्हें एक विवाह संस्कार में देखा है कि एक पौराणिक पण्डित जो पहले तो बहुत अहंकार में रहा मगर उनके शालीन व्यवहार, मृदुता और पाण्डित्य को देखकर बाद में चरणों में ही गिर पड़ा। **"ऐसे जादू जो सिर चढ़कर बोले"**, ऐसे कितने विद्वान आज हमारे पास रह गए हैं, यह चिन्तनीय विषय है। उन्हें हार्दिक श्रद्धांजलि भेंट करते हुए परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि आर्य जगत में उन जैसे त्यागी, तपस्वी तथा मृदुभाषी और निःस्वार्थी उपदेशक वर्ग पैदा हो ताकि महर्षि दयानन्द जी द्वारा पुनः प्रशस्त वैदिक विचारधारा को सारे संसार में फैलाने में हम सभी समर्थ हो सकें।

– आचार्य भगवान देव "चैतन्य"
81/एस–4 सुन्दरनगर,
जिला मण्डी (हि0प्र0) 174402

चल दिए.....

धर्म–वैदिक को निभाकर, तुम यहाँ से चल दिए।
'राम' तुम तो राम ही थे, जीवन सज़ाकर चल दिए।
आँसुओं के बीच जब, अर्थी तुम्हारी उठ चली।
शोक से व्याकुल जनों को, तुम रुलाकर चल दिए....
अनवरत लिखते रहे, नहीं लेखनी को चैन था।
वेद का प्रसाद सबको दे, विदा हो चल दिए....
बोलने में क्या मधुरता थी, तुम्हारी जीभ में।
दिल में सबके याद अपनी, छोड़कर तुम चल दिए....
सत्य पर चलते रहे, अभिमान से तुम दूर थे।
'आचार्य पद' को कर सुशोभित, अमर पद पर चल दिए....
क्या कहें, किससे कहें, तुम राम थे या श्याम थे।
'कांगड़ी' के बन स्नातक, नाम करके चल दिए....
सब ऋणों से हो उऋण, जीवन बनाया था सखे!
उपकार ओरों का किया, सत्कार पाकर चल दिए....
सरल जीवन, मधुर वाणी, कर्म ही बस योग था।
'वेद–सिंधु' से अनेकों, निर्झर बहाकर चल दिए....
वन्दन तुम्हे सब कर रहे, निष्पाप होकर तुम जिए।
करुणानिधि की हो दया, स्वर्ग–धाम में तुम चल दिए....

प्रस्तुत भावाञ्जलि भाई रामप्रसाद जी की स्मृति को समर्पित है। वे हमारे एक प्रकार से सहपाठी ही थे। वे वेदालंकार के छात्र थे और हम विद्यालंकार के। वे आयु में बड़े थे। इसलिए हम उन्हें सदा आदर की दृष्टि से देखते थे। उनमें गुण भी ऐसे ही थे। मुझे याद है जब एक बार 'वार्षिक उत्सव' पर संस्कृत–सम्मेलन में मैंने संस्कृत में भाषण दिया था तो उन्होंने मुझे कितना प्रोत्साहित किया था; यह बात मुझे आज भी भूलती नहीं है। कारण 'मैं हमेशा सभाओं में बोलने से कतराया करता था। उनके आचार्य व उपकुलपति पद को प्राप्त करने पर भी मुझे कभी ऐसा महसूस नहीं हुआ कि यें वें ही वेदालंकार में पढ़ने वाले रामप्रसाद जी नहीं है। मुझसे तो सदा मेरा नाम लेकर ही बात किया करते थे। अच्छे लोगों का अभाव तो सदा खलता ही है। धन्य थे वें।

— महावीर 'नीर' विद्यालंकार
विद्यालय–विभाग
गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार

अनुकरणीय व्यक्तित्व : पं० रामप्रसाद वेदालंकार

पंडित राम प्रसाद वेदालंकार का नाम लेते ही एक व्यक्तित्व सामने उपस्थित होता है जो निश्चय ही दूसरे व्यक्तियों की अपेक्षा कुछ विशेषताओं को लिए हुए है। पंडित जी के साथ मेरा सम्पर्क छात्रावस्था से 1964 से ही रहा तथा मैंने दूसरों की भाँति मैंने भी पंडित जी को निकट से देखा, जाना पहचाना तथा उनके व्यक्तित्व की अमिट छाप मन में समाहित की। रामप्रसाद जी एक आदर्श व्यक्ति थे। विद्वान तो अनेक हो जाते हैं किन्तु विद्या को प्राप्त करके अंहभाव भी प्रायः विद्या के साथ–साथ ही मनुष्य में प्रवेश कर जाता है। पंडित राम प्रसाद जी इससे सर्वथा अछूते थे। "विद्या ददाति विनयम्" की उक्ति को सुना, पढ़ा तो बहुत है किन्तु इसे चरितार्थ होते पंडित राम प्रसाद जी जैसे कुछ ही व्यक्तियों में देखा जाता है। पंडित जी का नाम लेते ही बीते दिनों की स्मृति अभी भी सजीव हो उठती है। कई वर्ष उनके सम्पर्क में रहने का अवसर मिला। वे वेदालंकार कक्षा में अध्ययन कर रहे थे तथा मैं उनसे दो श्रेणी नीचे विद्या विनोद कक्षा में। निरन्तर कई वर्ष निरन्तर साथ रहने पर भी कभी पंडित जी के मुख पर क्रोध की रेखा मैंने नहीं देखी। स्वभाव के चिड़चिड़ेपन को तो पंडित जी ने पता नहीं कब से तिलांजलि दी हुयी थी। पंडित राम प्रसाद जी का उनके व्यवहार का स्मरण करके एक श्लोकांश बरबस स्मृति पटल पर उतर आता है–

वदनं प्रसाद सदनं सदयं हृदयं सुधा मुचो वाचः यह पंक्ति पंडित राम प्रसाद जी पर सर्वांश में चरितार्थ होती थी। सदा प्रसन्नता पूर्वक बात करना मन में दूसरों के हित की कामना, बात करें तो इस प्रकार कि मानो मुख से पुष्पवृष्टि हो रही हो। ये समग्र गुण एक ही व्यक्ति में नहीं मिलते।

पंडित राम प्रसाद जी वेद के विद्वान तो थे ही इसके साथ ही यह विशेषता है कि वेद उनके जीवन में, उनके कर्म में, उनके आचरण में अवतरित था। उनके जीवन से वेद स्वयं बोलता था। पंडित जी ने अपनी विद्वत्ता, सुमधुर वाणी तथा निश्छल व्यवहार के लिये सर्वत्र ख्याति प्राप्त की। लोगों ने उनको पर्याप्त सम्मान दिया जो उन्हें मिलना ही चाहिए था। एक विशेष बात जिसका उल्लेख यहाँ करना अनिवार्य है। वह यह कि वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर

का गुरुकुल कांगड़ी के संस्कृत छात्रों को निवास देने में प्रशंसनीय योगदान है। इस कार्य को यह आश्रम अभी भी कर रहा है जिससे परोक्ष रूप में संस्कृत एवं वेद के प्रचार–प्रसार में ही यह आश्रम योगदान दे रहा है। इस कार्य को प्रारम्भ करने का श्रेय पंडित रामप्रसाद जी को ही है। सर्वप्रथम यहाँ डॉ0 जयदेव जी जो वर्तमान में गुरुकुल विश्वविद्यालय में "डीन" हैं, तथा पंडित राम प्रसाद जी, ये दोनों हीं वानप्रस्थाश्रम में रहते थे। इसके बाद पंड्ति राम प्रसाद जी के सत्प्रयत्नों का हीं यह परिणाम था कि आश्रम में प्रतिवर्ष इस प्रकार के छात्रों को निवास दिया जाता रहा है। यह सब पंडित जी के सत्प्रयास का ही परिणाम है।

पंडित राम प्रसाद जी प्रखर वक्ता थे, लेखक थे, चित्रक थे। आर्यसमाज में उन्हें प्रायः सर्वत्र वेदोपदेशार्थ बुलाया जाता था। इन सबसे बढ़कर वे सहृदय मनुष्य थे, वेदानुरागी थे, ईश्वर भक्त थे। इसीलिए उनके जीवन में शान्ति थी, सन्तोष था। उनका जीवन एवं कार्य दोनों अनुकरणीय हैं। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय को उनका लम्बे समय तक निर्देशन एवं योगदान प्राप्त हुआ। उनकी स्मृति में यह अंक निकाल कर विश्वविद्यालय का अनुसंधान विभाग अच्छा ही कार्य कर रहा है। गुरुकुल विश्वविद्यालय को ऐसे सुयोग्य स्नातकों पर गर्व है। यदि ऐसे सुयोग्य तपस्वी स्नातक गुरुकुल से निकलें तो इस गुरुकुलोद्यान की सुगन्धि सर्वत्र प्रसृत होगी इसमें कोई सन्देह नहीं। पंडित राम प्रसादजी असमय में चले गये। यह विधाता का विधान ही है जिसमें हम सभी बंधे हैं इसका उल्लंघन कोई भी नहीं कर सकता। अभी उनकी आवश्यकता थी। उनके आदर्श अनुकरणीय थे। पंडित जी के प्रति यही सच्ची श्रद्धांजलि होगी कि हम उनके आदर्शों का अनुकरण करें। गुरुकुल से पंडित राम प्रसाद जी जैसे सत्चरित्र, विद्वान निकलें तभी उनके साथ हम अपना सामंजस्य स्थापित कर सकते हैं। पंडित जी की पुण्य तिथि पर उनको सादर नमन्।

– रघुवीर वेदालंकार
वी–266, सरस्वती विहार,
दिल्ली–110034

"विद्वान और सन्त"

कालवा गुरुकुल की तपस्थली। व्याकरण की कठोर शिक्षा। पवित्र ब्रह्मचारियों का साथ । तेजस्वी आचार्यवर की तीक्ष्ण निगरानी। वहीं पर एक वार्षिक उत्सव का समारोह था। एक ब्रह्मचारी ने एक वेद मन्त्र की व्याख्या की। मैं उसे जानता था। इतना सुन्दर व्याख्यान उसके वश की सोच नहीं थी। कहीं से रटा था उसने। बाद में उसने जहां से व्याख्यान रटा था वह किताब मिल गई मुझे। हु ब हु सबकुछ किताब में लिखा था। वह पुस्तक थी **वेद रश्मि**। यही था पहला परोक्ष परिचय आचार्य जी से मेरा।

पूज्यवर आचार्य रामप्रसाद जी बाद में जाकर मेरे लिए इतने सहयोगी बनेंगे, मैं कैसे जान पाता उस समय। जब मैं प्रचार क्षेत्र में उतरा मेरी उम्र कम थी। कार्य गम्भीर था। उस समय मेरे पास साधन के रूप में वंशपरम्परा से आई हुई श्रद्धा भक्ति तथा वैदिक गुरुकुल से पाई हुई शिक्षा के अलावा कुछ भी नहीं था। भक्तवत्सल भगवान ने चमत्कार किया। थोड़े ही दिनों में देश के कोने–कोने से निमन्त्रण आने लगे। परिचय क्षेत्र बढ़ता गया। आर्य समाज के सभी विद्वानों, साधु महात्माओं तथा भजनोंपदेशकों के दर्शन करने का सौभाग्य मिला। सबका व्यवहार, शास्त्र ज्ञान, आचरण एवं प्रचार का तरीका देखा। आज भी यह यात्रा जारी है। सब के पास कोई न कोई प्रतिभा होती है। तभी उनकी समाज में आवश्यकता होती है। तभी वे प्रचार क्षेत्र में बने रहते हैं।

परन्तु पूज्य आचार्य जी की मुझ पर सबसे ज्यादा गहरी छाप पड़ी। क्या था ऐसा उनमें? क्यों मैं उनको अपना सबसे अच्छा हितैषी मानने लगा? अनेको बार पूज्य आचार्य जी के साथ एक मन्च में प्रवचन करने का मौका मिला। उनके अमृत वचन सुनने को मिले। ऐसे सिर्फ एक ही विद्वान आर्य जगत में मिले जिन्होंने मुझे दिल से अपनाया। मेरे ऊपर आशीर्वाद का वरद हस्त रखा। ऐसा क्यों? मैंने कभी उनकी कोई सेवा नही की। क्योंकि वे भी रात दिन अत्यन्त व्यस्त रहते थे। इधर मैं भी व्यस्त था। फिर भी वे मेरे सबसे करीब थे तपोवन आश्रम देहरादून में साधनारत माता नरेन्द्रा बब्बर जी हैं। वे आचार्यश्री की धर्म बहन हैं। माता जी का मेरे ऊपर उपकार है। मुझे आचार्य जी के करीब ले जाने में माता जी का बहुत बडा हाथ रहा है। माता जी तो आचार्यश्री की महिमा गाथा सुनाती ही थीं। सचमुच जब मैं पूज्य आचार्य जी के निकट आया तो समझ गया कि माता जी ने उनके लिए जो कुछ भी बोला था वह अक्षरशः

सत्य था। बल्कि एक गुरुकुल स्नातक होने के कारण मैं और भी ज्यादा पूज्य आचार्य जी को समझ सका।

मैंने प्रत्येक मिलन पर आचार्यश्री को केवल सुना ही नहीं, उनको करीब से देखा भी। उनकी स्मृति वेद की पावन ऋचाओं से ओत–प्रोत थी। उनकी प्रज्ञा मन्त्र के गूढ़ रहस्य को विस्तार से खोलने में निपुण थी। उनकी जिह्वा पर सरस्वती का वास था। उनकी आखों से करुणा और प्रेम के अश्रु झरते थे। वेद माता के सच्चे भक्त। ऋषि परम्परा के प्रबल समर्थक। आर्य विद्वानों के मुकुटमणि थे आचार्यवर। प्राणी मात्र के हितैषी। मधुरभाषी। उदार हृदय तथा सरलता की साक्षात् प्रतिमूर्ति थे आप। अजातशत्रु नाम जिस तरह पाण्ड़वों में केवल युधिष्ठिर को प्राप्त था। ठीक इसी तरह आर्यजगत् के सभी उपदेशको, विद्वानों, वक्ताओं में सिर्फ पूज्य आचार्य जी को ही यह नाम शोभा देता है।

आचार्यवर ने इस घृणा द्वेष से आकीर्ण संसार में वैदिक प्रेम–अमृत का संचार किया। आपने सदा सबको जोड़ने का काम किया। आपको प्रशंसा करने की ऐसी सुन्दर आदत थी कि निन्दा बेचारी आपको छू भी नहीं पाई। मेरे पास ऐसे अनेक उदाहरण हैं जो आचार्यश्री की महानता और पवित्रता को उजागर करते हैं। परन्तु यहाँ वे प्रसंग उतर नहीं सकते।

वे असमय में हमारी आँखों से ओझल हो गये। मैं विश्वास न कर सका कि उन्होंने नश्वर काया छोड़ दी है। बहुत दिनों तक मन अशान्त रहा। उनके प्रयाण पर हर दिल रो उठा हैं। लेकिन उनके दिवंगत होने से जो मेरा नुकसान हुआ वह बिल्कुल अलग तरह का नुकसान है। मेरे सिर पर जो एक विद्वान् सन्त पुरुष की छत्र छाया थी वह सदा–सदा के लिए उठ गई।

पूज्य आचार्य जी, संस्कृत वाङ्मय के प्रकाण्ड विद्वान् तो थे ही, एक उच्च कोटि के सन्त पुरुष भी थे। प्रायः ये दोनों बातें विपरीत होती हैं। जो सन्त होता है वह विद्वान् नहीं होता। जो विद्वान् होता है वह सन्त नहीं होता। कबीर सन्त थे विद्वान् नहीं थे। बहुत से शास्त्रार्थ महारथी विद्वान् थे, सन्त नहीं थे। **"विद्या ददाति विनयम्"** ये बात अब नहीं रही। अब विद्या से अभिमान तो मिल जाता है। विनय मुश्किल है। पूज्य आचार्य जी विद्वान् और सन्त दोनों रूप से थे।

परन्तु आचार्यश्री में वही प्राचीन सूक्ति चरितार्थ थी। विनम्रता उनके रग रग में समाई हुई थी। मैं चाहता था कि उनके जीवित रहते उनका यह दिव्य गुण धारण करूँ, परन्तु वे जल्दी चले गये। मैं अपने जीवन पथ में एक बार जब संकटों से घिर गया तो उनके द्वारे

पहुँचा। मेरे अन्दर आवाज आई कि वे ही ऐसी विकट घड़ी में मुझे उचित सलाह दे सकते हैं। उनका घर परिवार कितना मनोहर। बिल्कुल उनके वेद प्रवचन की तरह। सुना तो था लोगों से पर अपनी आँखों से देखकर बहुत अच्छा लगा। उन्होंने मुझे अपने घर में बहुत ही स्नेह के साथ ठहराया। पूज्या माता सरोज जी ने अपने प्रति की सचमुच देवता के रूप में आराधना की है। चाँद और चकोर की उपमा आप दोनों पर सार्थक है।

उपदेश में आदर्श प्रस्तुत करना बहुत आसान है उसे जीकर, अपने परिवार में चरितार्थ कर पाना किसी भाग्यशाली विद्वान के लिए ही सम्भव है। यह सौभाग्य आचार्यश्री को मिला। आपके घर में जो भी आया उसे आपके प्रति और भी श्रद्धा हुई। इसका सम्पूर्ण श्रेय पूज्य माता सरोज जी को जाता है। उन्होंने अपने पति की कीर्ति में चार चाँद लगाये। अब हम पूज्य आचार्य जी को वेदों की मनोहर व्याख्या करते हुए और तो नहीं देख पायेंगे साथ ही उनकी तरफ एक टक लगाए देखने वाली उनकी श्रीमती जी को एक साथ कभी नहीं देख पायेंगे। यह हमारा दुर्भाग्य है। हम सभी प्राणी उस अदृश्य भगवान् से अपने कर्मानुसार जो आयुष्य लेकर आते हैं वह अनजाना ही रहता है। जब कोई अचानक विदा लेता है तभी हम जान पाते हैं कि कितना समय था। पूज्य आचार्य जी के पास समय थोड़ा था काम ज्यादा। वे सदा अपने काम में लगे रहे। उनकी लेखनी कभी नहीं रुकी। आज उनके सैकड़ों प्रवचन हमारे पास में हैं। उनकी वेद व्याख्यायें आने वाली पीढ़ियों को भी सन्मार्ग दिखाती रहेंगी।

आर्य समाज के मंचों पर, पारायण यज्ञों में, बड़े–बड़े सम्मेलनों में आचार्यश्री की अनुपस्थिति सदा खलती रहेगी। वेद सदन ज्वालापुर हरिद्वार में उनके परिवार की वाटिका महकती रहेंगी। उनकी यादों के सहारे पूज्या माता सरोज जी अपने पतिदेव के चरण चिन्हों पर चलती हुई सबका मार्ग दर्शन करती रहेगी। उनकी सन्तान–सुपुत्र–अनु और सुपुत्री–श्रद्धा अपने पिताश्री की अतुल कीर्ति एवं विद्वत्ता से रोशन रहेंगे। यही प्रार्थना प्रभु चरणों में करता हूँ कि हे अनन्त प्रभो! ऐसी दिव्यात्मा को पुनः हमारे बीच में जन्म दो ताकि प्रेरणा का पुंज हमारे आगे उपस्थित रहे। और हम उनके सहारे सत्पथ पर अग्रसर रह सकें।

प्रभु का तुच्छ सेवक
– अखिलेश्वर
संचालक – वैदिक वानप्रस्थ आश्रम
आनन्दधाम गढ़ी, उधमपुर
जम्मू–कश्मीर

वे वाक्वीर ही नहीं, कर्मवीर भी थे

एक वर्ष से अधिक का काल व्यतीत हो गया – उस शक्ल को देखे, जिसे देखकर ही हजारों व्यक्ति आनन्दित हो जाते थे जिसे देखकर विश्वास होता था कि कोई है जो किसी मञ्च पर उपदेश देते समय तो अच्छा लगता ही है परन्तु बाद में जब मिलते हैं, व्यवहारिक स्तर पर, तो उपदेशक से भी अधिक अच्छा लगता है। ऐसे कर्मवीर महात्मा का नाम है – स्व० आ० रामप्रसाद जी।

यह अतिशयोक्ति या औपचारिक कथन नहीं है। इस कथन के साक्षी हैं– भारत के विभिन्न नगरों में बसे हज़ारों नर–नारी। आज उपदेशकों की कमी नहीं है, बाढ़–सी आई है पर केवल शब्दों से गर्ज–गर्ज कर ऊँची–ऊँची बातों का उपदेश करने वाले इन उपदेशकों को मञ्च से हट कर घर में या अन्यत्र मिलते हैं तो "बातों के बातूनी" सिद्ध होते हैं।

इस क्लिष्ट कथन के कुछ अपवादों में एक थे– श्री पूज्य आ० रामप्रसाद वेदालङ्कार जी। उनके निधन से मनुष्य जाति की विशेष हानि हुई है परन्तु मेरे जैसे अकिञ्चनों की व्यक्तिगत हानि भी हुई है।

कितनी घटनाएं, कितने अवसर और मौके आए, जब मैंने उनसे शैक्षणिक, भावनात्मक, सामाजिक व व्यक्तिगत लाभ प्राप्त किए, इनकी संख्या भी स्मरण नहीं है। जब भी मैं उनसे मिला, तब–तब यही प्रतीति हुई थी कि वे मुझसे सर्वाधिक स्नेह करते हैं, मुझ पर ही सर्वाधिक दयालु हैं, मेरे ही सर्वाधिक आत्मीय हैं। मैं जानता हूँ कि मेरे जैसे अन्य अनेक लोग भी विद्यमान हैं जिनसे वे स्नेह करते थे, जिन पर वे दयालु थे व जिनके वे आत्मीय थे परन्तु मन है कि इस सत्य पर विश्वास नहीं करना चाहता।

एक बार यमुनानगर के एक ऐसे कार्यक्रम में आचार्य जी पधारे थे, जिसके अन्त में बस अड्डे पर उन्हें विदा करने मैं गया था। सहारनपुर तक के लिए बस चलने के लिए तैयार खड़ी थी। मैं चाहता था कि आचार्यवर हरिद्वार जाने वाली बस में बैठकर जाएं। अतः मैंने कहा– "आप अगली बस में जाइए। वह बस सीधी हरिद्वार तक जाएगी।"

"इस बस में जाने में क्या हर्ज है?"

"इस बस में तीन कारणों से आपको नहीं जाना चाहिए। प्रथम, इसमें बैठने की बात तो छोड़िए, खड़े होकर भी जाना कठिन हो गया है क्योंकि इसमें पहले ही खचाखच भीड़ है। द्वितीय, आपके पास सामान काफी है। इससे भी अधिक कठिनाई होगी। तीसरा कारण यह है कि सहारनपुर में बस से उतरकर फिर एक दूसरी बस लेनी पड़ेगी। इससे भी सामान अधिक होने के कारण परेशानी होगी। अगली बस खड़ी होते ही आपको बिठा दिया जाएगा। बैठने के स्थान मिलने की निश्चितता के अतिरिक्त सीधे हरिद्वार तक आप सुविधापूर्वक यात्रा कर सकेंगे।"

पर वे नहीं माने और देखते ही देखते स्वयं उसी बस में सवार हो गए। बस चलने लगी थी। चलती बस में जैसे–तैसे शीघ्रता में मैंने उनका सामान उन्हें पकड़ाया और बस चली गई, उन्हें लेकर। मैं सोचता रहा कितनी कठिनाई में आचार्य जी जाएंगे, खड़े–खड़े। अपने उपदेशों में वे त्याग, तपस्या, प्रेम, सहयोग व सन्तोष आदि सद्गुणों की कितनी कहानियां सुनाते हैं– उनका सम्मिश्रण यदि देखना हो तो आचार्य जी को देखा जाए। पद, प्रतिष्ठा, विद्या, ज्ञान, उपदेश कला व शिक्षण कला – इन में से किसी में भी वे कम नहीं हैं परन्तु अभिमान उनको छू भी नहीं गया। सुविधाएं इन्हें आकर्षित नहीं कर पातीं। कष्ट व असुविधाएं इन्हें अवरुद्ध नहीं कर पातीं। 'कथनी' किस प्रकार 'करनी' से और 'करनी' किस प्रकार 'कथनी' से प्रतिस्पर्धा कर सकती है, यह देखना हो तो आचार्य जी के जीवन को देखा जाए।

* * *

मई माह सन् 94 में अल्मोड़ा में मेरे एक नाती का वेदारम्भ संस्कार व एक नाती का मुण्डन संस्कार आयोजित किए गए। यह कार्य श्री आचार्य रामप्रसाद वेदालङ्कार जी के सार्थक व कुशल पौरोहित्य में कराने का निर्णय किया गया था व तद्नुसार श्री आचार्य जी ने परिवार सहित हरिद्वार से एक बस में बैठकर प्रस्थान भी किया। जब हल्द्वानी में श्री आचार्य जी, आदरणीया बहन सरोज जी व प्रिय पुत्री श्रद्धा पहुँचे तो रात के दस बज गए थे व तब आगे अल्मोड़ा जाने के लिए कोई बस उपलब्ध नहीं थी। रात भर ये तीनों जने बस – स्थान पर ही रहे। पर्वतीय क्षेत्रों की जिन लोगों ने यात्राएं की हैं, उन्हें ज्ञात है कि पर्वतीय बस –अड्डों पर यात्रियों के लिए कितनी व कैसी असुविधाएं हैं। इस स्थिति में पूज्य आचार्य प्रवर व

परिवार ने कितना व कैसा कष्ट झेला होगा— यह कोई भुक्त भोगी ही जानता है। हम तो केवल अनुमान ही लगा सकते हैं।

आगामी दिवस जब आचार्यवर सपरिवार अल्मोड़ा में पधारे व हमें उपरोक्त घटना का ज्ञान हुआ तो हमें पीड़ा, लज्जा व श्रद्धा का मिलाजुला अनुभव हुआ। पीड़ा उनके कष्टों का अनुमान लगाकर हुई, लज्जा इसलिए हुई कि हमारे कारण उन्हें कष्ट उठाना पड़ा व श्रद्धा, उनके तप, आचरण व निस्पृहता के कारण हुई।

* * *

जिन्होंने पद, प्रतिष्ठा, धन, यश व लोकप्रियता को प्राप्त करके भी कभी इनके कारण सादगी, उच्चता, सहायता, सहृदयता, त्यागशीलता व परोकारिता के अपने सहज सुलभ गुणों का परित्याग नहीं किया – ऐसे महामानव को शत् शत् स्मरण! शत् शत् श्रद्धांजलि !! शत् शत् नमन् !!!

तू नहीं पर याद तेरी दिल में है।
बुझ गया दीप पर रोशनी महफ़िल में है।।

—इन्द्रजीत
1058, पुरानी सब्ज़ी मण्डी मार्ग,
यमुनानगर—135 001

मेरे बालसखा - आचार्य रामप्रसाद जी वेदालंकार

श्री रामप्रसाद जी आर्य गुरुकुल काँगड़ी के उपाचार्य अथवा कुलपति थे। हमारे साथ गुरुकुल यमुनानगर में स्वामी आत्मानंद के विद्यालय में 4 साल पढ़े। उस समय हमारे शिक्षक श्री आचार्य सुदर्शन देव जी थे इनसे हमने व्याकरण पढ़ा।

रामप्रसाद जी बनिया बिरादरी से थे। ये दसवी पास करके शादीपुर आश्रम में वेद शास्त्री का विद्याध्यन करने हेतु आए। इनके व्यवहार से सभी प्रसन्न रहते थे सबके प्रति इनका बड़ा नम्र व मृदु व्यवहार था। जब ये किसी से भी बात करते थे तो हंस कर बात करते थे, स्नेहपूर्वक बात करते थे, और आदरपूर्वक बात करते थे।

विद्यालय में हम 25 विद्यार्थी (ब्रह्मचारी) थे। आश्रम में व्यायाम, आसन, प्राणायाम, हवन आदि की व्यवस्था थी और सब रामप्रसाद जी को ही करना पड़ता था। सभी विद्यार्थियों को प्रातःकाल 4 बजे उठना पड़ता था और रात्रि 10 बजे सोना पड़ता था। वहाँ ब्रह्मचारियों के कार्य करने के दिन निश्चित किए हुए थे। दो – दो व्यक्तियों को हवन का सामान इकट्ठा करना, गऊशाला की साफ – सफाई करना और अन्य कार्यों के लिए जिम्मेदारी सौंपी जाती थी। आठ दिन तक हवन का सामान इकट्ठा करने, तैयारी करने की व साफ सफाई रखने की तथा लड़कों को तीनों समय भोजन कराने सुबह का नाश्ता, दोपहर को रोटी–सब्जी, रात्रि का भोजन सभी कामों की व्यवस्था करनी पड़ती थी। यह 8–8 दिन का नियम होता था। 8 दिन के पश्चात् अन्य दो विद्यार्थियों की बारी आ जाती थी।

रामप्रसाद जी जिसके साथ भी काम करते थे, उनका साथी बड़ा ही खुश हो जाता था। क्योंकि रामप्रसाद जी दूसरे साथी के आने से पहले ही सारा काम स्वयं ही निपटा लेते थे। अतः सभी विद्यार्थी अपनी बारी श्री रामप्रसाद जी के साथ ही लगवाने को उत्सुक रहते थे। रामप्रसाद जी लड़ाई झगड़ों को पसन्द नहीं करते थे और झगड़ा हो जाने पर भी किसी के पक्ष में नहीं बोलते थे। जब कभी विद्यार्थियों में पार्टी–बाजी हो जाती थी तो ये सबसे हाथ जोड़कर कहते थे कि तुम लड़ाई क्यों करते हो?

विद्यालय में सबसे अधिक लड़ाई मैं करता था। 15 दिन में तो मेरे पंद्रह उलाहने आ ही जाते थे। मैं मुसलमानों का विरोधी, संघियों का विरोधी और बाल – विवाह का कड़ा विरोधी था और यथा संभव ये काम मैं गांव में होने ही नहीं देता था। शादीपुर विद्यालय में मैं

ही एक पहलवान था। पहलवान की व फौजी की अक्ल मोटी होती है। ये पहले मारते हैं, और बाद में सोचते हैं। रामप्रसाद जी मेरे हाथ जोड़ते थे और कहते थे कि आपका शरीर सुन्दर है, आप बलवान हैं फिर ये लड़ाई – झगड़ा क्यों करते हो?

एक दिन इनके पास आश्रम का साझी, जिसका नाम था काला चमार, आया। यह आश्रम् में खेती करता था एक बार इसे सत्तर रुपये की बड़ी आवश्यकता हुई और मांगने पर भी इसे कहीं से भी सहायता प्राप्त नहीं हुई। लेकिन पैसे की इसे सख्त जरूरत थी किसी ने इनको बताया कि तुम रामप्रसाद जी के पास जाओ उनके पिता साहूकार है और वे अपने पुत्र के लिये यहाँ पैसा भेजते हैं, वें आपकी सहायता अवश्य ही करेंगे। वह गरीब व्यक्ति इनके पास आया और हाथ जोड़कर कहने लगा कि मेरी लड़की की शादी हुई है और इस समय सत्तर रुपये की मुझे सख्त आवश्यकता है। हम कमरे में तीन विद्यार्थी रहते थे। ये बात मैं भी सुन रहा था, रामप्रसाद जी उठे और अलमारी से नए–नए नोट निकालकर गिनकर 70 रुपये दे दिये, वह धन्यवाद करता हुआ चला गया और उसने अपना काम कर लिया। फिर वही व्यक्ति दो महीने के बाद पैसे लौटाने आया और उसने कहा कि आपने आवश्यकता के समय में मेरी सहायता की है मेरी जरूरत को समझा है, आपका धन्यवाद। अब मैं ये पैसे लौटाने आया हूँ। तब रामप्रसाद जी हंस कर बोले आपकी बेटी, हमारी बेटी है इस पैसे से कोई और काम कर लो और इसे ले जाओ। रामप्रसाद जी ने पैसे वापिस नहीं लियें।

मथुरा में आर्य समाज का एक बड़ा सम्मेलन हो रहा था। उस सम्मेलन में सभी ब्रह्मचारियों को शामिल होना था। अतः हम सब विद्यार्थी मथुरा के इस सम्मेलन में शामिल होने के लिए चल पड़े। इस सम्मेलन में लाखों व्यक्ति वहाँ इकट्ठा हुए थे। रेल में बैठे होने पर किसी अपरिचित लड़के की जेबकतरें ने जेब काट ली उसकी जेब में 30–35 रु0 थे और टिकट थी। तभी वहाँ टिकट चैकर टिकट चैक करता हुआ आ गया और उस लड़के के पास टिकट न होने पर वह उसे धमकाने लगा और कहा कि तुम गाड़ी से नीचे उतर जाओ। रामप्रसाद जी पास ही बैठे थे उन्होंने टी0टी0 से प्रार्थना की व हाथ जोड़कर कहने लगे कि बेचारे की जेब कट गई है इसे माफ कर दो। तब टी0टी0 साहब ने कहा कि आप इतने दयालु हो तो इसके पैसे आप दे दो। रामप्रसाद जी ने कहा, बोलो कितने पैसे हैं और टी.टी. को पैसे दे दिये और उस लड़के का आगे तक का भी खर्चा उठाया। उस लड़के ने रामप्रसाद जी का पता लिखा और एक महीने बाद पैसे शादीपुर आश्रम में पहुँच गए।

इनके अन्दर दानशीलता का गुण, भक्ति का गुण, सहनशीलता का गुण, सद्व्यवहार का गुण था। ये विद्या प्रेमी व ईश्वर भक्ति के प्रेमी थे। इनमें ये सब गुण मैंने अपनी आँखों से देखे। ये शादी नहीं करना चाहते थे लेकिन घर के बड़े लोगों के दबाव में आकर इन्होंने शादी

की। क्योंकि बहुत से स्वार्थी लोग इन्हें शरीफ समझ कर इनके पैसे को बर्बाद कर रहे थे। तब कुछ माताओं ने यह देखा और सोचा कि यदि इनकी पत्नी और बच्चे हो तो इनका धन सुमार्ग पर चलेगा, अतः इनकी शादी करा दी गई।

ये वेद शास्त्रों के विद्वान थे, गुरुकुल के उपाचार्य थे और सेवा निवृत्त होकर घर पर ही प्रचार करने लगे। अभी ये प्रचार करने के लिये चण्डीगढ़ के आर्य समाज सैक्टर–22 में गए थे। वहाँ पर हार्ट अटैक हो जाने से ये परमात्मा को प्यारे हो गए और अपनी लीला समाप्त कर गए।

कहां पैदा हुए, कहाँ लड़ाए लाड़,
और न जाने इस शरीर के,
कहाँ बिखरेंगे हाड़।

मैं मैं, मैं मैं करके मर गए,
अर्जुन योद्धा भीम।
धरी धराई रह गई सज्जनों,
हस्तिनापुर की नींव।।

जीवन ज्योति कैसे जगी, कैसे होगा अंत।
रविदास मनुष्य जाने नहीं, जाने है भगवतंत।।

रामप्रसाद जी को मैं नमस्कार करता हूँ उनके बारे में मैं बहुत कुछ जानता हूँ लेकिन बड़ा लेख न लिखते हुए थोड़े लेख से उन्हें श्रद्धांजलि देता हूँ कि उनकी आत्मा को शांति प्राप्त हो व उनके परिवारजनों को इस दुःख की घड़ी में इस दुःख से उबरने का सामर्थ्य प्रदान करें।

- अग्निदेव जी 'भीष्म'
योग आश्रम, ऋषिनगर
हिसार, हरियाणा

उनका महाप्रयाण स्थानान्तरण मात्र है

शरद्–पूर्णिमा की रात को सोम की चाँदनी में मैं एकान्त सेवन की अभिलाषा से गङ्गा के नीरव तट पर आँखें बन्द कर आसन लगाये बहुत देर से बैठे हुए था। मेरे चारों ओर आनन्द ही आनन्द था, मन उसे पीने की अभिलाषा कर दौड़े चले जा रहा था, वहाँ न कोई शब्द था न स्पर्श, रूप, रस गन्ध ही। स्वयं का भी आभास न था फिर अन्य किसी के होने का तो प्रश्न ही क्या? अचानक किसी ने आकर मेरे कर्ण–कुहर के द्वार पर टक–टक की ध्वनि की। मुझे उस ध्वनि को सुनकर बालात् उस आनन्द–वर्षा से लौटना पड़ा। आँखें खोली तो देखता क्या हूँ कि सोम मुझे चहुँ ओर से घेरे खड़ा है। मैं कुछ स्वागत–वाक्य बोल पाऊँ, इससे पूर्व ही वह बोला सखे सत्य, क्या तुमने एक ऐसे ऋषि को देखा है, जो वेदमन्त्रों के अन्दर प्रविष्ट होकर उसकी गहराईयों का दर्शन स्वयं करता और पृथिवीवासी जनों को कराता रहा?

क्या तुम जानते हो उस लेखक को जो वेदमन्त्र का लेखन अहर्निश सर्वजनहिताय और सर्वजनसुखाय करता रहा, जिसने अपनी लेखनी को यथा–जीवन विश्राम देना उचित न समझा। क्योंकि समय के प्रतिबन्धन को वह जानता था। इसीलिए वह स्वयं नहीं थका, अपितु उसकी लेखनी थक गयी। जिसके मस्तिष्क रूपी कोष में विद्यमान वेद के विविध अर्थ समाप्त नहीं हुए अपितु उसकी लेखनी की मसीकृशता की ओर चल पड़ी।

कोई ऐसा शिक्षक, जो अपने पास से छात्रवृत्ति देकर छात्रों को पढ़ाता रहा। छोटे–बड़े, बूढ़े–बच्चे नवयुवक आदि को पठनार्थ प्रेरणा देता रहा। जो सत्य का पालक रहा, क्रोध जिसे छू न सका, हिंसा जिसको पकड़ न सकी, चौर्य उसे ढूँढ न पाया, अनाचरिता उसे सुन न सकी, और परिग्रह उसे अपनी छत्रच्छाया में लेने में असमर्थ रहा। जो मन, वचन, कर्म से पवित्र, उपलभ्यमान में सन्तोष, वेदप्रचार और प्रसार में तप, निरन्तर स्वात्मचिन्तन्, अद्भुत–ईश्वर प्रणिधान इन गुणों की खान रहा। जिसका आसन लेखकासन रहा, जिसके प्राणायाम में वेद–मन्त्रों की नित्य–नूतन व्याख्या बसी, जिसने परपीडापहरणार्थ प्रत्याहार

अपनाया औचित्य की स्थापना ही जिसकी धारणा रही, व्यावहारिक–दर्शन को जिसने ध्यान फैलाया, और साक्षात् ब्रह्म–निगम में जो समाधिस्थ रहा – क्या सत्य, तुमने उस अष्टाङ्ग, योग–सेवी को देखा?

परोपकार कर भी कृतोपकार को न दर्शाने वाला, गुणवान् होते हुए भी निज गुणों को न बखारने वाला, पर–निन्दा से दूर, स्तुति से भरपूर, वञ्चना का अस्पर्शक, आतिथ्य–परायण, स्वयं–याज्ञिक, मृदुभाषी, नित्य–हासी, विद्वज्जनाभिलाषी, सर्व–जनसेवी और अद्भुत् प्रभु–प्रेमी– क्या तुमने पाया है?

मैं अवाक् बना सोम की बातों को सुनता रहा। कुछ उत्तर दे सकूँ, इससे पूर्व.वह बोला – देख सत्य, जो उपर्युक्त प्रश्नों का उत्तर – मानव है, अब वह तुम्हारी पृथिवी प्रयाण कर चुका है और अन्य एक लोक में जाकर बस गया है। पृथिवी पर वह तुम्हें दिखाई नहीं देगा। किन्तु तुम सोच रहे हो, कि वह मर गया, वस्तुतः वह मरा नहीं है, उसका तो पदोन्नति के साथ स्थानान्तरण किया गया है। भूलोक पर सात जनवरी उन्नीस सौ छत्तीस को पिता गङ्गा बिशन के यहाँ जन्म लेकर अपना नाम रामप्रसाद धरवाकर, स्वामी आत्मानन्द सरस्वती को वक्तृत्व का, आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति को कृतित्व का, आचार्य रामनाथ वेदालङ्कार को चरित्र का गुरु बनाकर, गुरुओं के कुल से कुलपति के हाथो से वेदालङ्कार की उपाधि प्राप्तकर श्रीमती सरौज को जीवन–सङ्गिनी के रूप में ग्रहण कर, स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा स्थापित गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में आचार्य–पदभार संभाकर अनेक मन्चों पर वेद–मन्त्रों का गुणानुवाद कर बहुश ग्रन्थों का प्रणयन कर एक अक्टूबर उन्नीस सौ अट्ठानवें को उनका भूलोक से अन्य लोक में स्थानान्तरण हो गया है। क्या सत्य, तुम्हें स्मरण है? जब तुम हरिद्वार के सिटी–हॉस्पिटल में उनका स्वास्थ्य–लाभ पूछने सपत्नीक गये थे, उन्होंने तुम्हें क्या कहा था? मैं बताता हूँ। वे बड़े रुन्धे हुए कण्ठ से बोले थे– "सत्य, मेरे जाने का समय आ गया है। तुम्हें वेद–विभाग में छोड़कर जा रहा हूँ। यह मुझे प्रसन्नता है। मुझे अब कोई दुःख नहीं है"। इतना कहते ही आचार्य जी के आँखों के आँसू छलक गये। तुमने धैर्य बँधाते हुए कहा कि "आप ऐसे मत कहो, अभी आपके जाने का समय नहीं हुआ है। अभी तो आपको श्रद्धा दीदी की और अनु भईया की शादी करवानी है, तथा समाज का बहुत काम करना है।" वे गम्भीर होकर धीमे स्वर से बोले, "सत्य, मैं अपनी ओर आते हुए स्थानान्तरण के पत्र को देख रहा हूँ। मैं तुमसे असत्य नहीं कर रहा हूँ" उनकी मुखाकृति देख तुम चुप हो गये

थे। किन्तु मन ही मन तुम्हें लगा था कि कहीं आचार्य जी सत्य तो नहीं कह रहे हैं? उन्होंने सचमुच में महाप्रयाण रूपी स्थानान्तरण का पत्र अपनी ओर आते हुए देखा था। और वे उस पत्र को पाकर सदा–सदा के लिए हमसे दूर चले गये। उनके द्वारा दिया हुआ आशीर्वाद, उनके द्वारा प्रशिक्षित व्यवहरित व्यवहार, आचरित कर्म, प्रचारित और प्रसारित धर्म हमारे सामने हैं, वे उन्हीं में हैं। उस मानव–धर्मव्रती को हमारे ये श्रद्धा–सुमन वाक्य समर्पित हैं।

मैं नितान्त अकेला हूँ। अतः मुझे भी तो प्रस्थान करना होगा। क्योंकि यहाँ की यही रीति है, जो आता है, वह जाने के लिए ही आता है। यह यहाँ का नितान्त कटु सत्य है।

– डॉ0 सत्यदेव निगमालङ्कार
वेद–विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार।

आर्य जगत के देदीप्यमान नक्षत्र थे आचार्य रामप्रसाद जी वेदालंकार

आचार्य जी के प्रथम दर्शन मैंने विवाह की वेदी पर पहुंचने पर किये थे। तेजस्वी चेहरा, ओजस्वी वाणी लेकिन मधुरता लिए हुए, हंसते हुए मेरे पतिदेव से बातें कर रहे थे। मैं मन ही मन अपने भाग्य पर इठला रही थी कि इतने बड़े विद्वान के द्वारा हमारा विवाह सम्पन्न हो रहा है।

उसके बाद आचार्य जी के सम्पर्क में जैसे–जैसे आती गई, उतनी ही उनके प्रति मेरी श्रद्धा बढ़ती गई। उनका सरल, सरस व्यवहार, उनके उपदेश सुनने को सदैव मन लालायित रहता था। पीलीभीत से जब हम हरिद्वार आये तो आचार्य जी से संबंध प्रगाढ़ हो गये थे। वे जैसे बाहर थे वैसे ही भीतर भी थे। किसी की भी मदद करते थे तो हृदय से करते थे। हमेशा मुझे बेटी वीना कहकर ही बुलाते थे। उनके बुलाने में इतना आकर्षण था कि मैं उसका वर्णन शब्दों में नहीं कर सकती। जो लोग भी उनके सानिध्य में रहे हैं। वें यह अनुभव कर सकते हैं। एक बार भी ऐसा नहीं होता था कि आचार्य जी अपने घर से फलादि खिलाये बगैर भेज दें। साथ में बच्चों के लिए भी अवश्य देते थे। शायद ही कोई याचक उनके द्वार से खाली जाता होगा। वे अधिक से अधिक लोगों का सम्मान करते थे। मैं जब कभी उनके घर बैठी रहती थी तो उनके व्यक्तित्व को देख कर मन ही मन सोचती थी कि ईश्वर ने इनको कितना सुन्दर मन दिया है। प्रत्येक व्यक्ति स्वयं इनकी ओर खिंचा चला आ रहा है। क्या वानप्रस्थ आश्रम, क्या गुरुकुल, तो क्या आर्य समाज मंदिरों से जुड़े लोग। सभी आचार्य जी से बातें कर के अपने आप को धन्य समझते थे। केवल हरिद्वार, ज्वालापुर ही नहीं पूरे भारत से श्रद्धालु उनके पास आते थे।

आचार्य जी के जीवन की घटनाओं को यदि लिखने बैठा जाये तो शायद कमल कभी रुकेगी नहीं।

आचार्य जी को जब प्रथम हृदयाघात हुआ तो उनको हम अस्पताल में देखने गये, वहाँ भी उनको ऐसा लग रहा था जैसे कि वे खाली लेटे हैं उठ कर कुछ लिख क्यों नहीं लेते।

4–6 दिन अस्पताल में काटने के बाद घर आकर उन्होंने बिल्कुल आराम नहीं किया। जब कभी हम जाते थे तो हमेशा उनको लिखते ही पाते थे। शायद वेदों के दीवाने आचार्य जी को वेद रूपी सागर में से मोती चुनने का बड़ा अभ्यास था इसीलिए वे सदैव उसमें गोते लगाते ही रहते थे। और मोती को ढूंढ कर उसको अनेक प्रकार से तराशते रहते थे। चाहे कितने ही लोग घर में बाहर कहीं भी बातें करें, लेकिन आचार्य जी के कार्य में कभी व्यवधान नहीं पड़ा। वह निरंतर अबाध गति से चलता रहा।

आखिर काल का दिन आ ही गया जिसको याद कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। लेकिन जो सत्य है उसको स्वीकार करना ही पड़ता है।

1 अक्टूबर 98 की प्रातः वेला में मैं स्नानादि से निवृत्त होकर यज्ञ की तैयारी कर रही थी कि अचानक फोन की घंटी घनघना उठी। मैंने उठाया तो आचार्य जी के प्रिय बेटे अनुव्रत का फोन था। पूछा क्या बात है? बड़ी बोझिल आवाज थी, बोला भाभी! पिताजी नहीं रहे। हम लोग चंडीगढ़ से उनको लेकर दोपहर 12 बजे तक पहुँच रहे हैं। आप वहाँ सबको खबर कर दीजिये। ऐसी अविश्वसनीय घटना को सुनकर मेरी अश्रुधारा बह चली, फोन हाथ से छूट गया। बच्चों को बताया हमारे प्यारे आचार्य जी नहीं रहे। ये सब कैसे हो गया। कल तो वे यहीं थे। आज चंडीगढ़ कैसे चले गये? अनेक सवाल मन में उठने लगे। खैर! मेरे बड़े बेटे रजत ने वानप्रस्थ जाकर सूचना दी। आर्यसमाज के मंत्री आदि को सूचना दी, गुरुकुल काँगड़ी के आचार्य श्री वेदप्रकाश जी को सूचना दी। सभी लोग आचार्य जी के घर के सामने एकत्रित होने लगे। यह बात आग की तरह पूरे जनपद में फैल गई। सब ओर से लोग दौड़े चले आ रहे थे। अगर वहाँ नहीं था तो वह एक व्यक्ति जो आचार्य जी का सबसे प्रिय था। वह था उनका दत्तक पुत्र के रूप में प्रिय महावीर। सभी लोग बार–बार पूछते थे कि वह कहाँ हैं। मैं किस–किस को जवाब दूँ कि आचार्य जी ने तो उनको अपने स्थान पर वेद प्रचार के लिए ब्यावर भेज रखा है। जगह भी इतनी दूर थी कि किसी भी कीमत पर वहाँ से नहीं आ सकते थे। मैंने इनको तुरन्त ब्यावर फोन कर दिया था। ये अपना रात्रि का आरक्षण छोड़कर उसी समय वहाँ से चल दिये फिर भी आचार्य जी को कंधा नहीं दे सके। अगले दिन, प्रातः 5 बजे घर पहुँच सके। आकर फूट–फूट कर रोने लगे और कहने लगे जिनकी बदौलत आज मैं इस स्थान पर पहुंचा हूँ आज उनकी अन्तिम यात्रा में भी शामिल नहीं हो सका। 3 अक्टूबर को वानप्रस्थ आश्रम में उनकी श्रद्धांजलि सभा में हजारों लोगों ने अश्रुपूरित नेत्रों से भाग लिया।

शायद ही कोई ऐसी आँख थी जिसमें अश्रु न तैर रहे हों, कुछ लोग तो सिसकियाँ भर–भर कर रो रहे थे। जिसने जैसे–जैसे सुना, अखबार में पढ़ा वैसे ही वह आचार्य जी की श्रद्धांजली सभा में भाग लेने के लिए दौड़ा चला आया। ऐसी विषम परिस्थिति में परिवार के लोगों ने बहुत धैर्य का परिचय दिया। प्यारे बेटे अनु ने रस्म पगड़ी के बाद सभी का धन्यवाद बहुत अच्छे ढंग से किया और अपने पिताजी के मार्ग पर चलने को कहा। प्यारी श्रद्धा ने रोते–रोते भी बहुत सुन्दर प्रभु भक्ति का भजन सुनाया। जिसको सुन–सुन कर लोग रोते भी जा रहे थे। और माँ जी तो मौन की प्रतिमूर्ति बनी निरंतर अश्रुधारा प्रवाहित किये जा रही थीं। जिनको देख कर हाल में बैठे हुए लोग कई बार उनकी याद में बिलख उठते थे। मैंने तो अपने जीवन में इतनी बड़ी श्रद्धांजलि सभा पहली बार देखी। ऐसा लग रहा था कि प्रत्येक व्यक्ति उनका अपना ही रिश्तेदार था। वह अपने परिवार में बहुतों से छोटे थे। इस बात का उनके भाई एवं बहनों को बहुत ही दुःख था कि वह इतनी छोटी आयु में हम सबको बिलखता छोड़ कर चले गये।

अब ईश्वर से यही प्रार्थना है कि वे जहाँ भी हों ईश्वर उनकी आत्मा को शांति दे। वे शीघ्र ही वेद प्रचार करने के लिए हम सबके बीच में फिर अवतरित हों। जन–जन को अपनी वाणी से आहलादित करें। हे प्रभो! हम सबकी इच्छा पूर्ण करो। हम सब मिलकर आचार्य जी के वेद प्रचार–प्रसार के कार्य को आगे बढ़ायें, उनके बताये मार्ग पर चलें। यही उनके प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

– डॉ0 वीना अग्रवाल
5, प्रोफेसर्स कॉलोनी,
गुरुकुल काँगड़ी, हरिद्वार

"चिर - विदाई"

अश्रु – पूरित नेत्रों से देते हैं विदाई,
हम सब मन मलिन किये ।
आप कल तक थे बीच हमारे,
आज अनन्त – सागर में विलीन हुए ।।

इस आँगन में कभी वेदों का नाद गूँजता था,
और लेख लिखे मधुर मुस्कान लिये ।
सूना कर गये यह "वेद – सदन" आप
मुख मोड़, महाप्रयाण की ओर गये ।।

'नाविक' बनकर आये थे, गृहस्थी की
नैय्या पार लगाने को ।
बीच मंझधार में छोड़ गये,
बिना पतवार के डगमगाने को ।।

पत्नी ने ममता लुटाई थी, बहनों ने स्नेह,
और बच्चों ने प्यार दिया ।
न जाने कहाँ चूक हुई इन सबसे,
आपने स्वर्ग में एकान्त – वास किया ।।

ईश्वर की सृष्टि है यह पर मानव
समझ न पाया है।
विज्ञान ने की उन्नति है परन्तु
प्रभु का पार न पाया है ।।

यह शाश्वत सत्य है एक दिन
इस जग से सबको जाना है ।
परन्तु ममता भर देती है आँसू
मर्म न ये किसी ने जाना है ।।

हे देव-दूत! स्वर्ग के वासी आपको
शत-शत मेरा प्रणाम है।
दो फूल श्रद्धा-सुमन के हम
करते आपको अर्पण हैं ।।

आप अमर-पद को प्राप्त करो
नव-पथ के हो राही आप ।
अश्रु-पूरित नेत्रों से हम सब
दे रहे आपको हृदय-विर्दीण विदाई ये ।।

— बहिन अशोका आर्य,
मुजफ्फरनगर।

देवतुल्य आचार्य रामप्रसाद जी वेदालंकार

गृहत्याग से पूर्व मन में अनेक प्रकार के दैवीय विचारों से एक विशेष प्रकार का आनन्द रहता था। उपवन के किसी कोने में, हिमालय की उपत्यकाओं में, ऋषियों के चरणों में, यतीश्वरों की सन्निधि में रहकर ध्यान, भजन, शास्त्रस्वाध्याय एवं भगवच्चर्चा द्वारा दिन व्यतीत किया करेंगें। बाल्यकाल में महर्षि वाल्मिकी विरचित रामायण का हिन्दी अनुवाद (गीता प्रेस गोरखपुर) पढ़कर ऋषियों की मुनियों की जो कल्पना थी – कृश तनु, श्वेत दाढ़ी–श्मश्रु, सिरपर जटा, तापस वेष, गेरु मिट्टी से रंगे हुए वस्त्र, कहीं कोई कोपिन मात्र में, कोई अवधूत अवस्था में, कोई धूना लगाकर तप रहा होगा तो कोई युवा शिष्यों को शास्त्र पढ़ा रहा होगा, कहीं शंका समाधान तो कोई ध्यान मग्न होगा, कोई योग की गुप्त विधियाँ बता रहे होंगे, कहीं शिष्यों का परिसंवाद होगा, कहीं आनन्द से वन में विचरण करते हुए शिष्य-मण्डल के साथ गुरु हास परिहास कर रहे होंगे, कोई लिख रहा होगा, कोई पढ़ रहा होगा तो कोई किसी कोने में वृक्ष के नीचे मौन धारण किये बैठा होगा। इन्हीं भावों को लेकर मैंने हरिद्वार में पढ़ने का निश्चय किया था। वैराग्य परम अवस्था में था, तप की तीव्र लालसा थी, ईश्वर प्राप्ति की जल्दी थी। विचार था जैसे ध्रुव ने अपने व्यष्टि प्राणों से समष्टि प्राणों को रोककर समस्त विश्व को निस्तब्ध, निष्क्रिय और निरीह कर दिया था, उसी प्रकार पद्मासनस्थ होकर चिर समाधि में लीन होकर, परमात्मा में लय हो जाना है। इन्हीं विचारों से मेरा मानस ओतप्रोत था। न जाने कब हरिद्वार आ गया। हरिद्वार पहुँचने पर विचार किया कि कहाँ पढ़ा जाये। जहाँ शास्त्रों का सम्यक् अध्ययन हो सके। अनेक उहापोह के अनन्तर गुरुकुल में पढ़ने का निश्चय किया।

गुरुकुल का नाम मन में आते ही मन एक बार पुनः प्रफुल्लित हो उठा। गुरुकुल जहाँ कृष्ण और सुदामा पढ़े थे, जहाँ उपमन्यु और उपधौव्य ने शिक्षा ग्रहण की थी, जहाँ वरतन्तु शिष्य कौत्स चौदह विद्याओं में निष्णात हुए थे। जहाँ गोविन्द भगवत् पादाचार्य के श्री चरणों में रहकर अद्वैत् वेदान्त को आत्मसात् किया था। कितना सुन्दर होगा वह जीवन? प्रकाश और केवल प्रकाश से परिपूर्ण, दिव्य भावों से ओत–प्रोत, अहा! आनन्दस्रोत प्रस्फुटित

हो गया। जहाँ इतने विद्वान्, त्यागी, तपस्वी, वीतराग, यज्ञानुरागी आचार्यों की सन्निधि प्राप्त होगी। मैं गुरुकुल में प्रवेश लेने हेतु गया, मेरा प्रवेश हो गया और मैंने वहाँ से पी0एच0डी0 की उपाधि भी ग्रहण कर ली। परन्तु क्या मैंने ऐसे आचार्यों को पाया जिनकी मूर्ति मेरे काल्पनिक मानस में विराजमान् थी? नहीं! आचार्यों को तो नहीं पाया हाँ एक आचार्य जरूर ऐसे ही प्राप्त हो गये। वे थे महामानव महामहिम करुणावरुणालय प्रेमावतार, दया के सागर, विद्यावारिधि, वेदमार्तण्ड सरल, सहज और सज्जन, आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार। जिनकी वाणी में माधुर्य, वचन में गाम्भीर्य, और थी कर्म में कुशलता। जो "मनस्मैकं, वचस्मैकं कर्मण्येकं महात्मनाम्" की उक्ति को चरितार्थ कर रहे थे।

गुरुकुल में प्रवेश के अनन्तर छात्रावास में रहने के लिए कहा तो उत्तर मिला कि आप उप कुलपति आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार से मिल लें वे व्यवस्था करवा देगें। मैं उनके पास गया। जाते समय मन में भय था कि न जाने वे मुझसे मिलेंगे या नहीं? परन्तु आश्चर्य! महान आश्चर्य! वे जिस प्रकार मिले मैं उनका शब्दों में वर्णन नहीं कर सकता। ऐसा लगा मानों कई जन्मों से हमारा और उनका परिचय है। उन्होंने मेरी सारी समस्याओं का समाधान उसी समय कर दिया यह बात अगस्त 1981 की है और तब से निरन्तर मैं उनके सम्पर्क में रहा, जितना अधिक उनके सम्पर्क में आता गया उतनी ही अधिक श्रद्धा उनके प्रति मेरे मन में होती गई।

मई 1982 की घटना है। विश्वविद्यालय की वार्षिक परीक्षायें चल रही थीं। जिस दिन परीक्षा प्रारम्भ हुई, सभी अनुकरण (नकल) करने लग गये। क्योंकि यही परम्परा कई वर्षों से गुरुकुल में चली आ रही थी। वर्ष भर कुछ पढ़ाया नहीं जाता था, प्राध्यापक गप्प हांककर समय बिताते थे, अथवा परस्पर ईर्ष्या-द्वेष से एक दूसरे की निन्दा करके, अथवा अपनी ही प्रशंसा विद्यार्थियों के सामने करके ही समय बिताते थे। कुछ प्राध्यापक तो विद्यार्थियों को भी परस्पर की राजनीति में सम्मिलित करने की कोशिश करते थे। कुछ प्राध्यापक तो केवल विद्यार्थियों से चरणस्पर्श करानें तक ही सीमित थे, विद्यार्थी की योग्यता अथवा अयोग्यता से उनका कोई सम्बन्ध नहीं था, जो वर्ष भर कक्षा में अनुपस्थित रहकर, कुछ न पढ़ लिखकर परीक्षा के समय चरण स्पर्श कर लेते थे उन पर वे अंकों की वर्षा कर देते थे। फिर पढ़ने और पढ़ाने की क्या आवश्यकता थी। अनुकरण के अतिरिक्त और कोई पथ नहीं दिखाई देता था। अनुकरण ही परम धर्म था। परन्तु आश्चर्य! इन आचार्य महोदय ने तो अनुकरण (नकल)

करना ही मना कर दिया। सभी से पुस्तके, पर्चियां, कागज आदि छीन लिये गये। इतना होना था कि पूरा विश्वविद्यालय भवन भयंकर शोर से गुंजायमान हो गया। यह क्या? सभी विद्यार्थियों ने उठकर प्रश्न पत्र फाड़ डाले, उत्तर पुस्तिका के कई टुकड़े कर इधर–उधर डाल दिये और मुर्दाबाद के नारे लगाते हुए परीक्षा भवन से बाहर आ गये। परन्तु आचार्य सस्मित मुस्कान के साथ घटनाक्रम को देखते रहे। और बड़े ही दृढ़ भाव से कहा कि अनुकरण नहीं होने दिया जायेगा। और यह क्रम निरन्तर कई दिनों तक चलता रहा। सभी विद्यार्थियों की एक ही माँग थी कि नकल करने दी जाये। कभी उनका घेराव करने लगे, कभी धमकी भरे पत्र लिखने लगे तो कभी फोन पर ही धमकाने लगे। मैं स्वाभाविक सहानुभूति से उनके पास गया तो मुस्कराये और कहने लगे कि यहीं, प्रभु अपने भक्तों की परीक्षा लेते हैं। कितना दृढ़ विश्वास प्रभु पर। अन्त में प्रभु भक्त की ही विजय हुई। सत्य और धर्म ही उनके जीवन के सहचर थे। प्रतिदिन नियमित रूप से यज्ञ करना और यज्ञवेदी पर ही वेदों का स्वाध्याय करना उनका नैसर्गिक नियम था। जब भी उनसे मिलो तो सदैव वेद मन्त्र की ही व्याख्या करते थे। उनका रोम–रोम प्रभु भक्ति से ओत–प्रोत था। यद्यपि वे उद्भट विद्वान् थे पुनरपि वेदों को जनसामान्य तक पहुँचाने के लिए अति सरल भाषा में वेदमन्त्रों का अनुवाद कर पुस्तक रूप में छपवायीं।

दैवीय गुणों से सम्पन्न आचार्य का जीवन निश्चित ही एक प्रेरणाप्रद जीवन था। उनकी सरलता, सादगी और सौम्यता अनुकरणीय थी। मित्र और शत्रु में समभाव था। प्रिय वस्तु अथवा अप्रिय वस्तु की प्राप्ति अथवा अप्राप्ति में कोई उद्विग्नता नहीं थी। सदा एक रस, उच्च विचार और उदान्त भावों से परिपूर्ण थे आचार्य प्रवर। उनको कोटिशः नमन।

- **स्वामी मुक्तानन्द जी,**
एम.ए., पी.एच.डी.

राम एक देव पुरुष

आज से पन्द्रह वर्ष पूर्व आदरणीय भाई राम प्रसाद जी से कानपुर में श्रीमती स्वदेश धवन जी द्वारा आयोजित वृहद यज्ञ में मेरी भेंट हुई। उनकी वाणी ने, उनके ज्ञान ने, उनके हृदय से प्रवाहित होते हुए स्नेह ने हम सब सत्संग में आने वाले भाई–बहनों को अपने स्नेह पाश में बाँध लिया। उनके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर मेरे अन्दर बार–बार यह भाव उठता था कि कितना अच्छा होता ये मेरे भाई होते, 'मैं इन्हें राखी बाँधती'। मैंने अपनी इच्छा व्यक्त की और उन्होंने सहज भाव से, बड़ी प्रसन्नता से स्वीकार किया। इसके बाद तो उनका कानपुर वार्षिकोत्सव के अवसर पर आना और मेरा ज्वालापुर वानप्रस्थ आश्रम में जाना होता ही रहता था। मुझे उन्हें बहुत ही समीपता से देखने का अवसर मिला।

'राम' प्यार का सागर–

आदरणीय भाई जी कानपुर से जब बिदा होते थे तो कहते थे मैं अपनी बहन की झोली में क्या डाल दूँ? यह कहते हुए बड़े प्यार से कुछ न कुछ भेंट दिया करते थे। यह कहना कि 'मेरी ओर से बच्चों को फल लेकर खिलाना', इतना अच्छा लगता था कि उसका वर्णम नहीं किया जा सकता। ऐसा लगता था जैसे भगवान ने स्वयं प्रसाद दिया हो। उनका यह व्यवहार एक बहन के लिये नहीं, न जाने कितनी बहनों के लिये, कितने भाइयों के लिये, कितने बेटों के लिये, कितनी माताओं के लिये था।

कानपुर में, ज्वालापुर में सभी जगह सब में एक ही अनुभूति थी कि राम प्रसाद जी मुझे बहुत प्यार करते हैं। आरम्भ में मुझे लगा कि शायद मेरे अन्दर कुछ विशेषता है कि भाई जी ने मुझे अपना स्नेह दिया है लेकिन बाद में मैंने देखा कि भगवान की तरह वो सबसे स्नेह करते हैं किसी एक से नहीं। ऐसा व्यक्ति मैंने तो अपने जीवन में नहीं देखा जिसने अपनी पत्नी, बेटा – बेटी, भाई – बहन सबकी झोलियाँ अपने प्यार से भर दी हों सबको आनन्दित कर दिया हो आदरणीय आचार्य जी देवता थे।

आदरणीय भाई जी का चलना, फिरना, बोलना, लिखना, देना, लेना सभी कुछ

देवत्व से पूर्ण था। उनके घर पर जो भी चला जाये इतने प्रेम से फल अपने हाथ से काट–काट कर खिलाना, इच्छा न होने पर भी लोग खाते ही चले जाते थे। "बड़ा अद्भुत दृश्य होता था", हृदय रोमांचित हो उठता उस समय, जब वो अपने घर पर काम करने वाली लड़की को भी बड़े प्यार से बुलाकर बिठा कर फल खिलाया करते थे। हर वार्षिकोत्सव पर झोले में किताबें भर–भर कर लाते और दोनों हाथों में किताबें भरकर बाँटते। कभी – कभी सत्संगियों की संख्या देखते हुए उन्हें कहना पड़ता था 'भाई जी अब 1–1 पुस्तक दे दीजिये'। 'पुस्तकों के लिये पैसा चाहिये' कभी उनके मुँह से नहीं निकला। लेकिन प्रभु की अपार कृपा उन पर रही वे जनता को देते जाते थे और प्रभु उन्हें दे रहा था।

उनके पास ब्रह्मचारी आते, अपनी पढ़ने की इच्छा व्यक्त करते। आचार्य जी कहते कि जाओ तुम्हे पढ़ाई के लिये किसी प्रकार चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं और वर्षो तक उनकी फीस जमा होती रहती। उनकी मृत्यु के बाद भी एक ब्रह्मचारी को 5 हजार का चैक दिया गया, जिसे उन्होंने देने का वादा कर दिया था। कानपुर में जब भी आये जिसने भी बुलाया उसके घर वे जरूर गये। हम सभी परेशान होते थे यह देखकर कि इन्होंने विश्राम नहीं किया, इन्हें थोड़ा विश्राम करना चाहिये। लेकिन वो पता नहीं कौन सी शक्ति थी जो उन्हें बिना रुके, बिना थके, निरन्तर मानव मात्र को प्यार बाँटने के लिये प्रेरित करती रहती थी। उनके देवत्व की कोई सीमा नहीं थी। घर पर भी 24 घन्टे अतिथि सत्कार के लिये द्वार खुले रहते थे।

ईश्वर के अनन्य भक्त थे, आदरणीय भाई रामप्रसाद जी। कभी किसी भी प्रतिकूल से प्रतिकूल परिस्थिति में उन्हें विचलित होते, क्रोधित होते नहीं देखा। शान्ति की, सौम्यता की, सरलता की साक्षात प्रतिमा थे वे। एक बार एक कार्यक्रम में उन्होंने बहुत ही सुन्दर प्रवचन दिया। जनता वस्तुतः सोम (आनन्द) रस का पान कर रही थी इनके पश्चात दूसरे सज्जन ने ठीक उनके प्रवचन के विपरीत ऐसी बातें कहीं जो किसी को भी अच्छी नहीं लगीं। उनका विरोध भी किया गया लेकिन उनके चेहरे पर शान्ति के अतिरिक्त कोई भाव नहीं दीखता था। न उस विषय में वाणी से एक भी शब्द का उच्चारण किया बल्कि दूसरे दिन उन सज्जन के आग्रह पर मिलने भी गये।

इसी तरह अजमेर शताब्दी के समय उन्हें उनकी वैदिक साहित्यिक सेवाओं के लिये सम्मानित करने के लिये स्वामी सत्य प्रकाश जी ने आमंत्रित किया था। कार्यक्रम में वैदिक गृहस्थ विषय पर बोलने के लिये उनका नाम छपा हुआ था। मैं भी कानपुर के कई लोगों के साथ उनका प्रवचन सुनने के लिये गई। वहाँ देखा कि निरन्तर दान ही इकट्ठा होता रहा, आदरणीय भाई जी को बुलाया ही नहीं गया और कार्यक्रम समाप्त हो गया। समाप्ति पर आदरणीय भाई जी मिले मैंने कहा कि हम लोग तो विशेष रूप से आज आपका ही प्रवचन सुनने के लिये आये थे। झट से बोले चलिये आप जहाँ रुके हैं वहीं बैठते हैं संध्या करेंगे और आपको वहीं पर सुना देंगे। इतने सरल भाव से कहा जैसे कोई खास बात ही नहीं जबकि हम लोगों को यह सब अच्छा नहीं लग रहा था। लेकिन उनकी महानता को देखकर गर्व का भी अनुभव हो रहा था।

उनके उपदेश केवल दूसरों के लिये नहीं उनके अपने जीवन में पूरी तरह उतरें हुए थे शायद इसीलिये उनके साधारण शब्द हृदय में उतरते जाते थे बल्कि उनके कुछ भी न बोलने पर भी लगता था कि कुछ भीतर ग्रहण हो रहा है। जहाँ भी प्रचार के लिये जाते थे वे कभी नहीं चाहते थे कि उन्हें कोई लेने आये। कई बार इसी कारण काफी परेशानी भी उठानी पड़ती थी लेकिन वो इसका जिक्र तक नहीं करते थे। पिछले वर्ष जब वे प्रचार हेतु कानपुर आये वे अपनी धर्म बहन श्रीमती कमला मेहरा जी के निवास स्थान पर प्रातः 3 बजे पहुँच गये। धीरे से गेट खटखटाया, सभी घर के सदस्य गहरी नींद सो रहे थे अतः उन्होंने किसी की नींद खराब करना उचित न समझा, प्यास बड़ी जोर से लग रही थी। प्रातः 6 बजे दूध वाला आया। उसने घन्टी बजाई दरवाजा खुला, पूछा गया मामा जी आप कब आये? हँसते हुए उत्तर दिया आपने जब देख लिया। 7 बजे मैंने फोन किया पता चला भाई जी आ गये हैं उन्हें घर लेकर आये यहाँ पर भी उन्होंने उस घटना का जिक्र नहीं किया। यह घटना मुझे मेरी प्रिय भाभी सरोज जी से पता चली। ऐसा धैर्यवान व्यक्ति मैंने अपने जीवन में नहीं देखा।

ईमानदारी में भी नम्बर वन ही रहे। आदरणीय डॉ0 महावीर जी ने एक घटना सुनाई। एक बार कहीं से यात्रा करके आये। उन्हें टिकट नहीं मिलीं, ज्वालापुर आकर डॉ0 महावीर जी से बोले, 'महावीर एक टिकट ले आओ'। उन्होंने कहा आचार्य जी अभी तो आप आये हैं, अब टिकट की क्या आवश्यकता है? बोले 'मैं कह रहा हूँ, इसीलिये लेकर आओ'। महावीर जी बोले 'मैं टिकट लेकर आया और मेरे सामने ही उन्होंने टिकट फाड़कर फेंक दी'

महावीर जी ने कहा, यह क्या? तब बोले 'मैं बिना टिकट आया था मुझे टिकट नहीं मिल पाई थी'। यह था आदरणीय भाई जी का व्यक्तित्व।

साधारण से साधारण व्यक्ति को इतना सम्मान देते थे जिसके योग्य वो वस्तुतः नहीं होता था। हाँ उसके अन्दर वैसा बनने की इच्छा अवश्य उत्पन्न हो जाती थी। हर पत्र में भाई जी का सम्बोधन इस प्रकार होता था, 'मेरी पूजा के योग्य लाड़ली बहन, मेरी श्रद्धा एवं सम्मान के योग्य लाड़ली बहन'। इतना प्यार और सम्मान देना तो वास्तव में देवता का ही काम है मनुष्य का नहीं।

वेद के प्रति दीवानगी उनमें देखने लायक थी। देखने में बड़े सरल सीधे परन्तु असत्य के सामने कभी नहीं झुकते थे। विरोधियों का मुकाबला बड़े साहस से करते थे। रोज घर में न जाने कितने लोग भोजन करते थे लेकिन गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के कुलपति का पद प्राप्त करने के लिये किसी को भोजन नहीं कराया। आदरणीय भाई जी कहा करते थे "जब मैं" ध्यान में बैठता हूँ मुझे परमात्मा की आवाज आती है, "राम प्रसाद" मैं तुम्हें वह आनन्द दूँगा जो ऊँची से ऊँची कुर्सी पाकर भी नहीं प्राप्त किया जा सकता। लिखने को तो बहुत कुछ है लेकिन उनके बारे में लिखना मेरी सामर्थ्य के बाहर है जो कुछ भी लिखा उसमें पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं हो पाई अपनी योग्यता की कमी के कारण। अतः मैं अपने महामानव, योगी देवता भाई को हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए भगवान से प्रार्थना करती हूँ कि भाई जी जैसे, अपने जीवन काल में मानव मात्र के प्रेरक बने रहे वैसे ही उनके संस्मरण, उनका साहित्य, उनका व्यक्तित्व जन जागृति करता रहे, ज्ञान की ज्योति से मानव मात्र को ज्योतिर्मय करता रहे।

– श्रीमती सरला चौधरी
स्वरूप नगर,
कानपुर।

दिव्य-प्रेरणा-स्रोत आचार्य रामप्रसाद जी वेदालंकार

श्रद्धेय आचार्य रामप्रसाद जी वेदालंकार के प्रथम दर्शन उस समय हुए, जब आचार्य जी वेद मन्दिर सहारनपुर की जनता को अपने वचनामृतों से कृतार्थ करने पधारे थे। हमारे ही निवास पर ठहरे थे। लेकिन उस दिव्य पुरुष से वास्तविक परिचय तब हुआ जब हम लोग ज्वालापुर आर्य वानप्रस्थाश्रम में आए। उस समय आचार्य जी गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में कुलपति के पद को गौरवान्वित कर रहे थे। अत्यन्त मृदुभाषी, ज्ञान, तेज तथा अटल ईश–विश्वास का एक देदीप्यमान पुंज था उनका व्यक्तित्व। जहाँ अहंकार का कहीं लेशमात्र भी भान नहीं होता था।

जैसे जैसे उनसे सम्पर्क बढ़ता गया, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व के दर्शन होते गये। उनकी मृदुल प्रतिभा, गतिशील सार्थक किन्तु भक्तिभाव से पूर्ण लेखन उनकी विद्वता से प्रभावित करता गया। उस कर्मयोगी की लेखनी की गति अजस्र थी। यात्रा हो या व्यास पीठ पर ब्रह्मा के पद का ग़ौरवपूर्ण कार्य, उनकी लेखनी निर्बाध रूप से चलकर वेदों के गूढ़ रहस्यों को, उपनिषदों एवं दर्शनों के अमर सन्देशों को जनमानस तक पहुँचाती रही। सरल किन्तु स्पष्ट एवं हृदयग्राही वेदों की व्याख्या हम लोगों के लिए सुलभ कर गए, लेखनी के अमर स्वामी आचार्य रामप्रसाद जी वेदालंकार।

उनकी वाणी में तेजस्विता एवं मृदुता, ओज एवं तेज का अद्भुत संगम था। उन्नत ललाट, गौरवर्ण, प्रसन्न वदन के साथ जब आचार्य जी व्यास पीठ पर विराजते, व्यासपीठ की शोभा को द्विगुणित कर देते और जब उनके मुखारविन्द से भक्तिभाव की मर्मस्पर्शी धारा प्रवाहित होती, जनमानस को उद्वेलित कर देती। वेदों के मन्त्रों के प्रवचन उनकी वाणी मात्र से ही नहीं हृदय से प्रवाहित होते थे। उनका प्रभु प्रेम से गद्‌गद्‌ स्वर, निरन्तर अश्रु प्रवाह, जहाँ उनकी आत्मा से निस्सरित भावों को प्रकट करता, वहाँ श्रोताओं को मन्त्रमुग्ध कर देता। आज उनकी उस वाणी के जादू, वह भक्तिरस में सने उद्‌गार सुनने को हम तरस गए हैं।

मुझे आचार्य रामप्रसाद जी से अग्रज भ्राता का वात्सल्य, स्नेह एवं आशीष प्राप्त हुआ। उनकी आत्मीयता एवं आशीष पाकर मैं धन्य हुई। लेकिन यह नहीं जानती थी कि

काल का क्रूर प्रहार हमेशा के लिए हमसे अपने उस दिव्य, उस ज्ञान पण्डित प्रभुभक्त भाई को इतनी जल्दी छीन लेगा।

जैसा मैंने पहले भी कहा है कि अहंकार उन्हें छू भी नहीं गया था। आज मुझे स्मरण आ रही है वह घटना, जब मेरे पतिदेव को देहली में हृदय रोग का गम्भीर झटका लगा था। जब उनकी तबीयत कुछ सम्भली तो मैं सामान लेने आश्रम आई। आचार्य जी को जब ज्ञात हुआ तो आचार्य जी अपनी सहधर्मिणी सरोज जी के साथ मेरे पास हाल चाल पूछने आए। मैं पुनः देहली जाने को तैयार थी, मेरे पास कुछ सामान भी था। इतने बड़े कुलपति के पद पर मण्डित मेरे पूज्य भाई आचार्य जी ने मेरा सामान कन्धे पर उठा लिया, मैं मना करती रही लेकिन उनकी सदाशयता एवं उदार हृदयता के आगे मेरी एक भी न चली और दोनों ने मुझे बस तंक पहुँचाया। ऐसी एक नहीं अनेक घटनाएं हैं जो एक ओर उनके अभाव से सालती हैं वहाँ हमें दिव्य सन्देश एवं पाठ पढ़ाती हैं।

उनकी प्रभु भक्ति इतनी अटल थी उिनके सामने समस्याएं आईं, उन्होंने किसी और की तरफ नहीं निहारा। प्रत्युत आँख मूंद, ध्यान मग्न हो, उस अपने पिता से ही वार्तालाप कर उससे मार्गदर्शन प्राप्त किया। बड़े–बड़े प्रलोभन भी उन्हें डगमगा नहीं पाए। उनकी प्रभु भक्ति एवं ईश विश्वास अटल एवं अनुकरणीय था। उस निर्लिप्त एवं निर्द्वन्द्व भाई जी का सारा जीवन अपने आचरण से ही उपदेश देता है।

आचार्य जी की धर्मपत्नी श्रीमती सरोज आर्या, जो इस दिव्य पुरुष के संसर्ग में रह कर जहाँ कुन्दन बनती गई, वहीं अपनी सेवा समर्पण एवं अतुल्य सहयोग से उस कर्मयोगी के मार्ग को प्रशस्त करने में सदा तत्पर रहीं।

उनके सुपुत्र चिरंजीव अनुव्रत एवं पुत्री सौभाग्यवती श्रद्धा अपने पूज्य पिताजी से प्राप्त श्रेष्ठ संस्कार, भव्य–भावनाओं से जहाँ अपने जीवन को उन्नत करेंगे। वहाँ यशस्वी बनकर अपनी यश–सुरभि से दिग्दिन्त को सुरभित करते हुए आचार्य जी के नाम को अमर रखने में सदा प्रयत्नशील रहेंगे।

मैं अश्रुपूरित नेत्रों एवं सम्पूर्ण हार्दिक भावनाओं से आचार्य जी के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करती हूँ।

– प्रकाशवती रत्ना
2/35, आर्य वानप्रस्थ आश्रम,
ज्वालापुर, हरिद्वार।

आचार्य राम : एक देवपुरुष

एक देदीप्यमान वर्चस्वी, वेदज्ञ, आध्यात्मिक साधना में ओत–प्रोत, धाराप्रवाह लेखनी के धनी ऐसे व्यक्तित्व के सम्बन्ध में श्रद्धाञ्जली के शब्द लिखने में असमर्थता अनुभव करते हुए भी अश्रुओं के उद्वेग को रोकने का असफल प्रयास करते हुए अपनी विचार–शृंखला की उद्वेलित भावनाओं को व्यक्त करना आवश्यक समझता हूँ।

आचार्य रामप्रसाद जी के सम्पर्क में विगत दस वर्षों से आने पर ऐसा प्रतीत हो रहा है कि वह वेदमन्त्रों के धातुओं की आचार्य यास्कमुनि द्वारा प्रदत्त निरुक्त के नियमों की मार्यादाओं का अक्षरशः पालन करते हुए, सामान्य जनमानस के लिए सुलभ, बोध–गम्य व्याख्यात्मक दृष्टिकोण देकर लगभग 70 पुस्तकों के लेखन का कीर्तिमान स्थापित किया। सरल भाषा, जीवन के साथ घटित दृष्टान्तों के उद्धरण, जहाँ लेखनी के माध्यम से भारत की जनता को एक अनुपम देन दी, वहाँ उत्तरी और मध्य भारत के विशिष्ट स्थानों में अपने मधुर व्याख्यानों एवं प्रवचनों से लोगों के हृदयों का स्पर्श कर उनकी हृदय–तन्त्री को झंकृत किया।

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के एक उज्ज्वल छात्र ने आर्य वानप्रस्थाश्रम, ज्वालापुर में एक तपस्वी के रूप में वास करके अध्ययन करते हुए अन्ततोगत्वा उसी गुरुकुल कांगड़ी के आचार्य, उपकुलपति एवं कुलपति के पदों की गरिमा बढ़ाई और अनेक शिक्षाविदों एवं विद्यार्थियों का दिशा निर्देशन किया।

सरल स्वभाव के धनी आचार्य प्रवर को किसी व्यक्ति के प्रति कभी – भी न द्वेष, न ईर्ष्या, न गिला, न शिकवा का भाव देखने को मिला। वह सचमुच महामानव थे, साधू थे। वह अपने प्रवचनों में प्रवचनमय हो जाते थे, जिसमें वाणी, हृदय, मस्तिष्क और आत्मा का सुन्दर समन्वय होता था।

इस छोटे से जीवन में उनके द्वारा विदेश गमन भी हुआ और 'ईशावास्यम्' उपनिषद् का व्याख्यात्मक दृष्टिकोण आँग्ल भाषा में "Quest of Infinite" नाम से पुस्तक छपवाई। उनकी इस अनुपम देन को अत्यधिक अविस्मरणीय प्रशस्ति मिली एवं जनता लाभान्वित हुई।

प्रत्येक ऐसे सफल मनुष्य के पीछे एक सद्गृहिणी का हाथ होता है। बहिन सरोज जी ने इस व्यक्तित्व के निखरने में जो योगदान दिया, वह भी अत्यन्त सराहनीय अध्याय है। इनकी दोनों सन्ताने श्रद्धा एवं अनुव्रत उनके आदर्शों पर चलने में सिद्धहस्त हैं। आचार्य जी ने मनु महाराज द्वारा दिए गए दस धर्म के लक्षण अर्थात् "धृति, क्षमा, दयोऽस्तेयं,शौच, इन्द्रिय, निग्रह, धीर्विद्या, सत्यम क्रोधो इति दशकम् धर्म लक्षणम्" को अक्षरशः चरितार्थ किया। उनके सान्निध्य के दस वर्षों में, मैंने उन्हें क्रोधित होते कभी नहीं देखा और सदैव उनके मुखमण्डल को सरल मुस्कानों से भरपूर देखा।

मैंने उनके समीप बैठकर वेदों का अध्ययन किया। उस महान गुरु के प्रति मैं नतमस्तक हूँ।

अन्त में इतना कह सकता हूँ कि उनका व्यक्तित्व एक अथवा दो नहीं परन्तु अनेक आभाओं से पल्लवित था। (He was multiple attributes in one) उन्होंने जीवन में आए कष्टों को सहृदयता, सरलता, धैर्य एवं मित्रभाव से सहन किया एवं उनका समाधान किया। मैं और मेरी सहधर्मिणी दोनों उनके ऋण से जीवन भर उऋण नहीं हो सकते। हम दोनों उनके प्रति हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं।

आचार्य रामप्रसादाऽभिनन्दनम्

वेदोद्धारणमेव लक्ष्यमभवद् यस्यात्मनो जीवेन,
तस्यैव प्रतिपादनाय मतिमान यो चेष्टताऽहर्निशम्।
साङ्गोपाङ्गमधीत्य साधु सकलं यो वैदिकवाङ्मयम्,
व्याख्यां तस्य चकार सर्व–सुगमं तस्मै नमः यतिने।।

आर्या संस्कृतिमुद्दिधीर्षुखनो आर्य समाजं व्यदधासः,
तद् द्वारैव जनेषु वेद विहिताः प्रचारयः प्रक्रियाः।
वेदानां प्रचुरं प्रचारमकरोस् त्वं यज्ञ–होमैश्च यो,
वंदे संयमिनां वराय सुधिये तस्मैं रामप्रसाद!ते।

- आचार्य विद्यारत्न,
आर्य वानप्रस्थाश्रम, ज्वालापुर

"वेदपुरुष को नमन"

श्रद्धेय आचार्य रामप्रसाद जी का पावन सान्निध्य प्राप्ति का सौभाग्य सात आठ वर्ष तक प्राप्त हुआ। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में जब मैंने प्रवाचक (रीडर) के रूप में कार्यभार ग्रहण किया, वे आचार्य पद पर आसीन थे। यद्यपि हम उनके अधीनस्थ थे, वे हमारे आचार्य थे, किन्तु उनका आचार्यत्व कभी इस भाव का आभास नहीं होने देता था। सभी के साथ उनका स्नेहिल व्यवहार उनके विशाल हृदय का परिचायक था। वे सदा कहा करते थे सोमदेव! इस गुरुकुल परिवार में तुम्हें किसी प्रकार का कोई कष्ट हो तो मुझे बताना। उनके इस स्नेहिल व्यवहार की स्मृति आजीवन बनी रहेगी। उनके व्यवहार को देखकर ऐसा प्रतीत होता था, जैसे स्वामी श्रद्धानन्द जी द्वारा प्रवर्तित गुरुकुलीय आचार्य परम्परा का आदर्श सदा उनके सम्मुख रहता था, जिसमें वे अपना प्रतिबिम्ब निहारने के प्रयास में लगे रहते थे।

आचार्य वरुण, यम, मृत्यु स्वरूप होता है। वैदिक आचार्य की यह छवि श्रद्धेय आचार्य जी में स्पष्टतः परिलक्षित होती थी, वे गुरुकुलीय सभी गतिविधियों का ज्ञान रखते थे, उद्दण्ड छात्र भी उनके नियमन में रहते थे। शतशः स्नेहिल व्यवहार से भी जो छात्र, या कर्मचारी नहीं मानते थे, उनके लिए वे दृढ़तापूर्वक उग्रता भी धारण करते थे। वे **वज्रादपि कठोराणि मृदुनि कुसुमादपि** के जीवन्त उदाहरण थे। एक बार की घटना मुझे याद आ रही है– एक चतुर्थ श्रेणी का कर्मचारी उनके सामने अनाप सनाप गाली गलौज कर गया। प्रमत्त अवस्था में अपना त्यागपत्र भी आचार्य जी को थमा गया। इन सब कार्यकलापों को आचार्य जी मुस्कराते हुए ऐसे देख रहे थे जैसे एक छोटे बालक की उद्दण्डता को माता–पिता हँसते हुए उपेक्षा कर जाते हैं। मैंने उनसे कहा, आचार्य जी यह व्यक्ति इतनी उद्दण्डता कर रहा है और आप हँस रहे हैं। उन्होंने कहा– सोमदेव! वह किसी कारण से आवेश में है। मैं कुछ प्रतिक्रिया करता हूँ तो उसके बच्चे भूखे मरेंगे। यह कह कर वे शान्त हो गये। उनकी इस महानता, प्रभुता सम्पन्न होने पर भी क्षमाशीलता के समक्ष मैं नत–मस्तक हो गया। उनका जीवन आचार्यत्व का जीवन्त निर्वचन भी था निदर्शन भी। उनका समग्र व्यक्तित्त्व आचार्य पद की

व्याख्या करता हुआ सा प्रतीत होता था।

जहाँ वे अपनी लेखनी से एवं वाणी से अहर्निश वेदों के गूढ़ सन्देशों को जन–जन तक सम्पूर्ण भारतवर्ष तथा विदेशों में प्रसारित करने में संलग्न रहे, वहीं उनका सरल, सहज व्यवहार भी **मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्, ईशावास्यमिदं सर्वम्, वसुधैव कुटुम्बकम्** की भावना को प्रसारित करता प्रतीत होता था। वे जीवन के अन्तिम क्षण तक **'स्वाध्याय प्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्'** इस श्रुतिवचन का अनुसरण करते रहे। वेद एवं महर्षि दयानन्द के सन्देशों को सुनाते सुनाते आचार्य जी ने अपनी इहलीला पूर्ण की। वेदपुरुष श्रद्धेय आचार्य जी के वेदालोक से आलोकित जीवनालोक से कुछ प्रकाश के कण हम अपने जीवन में धारण कर सकें, तो यही हमारा उनके प्रति सादर नमन होगा, हमारी यथार्थ श्रद्धाञ्जलि होगी।

– डॉ0 सोमदेव शतांशु
रीडर, संस्कृत विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

श्रद्धेय भाई रामप्रसाद जी

हे! वेदज्ञ हे! सौम्य सुमन
तुम क्यों अभी से अस्त हुये
छोड़ अधूरे काम आज
तुम किस देश गये
जीवन के अन्तिम क्षण तक
तुम वेद प्रचार में लगे रहे
सबको रोता छोड़ गये
दे जीवन से सन्देश गये

अभी तो उम्र का तृतीय पहर था
अन्तिम को क्यों अंगीकार किया
थी आर्य जगत को तुमसे आशा
पर तुम तो मुखड़ा मोड गये
वो लेखनी भी आज सिसकती है
कुर्सी भी प्रतीक्षा करती है
बहन सरोज को याद सताती है
श्रद्धा अनुव्रत को बहुत तड़पाती है

अब कैसे धीर बन्धे उनको
तुम जैसा कौन प्यार करे उनको
पर ईश्वर की इच्छा आगे
सब नतमस्तक है उसके आगे
वो आपके सुखद सरल प्रवचन
सुनने को कान तरसते हैं
कर याद तुम्हें आचार्य जी आज
आँखों से अश्रु बरसते हैं।

थे आर्य जगत के तुम तारे
तुम बिन विद्वज सूने सारे
कहते कोई हमारा राम गया
कहते कोई हमारा गुरु गया
तुम सबको अपने लगते थे
जो कहते वो पूरा करते थे
हो आज जहाँ भी तुम्हें मेरा नमन्
लेलो हम सबके अश्रु सुमन्

-- लक्ष्मी आर्या
2/17, वानप्रस्थाश्रम, ज्वालापुर

मेरी वैदिक गणितीय शोध के प्रेरक : आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार जी

मैंने जुलाई 1960 में विज्ञान महाविद्यालय में प्रवेश लिया था। उस समय मैं बी.एस.सी. प्रथम वर्ष का छात्र था। उस समय श्री प्रियव्रत जी आचार्य एवं उपकुलपति थे। श्री रामप्रसाद जी का अध्ययन काल गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में इसके पश्चात् का है। सितम्बर 1968 में मैं विश्वविद्यालय की सेवा में विज्ञान महाविद्यालय में गणित विषय के प्राध्यापक के रूप में सम्मिलित हुआ। विश्वविद्यालय में अनेक शीर्षाधिकारी अपने कार्यकाल पूर्ण करके सेवा निवृत्त हुए। इसी बीच में कब श्री रामप्रसाद जी की नियुक्ति हुई, मुझे कुछ पता नहीं चला। मैं तो उनसे जब परिचित हुआ उन्हें आचार्य पद पर प्रतिष्ठित पाया।

मात्र दो तीन बार दर्शन प्राप्त होने पर ही मैं उनकी सज्जनता एवं विद्वता का कायल हो गया। कभी भी मैंने उन्हें क्रोध की मुद्रा में नहीं देखा। छात्रहित तथा अधीनस्थ शिक्षक एवं गैरशिक्षक कर्मचारियों के हित के प्रति वे सदैव सजग रहते थे। किसी छात्र के अथवा किसी कर्मचारी के कुछ अमर्यादित अथवा अनुचित आचरण करने पर उसे स्नेह से समझाते थे। किसी भी छात्र, कर्मचारी अथवा अधिकारी को उनसे असंतुष्ट नहीं पाया।

मुझे वैदिक गणित में शोधकार्य की प्रेरणा उनसे ही प्राप्त हुई। जब भी मिलते तभी पूछते कि क्या शोध कार्य कर रहे हो?, कहते कि वेदों में गणित का अध्ययन करो। मैं अपनी कठिनाई बताता कि आचार्य जी मैं तो उतनी संस्कृत नहीं जानता जितनी वेदों को समझने के लिए जाननी चाहिए। वे कहते कि प्रयत्न करने पर सब संभव है। मेरी सहायता प्राप्त करो।

एक दिन आचार्य जी ने मेरी कठिनाई सरल कर दी। उन्होंने मुझे आचार्य श्री राम शर्मा द्वारा लिखित यजुर्वेद भाष्य की पुस्तक दी और कहा कि इसमें मन्त्र तथा उनके अर्थ आदि सब दिये हुए हैं। अपने गणित से संबंधी मंत्रों को देखो तथा उनसे उचित परिणाम प्राप्त करो। कुछ और भाष्यों को जैसे श्री दयानन्द सरस्वती कृतयजुर्वेद भाष्यम् तथा सायणाचार्य जी का भाष्य भी देखने की सलाह दी। यजुर्वेद के जिन मन्त्रों ने मेरा ध्यान सर्वप्रथम आकर्षित किया, उनके विषय में नीचे लिखा जा रहा है। सर्वप्रथम इस मंत्र को देखिये–

अग्निकाक्षरेणप्राणमुद्रजयत तमुज्जेषमश्विनौ।
द्वयक्षरेण द्विपदो मनुष्यानुदजयतां तानुज्जेषं,
विष्णुस्त्रक्षरेण त्रील्लोकांनुदजयतानुज्जेषं छं,
सोमश्चतुरक्षरेण चतुस्पदः पशुनुदजन्तानुज्जषम।।

यर्जु0, नवमोऽध्यायः, मन्त्र (31)

इस मन्त्र में बताया गया है एक अक्षर से अग्नि ने आत्मा (एक) को जीत लिया है। दो अक्षरो से अश्विनी कुमारों ने व्यक्तियों (दो पैरों की ओर संकेत) को जीत लिया है। तीन अक्षरों से विष्णु ने लोकों (तीन की ओर संकेत) को जीत लिया है। चार अक्षरों से सोम ने पशुओं को (चार पैर की और संकेत को जीत लिया है।

निम्न मंत्रो का अवलोकन करें :–

1. एकथास्तुवत प्रजाऽअधोयन्त प्रजापतिरधिपतिरासीत्।
2. तिसृभिरस्तुवत ब्रह्मासृज्यतब्रह्मणस्पतिरधिपतिरासीत्।
3. पञ्चभिरस्तुवत सत्तऋषयो सृज्यन्त धाताधिपतिरासीत्।
4. सप्तभिरस्तुवतसप्तऋष्योऽसृज्यन्तधाताधिपतिरासीत्।
5. नवभिरस्तुवत पितरोऽसृज्यन्तादितिरधिपत्यासीत्।
6. एकादशभिरस्तुवतऽऋतवोऽसृज्यन्तार्हवाऽअधिपतयऽआसन्।
7. त्रयोदशभिरस्तुवतमासाऽससृज्यन्तसंवत्सरोऽअधिपतिरासीत्।
8. पञ्चदशभिरस्तुवत क्षत्रय सृज्यतेन्द्रोऽधिपतिरासीत्।
9. सप्तदशचिरस्तुवतग्राम्याः पश्वोऽसृज्यन्त बृहस्पतिरधिपतिरासीत्।
10. नवदशभिरस्तुवत शुद्राय्र्यावसृज्येता महोरात्रेऽअधिपत्नी आसताम्।
11. एकविंशशत्यास्तुवतैवशफाः पशवो सृज्यन्त वरूणेधिपतिरासीत्।
12. त्रयोविंशत्यास्तुवत क्षुद्राः पस्वोऽसृज्यन्त पूषाधिपतिरासीत्।
13. पन्चविंशशत्यास्तुवतऽऽरण्याः पशवोऽसृज्यन्तवयुरधिपतिरासीत्।
14. सप्तविंशशत्यास्तुवत द्यावापृथिवी व्यैतावसवोरुद्राऽआदित्या।
15. ऽअनुव्या शंस्तऽखवाधिपतयऽआसनू।।
16. नवविंशशत्वास्तुवत वनस्पनयोऽसृज्यन्त सोमोऽधिपतिरासीत्।

17. एकत्रि शंशतास्तुवत भूतान्य शाम्यन् प्रजापतिः परमेष्ठाधिपतिरासीत् ।

यर्जु0, चतुर्दशो अध्यायः, मन्त्र 28–29–30–31

इस मंत्र में संख्यायें विशेष ढंग से प्रयोग की गई हैं । प्रथम पंक्ति में एक वाणी के विषय में कहा गया है । दूसरी पंक्ति में तीन प्राण, उदान तथा ध्यान का उल्लेख है । तीसरी पंक्ति में पाँच प्राणों का वर्णन है । चतुर्थ पंक्ति में दो कान, दो नासिका, दो नेत्र तथा एक जिह्वा, इस प्रकार कुल सात का उल्लेख है । पंचम पंक्ति में नौ के विषय में कहा गया है । षष्ठ पंक्ति में दस प्राण तथा एक आत्मा इसप्रकार कुल ग्यारह का उल्लेख है । सातवी पंक्ति में दस प्राण दो पाद तथा एक आत्मा इस प्रकार कुल तेरह योग होता है । आठवी पंक्ति में दो हाथ, दस उंगलियाँ, दो भुजाएं तथा अतिरिक्त एक मास, इस प्रकार कुल योग पन्द्रह बनता है । नौवी पंक्ति में दो पैर, दस पैरों की उंगलियाँ, दो जांघ, दो घुटने तथा एक अन्य, इस प्रकार कुल योग सत्रह है । दसवीं पंक्ति में हाथ की उंगलियाँ (दस) तथा प्राण (नौ), कुल उन्नीस का उल्लेख है । ग्यारहवीं पंक्ति में हाथ की उंगलियाँ (दस), पैर की उंगलियाँ (दस) तथा एक आत्मा इस प्रकार कुल इक्कीस योग बनता है । बारहवी पंक्ति में हाथ की तथा पैरों की उंगलियाँ (बीस), पैर तथा एक आत्मा कुल योग तेइस है । तेरहवीं पंक्ति में बीस कुल उंगलियाँ, दो पैर, दो हाथ एक आत्मा कुल योग पच्चीस का उल्लेख है । चौदहवीं पंक्ति में बीस उंगलियाँ । दो भुजाएँ, दो जंघाएँ, प्रशतिशा दो तथा एक आत्मा इस प्रकार कुल योग सत्ताइस है । पंद्रहवीं पंक्ति में उंगलियाँ बीस, प्राण नौ कुल उनतीस के विषय में कहा गया है । सोलहवी पंक्ति में उंगलियाँ बीस, अंग दस तथा एक अन्य कुल इकतीस योग है । सत्रहवी पंक्ति में कुल योग तैंतीस है । इन मंत्रों में एक से प्रारंभ करके तैंतीस तक की विषम संख्यायें प्रयुक्त की गयी हैं

. मन्त्र में प्रयुक्त संख्याओं को सारिणी रूप में निम्न प्रकार दर्शाया जा सकता है :

पंक्तियों में प्रयुक्त संख्याएं	**उनका योग**
1	1
1,1,1	3
1,1,1,1,1	5
2,2,2,1	7
9	9

10,1	11
10,2,1	13
2,10,2,1	15
2,10,2,2,1	17
10, 9	19
10,10,1	21
10,10,2,1	23
10,10,2,2,1	25
10,10,2,2,2,1	27
10,10,9	29
10,10,10,1	31
10,10,10,2,1	33

इस प्रकार मैंने वेदों में गणित का अध्ययन प्रारंभ किया। यजुर्वेद में कितने ही मंत्र ऐसे भी प्राप्त हुए जो अति विशेष है। इसके बाद मैंने कुछ ऋग्वेद का भी अध्ययन किया। वैदिक गणित शोध संबंधी कई लेख प्रकाशित किये। यह सब कार्य उनकी प्रेरणा से प्रारंभ हुआ था। मुझे आचार्य श्री रामप्रसाद वेदालंकार जी सदा स्मरण रहेंगे। मैं उन्हें हार्दिक श्रद्धांजलि देता हूँ।

— डॉ0 विजयेन्द्र कुमार शर्मा
गणित एवं सांख्यिकी विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय,
हरिद्वार।

आर्यजगत के चमकते सितारे, सत्य की साक्षात् मूर्ति : आचार्य रामप्रसाद जी

मेरे प्यारे पूज्य भाई राम जी को आज संसार से विदा हुए एक वर्ष ढाई मास हो गये हैं, जब वह अपनी तुच्छ बहिन को रोता बिलखता छोड़ गये थे। मैं उनकी इतनी ऋणी हूँ कि कई जन्म लेकर भी उनका ऋण नहीं उतार सकती जो उन्होंने मेरे एवं मेरे परिवार के प्रति उपकार किये हैं इतना गहरा स्नेह था मुझे अपनी माँ जाई बहनों की पंक्ति में मानते थे उनके 15 वर्ष पहले के लिखे पचासों पत्र विद्यमान हैं जो पढ़ते हुए उनकी लेखनी में दर्शन करती हूँ– वह चमकते सितारे प्रभात के तारे की तरह न जाने कहाँ छिप गये, खो गये, जल की बूंद की तरह विलीन हो गये, लुप्त हो गये। कोई ऋण ऐसा नहीं जो मैं अपने हृदय से भुला सकूँ। मैं अपना सम्बन्ध उनके साथ परमार्थ का मानती हूँ। उनके प्रति जो स्नेह सम्मान, है क्या वह लेखनी से लिखा जा सकता है? नहीं। भाई के मिलन की प्रथम घड़ियां सन् 69 में प्रथम बार व्यास आश्रम के शिविर में पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी जी की प्रेरणा से आई। मैंने इस महान आत्मा के दर्शन किये। एक सप्ताह का कार्यक्रम था इनके दर्शन किये। ऐसा आभास हुआ कि यह तप त्याग की मूर्ति कौन है? मटमैली धोती कुर्ता, छोटा सा कद, सौम्य चेहरा सूर्य के समान तेज से तमतमा रहा था। यज्ञ के ब्रह्मा थे। वाणी से सरस्वती का प्रवाह बह रहा था, नेत्रों से अश्रुधाराऐं बह रही थीं बस मैं तो प्रथम बार दर्शन करके दीवानी हो गई। भीतर हृदय तड़प रहा है इतनी महान आत्मा से बात कैसे करूँ। मेरा सौभाग्य नहीं है यह मुझसे बात करें। मैं मूक होकर अश्रु बहाती वापिस अहमदाबाद चली गई। दो तीन वर्ष ऐसा ही रहा बस इनकी मधु वाणी सुनती रहती। महात्मा आनन्द स्वामी जी के आदेश पर भजन गाती। मुझे यज्ञ वेदी पर कार्य करते देखकर थोड़े प्रभावित हुए। पूर्णाहूति वाले दिन मैं जूतों के पास खड़ी थी। वहाँ आकर बोले, बहिन जी मैं आपके लिए मंगल कामना करता हूँ, सदा प्रसन्न रहो। मुझे ऐसा लगा जैसे आज धन का खज़ाना मिल गया है। उनकी मधुर आवाज़ आज भी कानों में गूंज रहीं है। इस महान आत्मा की आवाज सदा सदा के लिए मेरे साथ बंध गई। ऐसे भाई को कैसे भूलूँ मैंने उनके साथ लम्बी–लम्बी राजस्थान की, गुजरात की व अन्य स्थानों की यात्राऐं की। प्रचार कार्य में साथ रही, निकट से निकट उनके क्रियात्मक जीवन का मैंने सम्यक् रूप से दिग्दर्शन किया। और अनुभव किया किस प्रकार उन्होंने अपने सारे

उत्तरदायित्वों का पालन करते हुए गुरुकुल के ऊँचे पद का निर्वहन करते हुए, वेद माता की सेवा करते हुए, वेद के प्रचार प्रसार में समाजिक जीवन में प्रेरणा के स्त्रोत बनकर अन्तिम समय तक अपनी लेखनी चलाते हुए अपना जीवन होम कर दिया। उनका जीवन जलती मशाल था, वेद रूपी मशाल हाथ में लेकर भारत के कोने–कोने में जाकर अनेकों पथ से भटके लोगों को वेद का ज्ञान देकर, असंख्य लोगों के हृदयों से अज्ञान अन्धकार को दूर कर, सत्य पथ दिया। स्वयं जलकर प्रकाशित हुए औरों को भी प्रकाशित कर गये। महर्षि दयानन्द के सच्चे अनुयायी थे, वैदिक सिद्धान्त पर अडिग रहते थे। कितना ऊँचा, पवित्र जीवन, कितनी विनम्रता, सरलता, सहनशीलता, धैर्य, आत्मसन्तोष, हृदय में अलौकिक स्नेह का स्त्रोत बहता था। उनका हृदय अथाह समुद्र के समान गंभीर था, विशालता, उदारता सीमा पार कर गई थी, उनके भीतर दैवी गुणों का समावेश था। अपने जीवन में उनके चेहरे पर कभी क्रोध की रेखा नहीं देखी। मान–अपमान, हानि–लाभ, दुःख–सुख, रोग–शोक में सम रहना, मुस्कराते रहना, उनका विशेष गुण था। वेद का ज्ञान केवल ग्रन्थों में ही नहीं पाया, उनके जीवन से वेद बोलता था सारी सन्ध्या का मार्जन मन्त्र उनके आचरण में था। अन्तःकरण इतना पवित्र था, अपने पराये में भेद नहीं था जो उनको मिलता वह यही समझता कि मुझे यह सबसे अधिक प्यार करते हैं।

दूसरों के उत्थान में तन,मन, धन लगा देते थे, किसी के कष्ट को सहन नहीं कर पाते थे। इतनी पवित्र आत्मा थी जब भी मिलते बहन जी बैठो, एक मन्त्र सुन लो, सुनाने के पश्चात कहते भूलोगी तो नहीं। कोई ऐसा विद्वान भाई उनके जाने के बाद मिला नहीं जिसने ऐसे शब्द कहे हों, हर समय यही कहते थे, मैं आपको बहुत ऊँचा उठते देखना चाहता हूँ। कभी प्रवचन करने के बाद मिलते तो कहते बहन जी आपके लिए ही आज विशेष मन्त्र बोला है। मेरे और मेरे परिवार के ऊपर विशेष आशीर्वाद रहा, मेरे सब खुशी, गमी के कार्य इस भाई के कर कमलों से हुए हैं। भगवान कृष्ण की तरह बिना पत्र लिखे पहुँच जाते थे, इनके दर्शन कर हृदय आनन्द में झूम जाता था। जब हम दोनों पति पत्नी ने वानप्रस्थ भाई जी से लिया तो हँस कर आँसू बहाते कहते हैं आज हमारी बिरादरी कम हो गई है, वानप्रस्थाश्रम बिरादरी बढ़ गई है। वानप्रस्थ लेने के पश्चात जब मैं पहली बार ज्वालापुर इनके पास आई व वापिस तपोबन जाने लगी मैंने कहा मुझे आशीर्वाद दो, बोले बहुत अच्छा आशीर्वाद दूँगा। जो दूँगा वह ले लोगी, मैंने जब स्वीकार किया तो कहने लगे देखो, वानप्रस्थ में हर क्षेत्र में जहाँ से भी गालियां पड़ें, किसी का उत्तर नहीं देना, पूर्ण रूपेण मौन रहना, बहुत ऊँचा जीवन बनेगा। आर्य समाज के प्रचार प्रसार में सावधान रहना। सदा भुने चने पास रखना। मैं चारों ओर से आपका यश सुनना चाहता हूँ।

किसी के व्यक्तित्व की एवं योग्यता की पहचान करनी हो तो एक ही कसौटी वह वाणी से होती है। मेरे प्यारे भाई की वाणी से माधुर्य सोमरस टपकता था, नेत्रों से अश्रुधाराएं टपकती थीं। मेरा सिर उनके चरणों में झुक जाता, इक दिन मैंने कहा भाई जी मेरी एक बात मानोंगे? 24 घंटे आपकी बात मानने के लिए तैयार हूँ, बोलो तो सही। मैंने कहा इन डायरियों के, कापियों के अक्षर मिट जाएंगे, मैं हर समय आपकी कापियों के नोट लिखती रहती हूँ वेद ज्ञान की चोरी कर रही हूँ। बोले जी भर कर लिखों। मैंने प्रार्थना की मेरी इच्छा है इनको प्रकाशित कराओ, बोले हंसते हुए, बहिन जी आपकी इच्छा ईश्वर एक दिन अवश्य पूरी करेगा चिन्ता न करो बात आई गई हो गई। मैंने पूज्य आनन्द स्वामी जी के आग्रह पर तीन भजनों की पुस्तकें प्रकाशित कराई, एक प्रभु भजन संग्रह, बिखरे मोती, आनन्द सुमन। स्वामी जी के आदेश पर दो पुस्तकों में एक–एक लेख रामप्रसाद जी का भी दिया, बस जनता उन लेखों को पढ़कर दीवानी हो गई। पश्चात प्रार्थना सुमन, अनन्त की ओर छपी। अकेले ही सब साधन उपस्थित कर जीवन में संघर्ष करते हुए, लेखनी चलाते हुये, पार्सल, बिल्टियां बांधकर, थैले भर–भर लोगों को बिना मोल बांटते रहे। थोड़ा विचार तो करो, बिना मूल्य तो दुनिया में केवल परमात्मा ही दे सकता है और सब पदार्थ दे रहा है। यह किसी बन्दे का काम नहीं, मेरे भाई मनुष्य नहीं देवता थे। सच्चे प्रभु भक्त एवं उत्तम कोटि के साधक थे। बहुत कहती मंच पर आ जाओ, अब साधना कराओ। कहते 62 वर्ष के बाद मंच पर आऊँगा। विधि का विधान कौन जानता था? मन की तमन्ना मन में ही रह गई। सामान्य वार्तालाप करते.हुये भी पवित्र गंगा जल की तरह उनके अश्रु बहने लग जाते, अपनी प्रशंसा कभी नहीं सुनना चाहते थे। आत्मप्रशस्ति से बहुत ऊँचे उठ चुके थे। श्रेष्ठ कर्मो के कारण वह स्वयं ही सूर्य–चन्द्र की तरह यशस्वीं रहेंगे। आने वाली सन्तानें उनका यश गाएंगी।

— नरेन्द्र आर्या वानप्रस्थी
तपोबन आश्रम
देहरादून।

पूज्य वेदरत्न आचार्य रामप्रसाद जी वेदालंकार के सानिध्य में हुए कतिपय संस्मरण-

ऋग्वेद के एक मंत्र का भाव है कि सारे देव (जड़ चेतन) उस देवों के देव महादेव ईश्वर के सानिध्य से देवपन को प्राप्त करते हैं जिसे परमगुरु कहा गया है। **"वयं देवानां सुमतौ स्याम"** अर्थात हम सदा देव–विद्वानों की सुसङ्गति में रहे।

जीवन एक यात्रा है, जिसकी परिसमाप्ति मोक्ष होने पर होती है। इस जीवन यात्रा में अनेक अच्छे बुरे व्यक्तियों से सम्पर्क होता है। शुभ कर्मों के फलस्वरूप कुछ ऐसे विशिष्ट व्यक्ति भी मिलते हैं जो अपने जीवन व व्यवहार की अमिट छाप अपने सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति के जीवन में छोड़ जाते हैं, ऐसे व्यक्ति प्रत्यक्ष/परोक्ष रूप से अनेक जिज्ञासुओं का निर्माण व मार्गदर्शन करते रहते हैं। ऐसे ही विशिष्ट व्यक्तियों में अग्रणी आचार्य प्रवर थे, जिन्होंने अपने सम्पर्क में आने वाले कितने ही पठित युवको, ब्रह्मचारियों, गृहस्थ आदि जनों का वेद के परिप्रेक्ष्य में मार्गदर्शन किया है।

दैव अनुकम्पा से मुझे भी आचार्य प्रवर का वेद विषय में शिष्य बनने का सुअवसर प्राप्त हुआ। सर्वप्रथम अक्टूबर 1990 में दिल्ली नगर में आचार्यप्रवर के मुखार बिन्दु से वेद प्रवचन सुनने का अवसर मिला, उनकी सरल, मनोहारी, सुसंस्कृत वेद व्याख्यान शैली ने प्रभावित किया। वर्ष 1995–96 में उन्हीं की प्रेरणा से 'वैदिक साहित्य' विषय में गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय से एम.ए. करने का संकल्प किया, उस काल में जो उनसे प्रेम, सहानुभूति, वेदार्थ शैली, वेदविज्ञान प्राप्त हुआ, वह जीवन में अविस्मरणीय रहेगा।

वैदिक वाड्.मय में विशिष्ट रुचि व प्रवेश करने का श्रेय पू. आचार्यप्रवर को ही जाता है।

वेद के विषय में इतनी श्रद्धा, रुचि प्रायः अन्य जनों में मैंने नहीं देखी जैसी वेदों में अपार श्रद्धा आचार्य जी में थी जिनकी जीवनचर्या वेदों के परिप्रेक्ष्य में होती है यथा– प्रातः से रात्रि पर्यन्त वेदों की चर्चा, वेदमंत्रों की व्याख्या लिखना, वेदप्रवचन आदि में ही व्यतीत होता था। वाणी, लेखनी, व्यवहार के धनी व्यक्ति ऐसे आचार्य को कभी खाली बैठे नहीं देखा, एकाग्रता इतनी अधिक थी कि शोरगुल के वातावरण में भी वेद पढा रहे हैं या पुस्तक लेखन में तल्लीन है, सामान्य व्यवहारकाल में भी उनकी लेखनी चलती ही रहती थी।

"उपकुलपति" के अत्यन्त कार्यभार वाले पद पर आसीन रहते हुए भी अपने सहयोगी कार्यकर्त्ताओं (Peon) से वेद के विद्यार्थियों को स्वयं बुलाकर वेद अध्यापन करते थे, अत्य़न्त प्रतिकूलताओं में भी वेद अध्यापन से कभी विमुख नहीं हुए– "वेद का पढना, पढाना ....

परम धर्म है", इस वाक्य को प्रायः बोलते थे। ऋषि की यह पंक्ति उनके जीवन में चरितार्थ होती थी।

एक बार पू. आचार्य जी के सानिध्य में वेद प्रचारार्थ देवलाली– महाराष्ट्र में जाने का अवसर मिला। एक सप्ताह तक उनकी विशिष्ट वेद प्रवचनमाला व जीवन व्यवहार को निकट से पढ़ने का अवसर मिला। वेद एवं वैदिक सिद्धान्तों का अत्यन्त सरलीकरण व साथ–साथ कितनी ही व्यवहारिक–पारिवारिक समस्याओं का समाधान, कला को देखने का अवसर मिला।

बार–बार प्रयत्न व श्रद्धापूर्वक उनकी सेवा का अवसर चाहने पर भी अत्यल्प रूप में ही सेवा लेते थे, जीवन तपस्वी था। सदा यही प्रेरणा व आशीर्वाद देते कि "वेद का विद्वान् बनकर मनुष्य जीवन का निर्माण करना"

उनकी पुस्तकों ... अनन्त की ओर, कहाँ है वह जो सब पर उपकारों की वर्षा करता है, ईश्वर मुझे सुखीकर, दान प्रशंसा, ने बहुत प्रभावित किया, अनेक बातों को मैंने स्व–जीवन में भी धारण किया। यदि मुझे आचार्यप्रवर का सानिध्य न मिलता तो, मैं वेद विषय में जितना ज्ञान–विज्ञान, वेदों में रुचि, श्रद्धा, जितनी आज अनुभव कर रहा हूँ वैदिक वाङ्मय में जो प्रवेश कर सका उससे वंचित रहता।

मेरी हार्दिक इच्छा पू. आचार्य से सम्पूर्ण "निरुक्त' पढने की थी, उन्होंने आशीर्वाद दिया था कि मैं तुम्हें अपने पास रखकर निरुक्त पढाऊँगा, वह इच्छा अधूरी ही रह गई।

मैं पू. स्वामी सत्यपति जी को जहाँ योग व दर्शनविद्या का गुरु बनाकर अत्यन्त लाभान्वित हुआ, वहीं पू. आचार्य, वेदरत्न रामप्रसाद जी वेदालंकार को वेद का गुरु बनाकर स्वयं को अत्यन्त शौभाग्यशाली मानता हूँ। उनसे प्राप्त वैदिक विज्ञान का प्रचार–प्रसार सम्पूर्ण जीवन करने हेतु दृढप्रतिज्ञ हूँ।

अस्तु अत्यन्त सरल तपस्वी, वेद विद्वान्, प्रखर लेखक, वक्ता, विचारक, वाणी व व्यवहार के धनी, वेदभक्त पूज्य आचार्य रामप्रसाद जी वेदालंकार के द्वारा किये गये उपकारों के प्रति हृदय से कृतज्ञ हूँ।

उनके प्रति अपने श्रद्धा प्रसून समर्पित करता हूँ।

– आशुतोषार्यः दर्शनाचार्यः
एम.ए. वैदिक साहित्य
आर्यवानप्रस्थाश्रम
ज्वालापुर, हरिद्वार।

पुष्प से कोमल, वज्र से कठोर आचार्यश्री

अतीत में देखने पर एक निश्छल, सरल, उदारमना, मध्यम आकार की नम्रता की मूर्ति, सत्त्व की प्रकाशमयी छवि सी धवल धोती–कुर्ते में दिखाई पड़ती है जो समुद्र की गरिमा को धारण किए हुए है। उनकी धीर–गम्भीर–माधुर्य गुण से पूरित स्वर–सरिता में स्नानकर जिस तृप्ति का अनुभव होता था, वह सुखद अनुभूति मेरे अन्तःस्थल में आज पुनः जाग्रत हो गई है। ऐसा लगता है कि वह छवि मुझे कह रही हो – 'भारद्वाज! विचलित नहीं होते। प्रभु की इच्छा से ही यह सब हो रहा है। दुःखी होना या सुख अनुभव करना विवशता है'। हाँ! विवशता ही तो है। हमारे संस्कार ही जन्म, आयु, भोग देने वाले हैं, जैसा कर्म करते हैं, वैसा ही संस्कार बन जाता है। उनका फल ईश्वर–नियम के अन्तर्गत करने के लिए आगामी जन्म, आयु और भोग प्राप्त होते हैं। इसमें हम परतन्त्र हैं किन्तु उस अवधि में स्वेच्छया कर्म करने के लिए हम स्वतन्त्र भी हैं। इसी कारण सत्कर्म (दानादि) तथा सत्संगति के फलस्वरूप व्यक्ति स्वकल्याण हेतु पुण्य संस्कार एकत्र कर सकता है।

'कर्मयोग' का सिद्धान्त है– फल की इच्छा न रखते हुए कर्म करना। यह ईश्वर–प्रणिधान पर टिका है। गीता में कहा है–

"ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा।।"

जो व्यक्ति आसक्ति रहित होकर ब्रह्म को अर्पित करके कर्म करता है, वह पाप से (अथवा पुण्य से भी) लिप्त नहीं होता, जैसे जल में रहकर भी कमल का पत्ता जल से विलग रहता है।

यह कर्म का सिद्धान्त है। हम जो कर्म करते हैं, उसके संस्कार जमा रहते हैं जो कालान्तर में फल देते हैं। यह ईश्वर की व्यवस्था है। कोई भी कर्म फल दिए बिना नहीं मिटता। मुस्लिम मत में 'तोबा' कर लेने पर 'खुदा' उसके दोषों को क्षमा कर देता है किन्तु वैदिक मत में प्रभु अपराध क्षमा नहीं करता। हर किए गए कर्म का फल भोगना पड़ता है। इसी मत के अनुसार व्यक्ति कर्म फल भोगने के लिए आगामी जन्म, आयु और भोग प्राप्त करता है। पुण्य कार्य के फलस्वरूप सुख, पाप कार्य के फलस्वरूप दुःख तथा पुण्य–पाप मिश्रित

कर्म के फल के स्वरूप सुख–दुःख मिश्रित रूप से प्राप्त होते हैं। यदि कर्म इस प्रकार किया जाए कि वह फल न दे, तो यह 'कर्म में कुशलता' कही जाती है। यदि कर्म को ब्रह्म को अर्पित करके किया जाए तो यह निष्काम कर्म व्यक्ति को फल नहीं देता। ऐसे ही कर्म करने वाला योगी पुरुष, कर्म के फल से बच जाता है। पूर्व जन्म के कर्मों के संस्कारों को समाधि की अग्नि से जलाकर नष्ट कर देता है और मुक्त हो जाता है।

उक्त निष्काम कर्मयोग का सिद्धान्त आचार्य श्री रामप्रसाद वेदालंकार के ऊपर पूर्णतः ठीक बैठता है। स्वनाम धन्य, वेदमूर्ति, तप–त्याग की प्रतिमा, धीर–गम्भीर व्यक्तित्व के धनी, जिनके मुखमण्डल पर तेजस्विता झलकती थी, उनके विषय में कुछ भी कहना मेरी वाणी की सामर्थ्य से बाहर है।

आचार्य श्री मुझे बहुत स्नेह करते थे। जब योग विभागाध्यक्ष के पद पर मेरे स्थान पर उनको नियुक्त किया तो उन्होंने सहज भाव से मान्य डा. महावीर जी को कहा कि 'इसके लिए भारद्वाज ही उपयुक्त है। मैं कुलसचिव को अभी कहता हूँ'। तुरन्त कुलसचिव के पास जाकर मेरे नाम आदेश करा दिए। मैं जब भी कोई काम लेकर जाता, कभी सोचने– विचारने के लिए समय नहीं लेते थे। ऐसा अटूट विश्वास था और मैंने भी निष्ठा से उसे निर्वाह करने का प्रयास किया।

मनुष्य के जीवन में 'उतार–चढ़ाव आना एक सहज प्रक्रिया है। यदि झंझावात में धैर्य धारण करके समय गुजर जाए तो उन्नति के द्वार खुल जाते हैं और अधीर होने पर जीवन समाप्त हो जाता है। झंझावात की तीव्रगति भी आचार्य श्री को अपने उन्नति–पथ से विचलित नहीं कर पाई। कठिन से कठिनतर परिस्थितियों को ईश्वरानुग्रह कहकर सह गए। मुझे उनके सान्निध्य में रहकर सतत प्रेरणा मिली। मैं शीघ्र ही अधीर होने वाला तुच्छ जीव उस विराट व्यक्तित्व की झलक भर से स्थिरता प्राप्त कर लेता।

उनकी वाणी का जादू निश्चित रूप से मंत्रमुग्ध करने की सामर्थ्य रखता था। करुणा से छलछलाए नेत्र बिना बोले ही अन्तर्व्यथा को व्यक्त कर देते। श्रोता बिना आँख से बूँद गिराए उनके संभाषण का आनन्द नहीं ले सकता था। वाग्मी इतने कि हजारों की भीड़ को बाँधे रखने का सामर्थ्य उनमें था। चाहे मुम्बई महानगर की सभा हो या आर्यवानप्रस्थाश्रम की सुविज्ञ सभा – सब जगह उनका वर्चस्व बना रहता था। वैदिक विद्वान् के नाते उन्हें देशभर से बुलाने वालों की भीड़ लगी रहती थी।

यद्यपि काम अधिक थे तथापि उनका लेखन कार्य सतत चलता था। कक्षा लेने के पहले, लेने के बाद, सभा से पहले, सभा के बाद, भोजन से पहले, भोजन के बाद वे लेखन में

ही खोए रहते। शायद उन्हें यह आभास था कि जितना जल्दी काम पूरा हो जाए, वही अच्छा है। न जाने कब जीवन की सायं वेला आ जाए।

उनके शिव संकल्प युक्त मन में मैंने कभी दुर्भाव नहीं देखा। जो व्यक्ति किन्हीं परिस्थितियोंवश निजी कार्य नहीं करा पाए और उनके दृढ़ व्यक्तित्व के आगे बौने पड़ जाते थे, वे भी उनको कभी बुरा नहीं कह पाते थे। ऐसे अजातशत्रु आचार्य श्री के मन में दुर्भाव कैसे स्थान पा सकते थे?

वेदमय जीवन सदा अपना प्रकाश बिखेरकर दूसरों को मार्ग दर्शन देता है। उन्होंने भी सदा हम लोगों को सन्मार्ग में प्रेरित किया। गुरुकुल में रहकर गुरुकुल की प्रतिष्ठा बढ़ाई। स्वामी श्रद्धानन्द, आचार्य रामदेव, आचार्य अभयदेव, आचार्य बुद्धदेव, आचार्य प्रियव्रत वेद वाचस्पति, आचार्य रामनाथ वेदालंकार आदि महामना आचार्यों की परम्परा को आचार्य श्री द्वारा अपने कन्धों पर उठाकर आगे बढ़ाया गया। उनके व्यक्तित्व और कृतित्व ने सदा गुरुकुल को सर्वत्र सम्मान दिलाया। वेद के स्तम्भ के रूप में उनकी ख्याति देशभर में है और उसी के साथ गुरुकुल की पताका भी फहरा रही है।

उनकी जयन्ती के अवसर पर हृदय से उनके प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ। शमित्यो३म्।

— डॉ0 ईश्वर भारद्वाज
अध्यक्ष, योग विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार, उ0प्र0

परम श्रद्धेय भैय्या रामप्रसाद

तुम स्वयं राम अभिराम,
मनोहर नाम तुम्हारा।
माधुर्य, ओज, प्रसाद,
गुणों का संगम न्यारा।
विनय, नम्रता, सात्विकता,
का तुम अनमोल खजाना।
रस तुम से रसवान हुआ,
और मर्म प्रेम ने जाना।
प्रतिभा सरसिज सी सरसी में,
लेती है अंगड़ाई।
श्रद्धा–साहित्य–सृजन में जिसकी,
गन्ध मधुर बिखराई।
वेदों की भागीरथी जिसकी वाणी में बहती हो।
कलम अगम की बात निगम के कानों में कहती हो।
धन्य हुआ यह वेद–सदन भी, या आवास तुम्हारा।
गृह–गृहिणी से शोभा पाता, सदन वेद से प्यारा।
और तुम अच्युत परम स्नेही, प्राण से बन्द हुए काया में।
शाश्वत और सनातन हो तुम, मुक्त सतत छाया में।
प्रकृति पुरुष का मिलन, विधि का लीला अपरम्पार।
वेद–सदन है या कि राम का धाम स्वयं साकार।

– प्रकाश कपूर

सौम्य-मूर्ति आचार्य रामप्रसाद जी

स्वनाम धन्य आचार्य रामप्रसाद जी सचमुच 'राम' के प्रसाद थे अर्थात प्रभु कृपा में जीते जागते उदाहरण थे। अहंकार उनको छू तक नहीं गया था। उनकी सौम्यता व दूसरों को सहायता करने का स्वभाव लोगों को उनके निकट लाता था। उनकी सर्वप्रियता का यही मुख्य कारण है। मैं वानप्रस्थाश्रम में 1945 से आ रहा हूँ। सर्वप्रथम मुझे महात्मा खश्हालचन्द जी 1945 में अपने साथ लाए थे। उसके बाद आना–जाना बनता रहा। एक बार मैं आश्रम में आया और तत्कालीन मन्त्री द्वारा आश्रम में स्थान न होने के कारण मुझे नकार दिया था और मैं कार्यालय के बाहर असमंजस में खड़ा था कि सामने से आ0 रामप्रसाद जी आते दिखाई दिए मुझे उन्हें देख आशा बंधी। उन्होंने मेरे कार्यालय के बाहर खड़े होने का कारण पूछा। मैंने उन्हें वास्तविकता से अवगत कराया। मेरी बात सुन वह कार्यालय में गए। न जाने उन्होंने मन्त्री जी से क्या कहा? मन्त्री जी भी उनके साथ आए और मुझे अन्दर ले गए। मुझे कहा गया कि अपना सामान कार्यालय में रख दीजिए, सत्संग हो रहा है, सत्संग सुनिए और बाद में आपको कुटिया मिल जायेगी। और मुझे कुटिया मिल गई तो यह उनकी सज्जनता का जीता जागता उदाहरण है। उनसे प्रथम भेंट मेरी दिल्ली में राजोरी गार्डन में एक परिवार में हुई थी वहाँ उन्होंने अपना एक अनौपचारिक प्रवचन भी दिया था। उसको मैंने टेप कर लिया था। उससे मैं बहुत प्रभावित हुआ था। उस टेप को मैंने कई बार सुना और उनका प्रशंसक बन गया। अक्सर उनसे दिल्ली में भेंट होती रहती थी। वह अक्सर अपने भाषणों में "वानप्रस्थाश्रम" की प्रशंसा किया करते थे और आश्रम में आने के लिए सबको आमंत्रित किया करते थे किन्तु साथ ही अगाह कर दिया करते थे कि आश्रम के सत्संग व शान्त वातावरण का आनन्द लेना चाहते हो तो वहाँ के मच्छरों और पतली दाल (उन दिनों दाल पतली बनती होगी) को सहन करना होगा। आश्रम से उनको बहुत स्नेह था और यदा–कदा इसको और उन्नत करने के लिए परामर्श देते रहते थे।

विड़म्बना है कि नियति ने उन्हें हमसे छीन लिया है पर हमारे हृदय और मस्तिष्क से उनकी स्मृति नहीं मिट पायेगी और वह सदा हमारे हृदय मंच पर आसीन रहेंगे।

– डॉ0 कृष्णदेव
प्रधान– आर्य वानप्रस्थाश्रम,
हरिद्वार

एक दीप जो कभी बुझ नहीं सकता

वेद में कहा गया है "ऋषिः स यो मनुर्हितः" (ऋग् 10/26/5), ऋषि वह है जो मानव मात्र का हितकारी हो। इस दृष्टि से आचार्य जी के प्रति बडी श्रद्धा से कहा जा सकता है कि वह एक ऋषि थे जिन्होंने केवल स्वामी दयानन्द द्वारा दर्शाये मार्ग पर स्वयं चलकर सत्य, सनातन, वेद और प्राचीन आर्ष ग्रन्थों के आधार पर भूले–भटके और मत मतान्तरों के जाल में भटके मानवों को सत्य धर्म और न्याय का मार्ग दोहराया बल्कि अपनी लेखनी और प्रवचनों के माध्यम से आने वाली पीढ़ियों के लिये सही चिन्तन एवं मनन के लिये दिशा प्रदान की।

धन्य हैं पिता श्री गंगा बिशन जी जिन्होंने ऐसे कर्मठ आर्य विद्वान, चिंतक, दार्शनिक एवं महान आत्मा को जन्म दिया, जिन्होंने अपना सर्वस्व जीवन समाज–सेवा और वेद प्रचार में व्यतीत किया। इस सपूत को पैदा करनी वाली माता के प्रति नतमस्तक होना प्रत्येक आर्य का कर्त्तव्य बन जाता है।

आचार्य जी ने अपना जीवन एक कपड़े के व्यापारी बनकर आरम्भ किया। परन्तु ईश्वरीय कृपा उन्हें झंझोड़ रही थी कि रामप्रसाद तुम तो बहुत बड़े कार्य के लिये पैदा हुए हो। तुमने ऋषि दयानन्द का कर्जा उतारना है, तुमने भौतिक रूप में लक्ष्मी से घर को नहीं भरना अपितु आध्यात्मिक रूप से ज्ञान के प्रकाश से आर्य जाति के भविष्य को उज्ज्वल करना है। आत्मा की इस आवाज को उन्होंने सुना और वेदालंकार बनकर दयानन्द उपदेशक महाविद्यालय यमुनानगर में अध्यापन कार्य शुरु किया। गुरुकुल झज्झर में कुछ समय व्यतीत करने के पश्चात गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के लिये अपना जीवन ही सौंप दिया। वेद विभाग के अध्यक्ष बने, उपकुलपति बने और फिर कुलपति बनकर इस उपाधि को सुशोभित किया।

आचार्य जी ने अपने जीवन काल में 60 पुस्तकें लिखीं। उनकी शैली सरल और रोचक हुआ करती थी ताकि साधारण से साधारण व्यक्ति तक वेद की पवित्र वाणी पहुँच सके। अपनी सुपुत्री श्रद्धा के नाम से श्रद्धा साहित्य प्रकाशन की स्थापना की और सभी

साहित्य श्रद्धा प्रकाशन के माध्यम से जन–साधारण तक पहुँचता था। आचार्य जी के लेख प्रायः आर्य जगत् की हर पत्रिका में छपते थे। इसके अतिरिक्त कोई बीस के करीब उनकी ऑडियो और वीडियो कैसेट्स बनी हैं जो कि धर्म में रुचि रखने वाले व्यक्ति बड़े चाव से सुनते और देखते हैं।

कौन सा ऐसा प्रदेश है? कौन सी ऐसी आर्य समाज है? जहाँ आचार्य जी प्रचार के लिए न गए हों। और कौन सी ऐसी आर्य संस्था है? जहाँ आचार्य जी को सम्मानित न किया गया हो। उन्हें सम्मानित करने में संस्थाऐं अपना सौभाग्य समझती थीं।

आचार्य जी का शुभ विवाह सौभाग्यवती देवी, प्रति के समान मृदुभाषी, विदुषी श्रीमती सरोज आर्य जी से हुआ। विवाह के पश्चात् दाम्पत्य जीवन में और निखार आया और पति–पत्नी दोनों ही वेद प्रचार में जुट गए।

मृत्यु के क्रूर हाथों ने आचार्य जी को 1–10–98 को आर्य जगत से छीन लिया। एक बहुत बड़ी क्षति पहुँची उनके अधूरे कार्य को। परन्तु उनकी जीवन संगिनी जिनको प्रत्येक व्यक्ति श्रद्धा से बहनजी कहते हैं अर्थात बहन सरोज जी ने इस अधूरे कार्य को अग्रसर करने का भार अपने सिर पर लिया और वह अब श्रद्धा साहित्य प्रकाशन के अध्यक्ष के रूप में उनकी लिखी पुस्तकों को प्रकाशित कर रही हैं।

इसमें किञ्चित भी संदेह नहीं कि आचार्य जी आज हमारे मध्य में नहीं। परन्तु जरा विश्लेषण करें तो हम बड़े गर्व से कह सकते हैं कि आचार्य जी अपने गुण, कर्म और स्वभाव के कारण कभी नहीं मर सकते। शरीर की मृत्यु, मृत्यु नहीं। वह सदा अमर रहेंगे। ज्ञान के प्रकाश का वह एक ऐसा दीप थे जो कभी बुझ नहीं सकता जो सदा जलता रहेगा ओर मानव जाति के लिए पथ–प्रदर्शक और प्रेरणास्रोत बना रहेगा।

– आनन्द अभिलाषी
1/1, आर्य वानप्रस्थाश्रम,
ज्वालापुर

मेरे निरूक्त गुरु : आचार्य रामप्रसाद जी वेदालंकार

गुरुकुल कालवा में व्याकरण महाभाष्य का अध्ययन करने के उपरान्त मैंने निरूक्त पढ़ने की योजना बनाई। मन में ऐसी इच्छा थी कि किसी त्यागी, तपस्वी, विरक्त, षायवस्त्रधारी विद्वान् के चरणों में बैठकर ही वैदिक व्याकरण के इस अनुपम ग्रन्थ निरूक्त का अध्ययन किया जाये। एक मास तक देश के विभिन्न संस्थानों, आश्रमों, गुरुकुलों का प्रत्यक्ष अवलोकन करने के उपरान्त भी अनुकूल वातावरण, व्यवस्था–प्रबन्ध, जलवायु और विद्वान से युक्त स्थान की उपलब्धि नहीं हुई। अन्ततः अनेक शुभेच्छुकों के द्वारा प्रस्तावित गुरुकुल कांगड़ी के प्रो– वाइस चान्सलर, वेद विभाग के अध्यक्ष आचार्य रामप्रसाद जी से पढ़ने की इच्छा बलवती हुई। अतः हरिद्वार के पास ज्वालापुर में स्थित 'आर्य वानप्रस्थाश्रम' के परिसर के पास में ही आचार्य रामप्रसाद जी के घर में जाकर उनसे भेंट की, और निरूक्त पढ़ने की अपनी इच्छा व्यक्त की। आचार्य जी ने कहा "गुरुकुल, प्रचार और लेखन आदि के कार्य अधिक होने के कारण मैं निरन्तर तो आपको निरूक्त का अध्यापन नहीं करा सकता, व्यवधान से युक्त जब जब अवसर मिलेगा, पढ़ाता रहूँगा।" लगभग जनवरी 81 में मैं उनके पास घर पर ही निरूक्त पढ़ने के उद्देश्य से गुरुकुल कालवा से ज्वालापुर वानप्रस्थाश्रम में आ गया। लगभग 11 मास के काल में उन्होंने मुझे स्वामी ब्रह्ममुनि द्वारा भाष्य किया हुआ 'निरूक्त सम्मर्श' नामक विशालकाय ग्रन्थ जो संस्कृत भाषा में ही लिखा हुआ है, पढ़ा दिया। मैंने इसकी लिखित परीक्षाएँ भी दीं। लगभग दिसम्बर 81 में मैं स्वामी सत्यपति जी के साथ दर्शनों को पढ़ने के उद्देश्य से आन्ध्रप्रदेश में स्थित गुरुकुल वडलूर चला गया। आचार्य रामप्रसाद जी एक सरल, सौम्य, त्यागी, तपस्वी, मितव्ययी, उदार हृदय वाले साधु पुरुष थे। उनका विशेष गुण मैंने देखा कि 1 मिनट का समय भी वे व्यर्थ नहीं खोते थे। उनके स्वभाव में अत्यन्त विनम्रता और प्रेम झलकता था। ब्रह्मचारियों से उनका बहुत अधिक लगाव था। अनेक ब्रह्मचारियों को उन्होंने स्वयं की ओर से प्रेरणा व सहायता–सहयोग देकर वेदाध्ययन की ओर प्रवृत्त किया। सहनशक्ति उनमें बहुत अधिक मात्रा में देखने को मिली। अपने प्रति किसी के द्वारा विश्वासघात, छल–कपट, अन्याय, पक्षपात, आरोप, हानि आदि कर दिये

जाने पर भी योगदर्शन की बताई विधि–प्रतिपक्ष भावना को उभारकर ऐसे अहितकर्त्ता के प्रति भी हमेशा मन में सद्भावना उत्पन्न कर लिया करते थे। ऐसा मैंने अनेक बार 11 मास के काल में उनके सानिध्य में रहते हुए प्रत्यक्ष देखा। वे एक उदारवादी संत स्वभाव वाले विशुद्ध ब्राह्मण थे, ऐसा मैं कह सकता हूँ। निरूक्त में आये हुए वैदिक क्लिष्ट शब्दों के निर्वचनों और व्याख्याओं के साथ–साथ जीवन–पथ पर पदे–पदे आने वाली व्यवहारिक बाधाओं, कष्टों, आपत्तियों, विरोधों का आध्यात्मिक समाधान किस प्रकार किया जाना चाहिये यह भी जाना और सीखा। गुरुकुल चलाने और वानप्रस्थाश्रम के विषय में अनेक बार उन्होंने पत्र लिख कर सम्मतियाँ, सुझाव, और निर्देश दिये। आग्रह करने पर एक बार आप सपत्नीक दर्शन योग महाविद्यालय में आये और अपना आशीर्वाद प्रदान किया। मेरा उनसे पत्रव्यवहार चलता रहता था और जब भी मैं हरिद्वार जाता सबसे पहले उन्हीं के पास जाकर आशीर्वाद लेता था। मैंने उनके जीवन से, उनके प्रवचनों से, उनकी पुस्तकों से, उनकी शिक्षा से बहुत कुछ सीखा है और उऋण होने का प्रयास कर रहा हूँ। मैं अपने को सौभाग्यशाली मानता हूँ कि ऐसे उदात्त विचारों वाले आचार्य के सान्निध्य में 11 मास तक रहने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

–ज्ञानेश्वरार्य
दर्शन योग महाविद्यालय
आर्य वन रोजड पो0 सागपुर
जिला साबरकांठा, गुजरात
पिन– 383 307

संस्मरणिका

पूज्य "रामप्रसाद वेदालंकार जी" जिन्हें "मैं" आदर से पिताजी कहती थी, मेरे लिए अविस्मरणीय हैं। उनसे प्रथम साक्षात्कार जिस दिन हुआ था वह दिन मुझे स्मरण है। व्यास आश्रम के "ब्रह्मानन्द पद" को सुशोभित करते हुए मैंने उनके दर्शन किये थे। प्रथम साक्षात्कार में ही वार्तालाप के प्रसंग में उनकी सद्भावना स्नेह तथा आन्तरिकता को मैंने अनुभव किया था। मेरी मातृभाषा हिन्दी न होने के कारण मैंने उनसे संस्कृत में ही सम्भाषण किया था। पितृवत् स्नेह की गंगा बहाते हुए उन्होंने मेरा मार्गदर्शन किया था। सचमुच वे प्रेम की साक्षात् मूर्ति थे। वेद उनके जीवन में उतरा था। वे हर बार मुझे कहते, यही आशीर्वाद देते थे कि तुम उन्नति के चरम सौपान पर अधिष्ठित हो और मैं यही चाहता हूँ। जब उनको हमारे गुरुकुल की सूचना मिली एवं ब्रह्मचारिणियों से मिले तब वह बहुत ही प्रसन्न हुए थे। तब उन्होंने मुझे कहा था– भगवान करे तुम्हारी ये फुलवारी सदा खिलती रहे। हमारे द्रोणस्थली कन्या गुरुकुल के वार्षिकोत्सव पर प्रवचन देते हुए उन्होंने कहा– अन्नपूर्णा बेटी निर्माण के कार्य में व्यस्त हैं और मुझे विश्वास है कि यह गुरुकुल समुन्नत होगा क्योंकि इसके पीछे बेटी अन्नपूर्णा का शुभ संकल्प है। उन्होंने यह कहते हुए मुझे हृदय से आशीर्वाद दिया था। एक बात मैं उनकी भुला नहीं पाती– वे जब भी मिलते थे यही कहते थे कि बोलो बेटी तुम्हें क्या दूँ? मन करता है तुम्हें पता नहीं क्या–क्या दे दूँ। ईश्वर तुझे सारा सुख प्रदान करे। हरिद्वार में जब किसी कार्यवश रहना होता तो माँजी व पिताजी मुझे अपने घर पर ही रखते थे। माता सरोज जी मुझे अपने पास देखकर बहुत खुशी अनुभव करती थी, अभी भी करती है। उनके घर पर रहकर मैं और पिताजी अक्सर आध्यात्मिक चर्चा ही करते थे। वेदों के मन्त्रों की ही ज्यादातर मुझसे चर्चा करते थे। और अनेक बार मुझे वेदमन्त्रों के ऊपर नया चिन्तन बताते थे। उनकी एक और बात मुझे स्मरण हो रही है– एक बार उन्होंने मुझे कहा था कि मुझे खुशी है कि मेरी बेटी एक बहुत अच्छे स्थान पर आ गई है। और साथ ही गुप्ताजी जैसे महान व्यक्ति का साया जो बाप बनकर ढाल के रूप में इनके साथ हैं। उनकी सादगी और सरलता की तो सीमा ही नहीं थी। एक बार नरेला गुरुकुल के आर्य वीरांगना शिविर के आयोजन पर वे रात देर से

पहुँचे। उस समय मैं नरेला गुरुकुल में आचार्या पद पर थी। उन्होंने अपने आने की सूचना तक भी किसी को नहीं दी। वे इतने बड़े होते हुए भी बिना बिस्तर दरी पर जमीन पर ही सो गये। सुबह जब मुझे यह मालूम हुआ तो मुझे यह सुनकर बहुत दुख हुआ। मैंने उनसे ऐसा करने का कारण पूछा तो उन्होंने बड़े ही सरल एवं सहजपूर्ण ढंग से उत्तर देते हुए कहा– बेटी इतनी रात को असमय किसी को कष्ट देना अच्छा नहीं समझा। इसी से यह ज्ञात होता है कि वे कितने सरल, सहृदय एवं शान्तचित्त व्यक्ति थे। ऐसे सभी को अपना समझने वाला, जात–प्रान्त के सम्बन्ध से ऊपर उठकर सबको प्रेम करने वाला तथा अपने सुमधुर प्रवचन वेद विद्या तथा भावुकता से सबके हृदय मन मन्दिर में घर करने वाला वह मनीषी आज हमारे बीच में नहीं है। परन्तु स्मृति में वह जीवित है। किसी संस्कृत कवि ने ठीक ही कहा है– कीर्तिर्यस्य सः जीवति" जिसका यश है वह अमर है। वह मरकर भी मरता नहीं। उनका पार्थिव शरीर नहीं है परन्तु उनकी दी हुई प्रेरणा मेरे जीवन के लिए सर्वदा मार्ग प्रस्तुत करती रहेगी। वे मेरे ही नहीं मेरी जैसी अनेकों के प्रेरणा के स्त्रोत हैं इसमें कोई सन्देह नहीं है।

– डॉ0 अन्नपूर्णा
आचार्या कन्या गुरुकुल,
देहरादून।

परम श्रद्धेय आचार्य जी

आचार्य रामप्रसाद जी वेदालंकार के सम्बन्ध में कुछ भी लिखना सूरज को दीपक दिखाने की भांति है। पूज्य आचार्य जी से मेरा संबंध वस्तुतः मेरे पिताजी डा. महावीर जी के माध्यम से ही हुआ था। जीवन में प्रत्यक्ष रूप से जिन लोगों ने मुझे सर्वाधिक प्रभावित किया, उनमें से आचार्य श्री प्रमुखतम हैं। उनका क्षेत्र वेद–वेदांग था, जबकि मैं विज्ञान–यांत्रिकी–प्रबंधन आदि का विद्यार्थी रहा हूँ। प्रत्यक्ष रूप से मैं कभी–भी उनके प्रवचन का लाभ भी न उठाने वाला अभागा हूँ, किन्तु अत्यन्त आत्मीयता भरे वेद–सदन में जाकर मैं बीच–बीच में उनके दर्शन करके ही अपने–आपको धन्य समझ लेता था।

ईश्वर की सत्ता के ऊपर आपके इस भौतिकतावादी युग में भी कोई अटूट विश्वास रख सकता है, वे इसके प्रतिमान थे। इस संदर्भ में अनेको प्रसंग उद्धृत किये जा सकते हैं। बड़े से बड़े कष्ट को भी ईश्वरीय विश्वास से सहने की जो शक्ति आचार्य जी में थी, वह आम इंसान के बाहर की बात है। जीवन की भौतिक प्रगति के लिए जहाँ बड़े से बड़े विद्वान भी चाटुकारिता तथा अन्य तुच्छ हथकंडों को अपनाने का छोटा सा भी मौका नहीं चूकते, वहीं आचार्य जी कभी भी किसी भी बड़े से बड़े काम के लिए केवल परमपिता की सत्ता पर ही अटूट विश्वास रखते थे। आचार्य जी के चरणों में बैठकर बड़े से बड़े कष्ट को सहने की जो शक्ति मिलती थी, उसे मात्र अनुभव करने वाला ही समझ सकता है।

आचार्य जी जब सम्पूर्ण भारत में वैदिक पताका लिए स्वामी दयानन्द के बताए मार्ग को पुष्ट कर रहे थे, हृदयाघात ने उनकी शक्ति क्षीण करने का प्रयास किया, किन्तु चिकित्सकों के मना करने पर भी अपने आत्म बल से उन्होंने वेद के प्रचार प्रसार का अनवरत कार्य जारी रखा। इसी वेद माता की सेवा करते–करते पूज्य आचार्य जी हम सबको बिलखता हुआ छोड़ करके विजयादशमी के दिन इहलोक से चले गये।

आइए! यदि हम सब इस महामानव को सच्ची श्रद्धांजलि देना चाहते हैं, तो यह प्रण करें, कि आचार्य जी द्वारा बताए गये प्रेम के मार्ग पर चलेंगे तथा ईश्वर की सत्ता पर अपने विश्वास को नहीं डिगने देंगे। पूज्य आचार्य जी के शब्दों में, "प्रभु सब ठीक करेगा" हमें इन्हीं शब्दों पर अपना विश्वास मजबूत करना है।

– रजत अग्रवाल
इंजीनियरिंग कॉलेज ऑफ रूड़की

आचार्यश्री के जन्म दिवस पर श्रद्धा सुमन

स्वर्गीय आचार्य जी की धर्म परायणा पत्नी श्रीमती सरोज जी आर्या ने पूज्य आचार्य जी का जन्म दिवस मनाने का निश्चय किया जो कि एक सराहनीय कदम है। ऐसे महापुरुषों की जयन्ती मनाने से अनेकों श्रद्धालुओं को उनके जीवनों से प्रेरणा मिलती है। आचार्य जी का सम्पूर्ण जीवन एक सुगन्धित वाटिका की भांति सबके मनों को आकर्षित करने वाला था। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में इनकी सेवायें सदा स्मरणीय रहेंगी।

गृहस्थ जीवन भी इनका अपने ही ढंग का निराला था। अतिथि सेवा में भी दोनों ने मिलकर अपने उत्तरदायित्वों का निर्णय बड़ी सुन्दरता से किया। आचार्य जी की वाणी में जादू था। जहाँ वह वेद के विद्वान थे वहाँ वेद के कुशल प्रवक्ता भी थे। वेद मन्त्रों की व्याख्या करते–करते वह इतने भाव विभोर हो जाते थे कि स्वतः ही उनकी आँखों में अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती थी। एक–एक शब्द की व्याख्या करते हुए घंटों बोलते रहते थे। सुनने वाले भी बड़ी श्रद्धा से उनके प्रवचनों को सुनते थे। वह केवल कुशल प्रवक्ता ही नहीं थे लेखनी के भी धनी थे। उनकी लेखनी अन्त समय तक नहीं रुकी। अनेकों छोटी बड़ी पुस्तकें लिखकर उन्होंने समाज का बड़ा उपकार किया। आज वह हमारे मध्य में नहीं हैं। परन्तु उनकी मधुरस्मृति हमारे हृदय पटल पर सदैव बनी रहेगी।

सरल स्वभाव, आकर्षक व्यक्तित्व, मधुर भाषी, वेद के प्रति अगाध श्रद्धा, यज्ञ के प्रति समर्पण की भावना उन्हें विरासत में मिली हुई थी। यही कारण है फि वह अपने सद्‌गुणों के कारण सदैव स्मरणीय रहेंगे। व्यास आश्रम की पूज्या माता भाग्यवंती जी ने सदैव उन्हें प्रिय पुत्र की भांति स्नेह दिया। उन्होंने भी माता जी की आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए व्यास आश्रम में निरन्तर 32 वर्षों तक वेद परायण यज्ञों में ब्रह्मा के पद को सुशोभित किया इसके साथ ही समय–समय पर आश्रम की सहायता में भी अग्रणी रहे। 18 मार्च 1981 को माता जी का अन्तिम संस्कार भी आचार्य जी के द्वारा हुआ। माता जी की अन्तिम इच्छा भी इनके द्वारा ही पूर्ण हुई। आचार्य जी ने अन्तिम समय तक अपने उत्तरदायित्वों का यथावत पालन किया। ऐसे महानुभावों की स्मृति सदैव बनी रहती है। व्यास आश्रम के सभी कार्यकर्ता एवं अधिकारीगण उनके सहयोग के लिये सदा ऋणी रहेंगे।

हम प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि आचार्य जी के आदर्श जीवन से प्रेरणा लेकर हम अपने जीवन को सुरभित बनायें। प्रभु हमें शक्ति दे हम ऐसी महान विभूतियों की जयन्तियाँ मना कर सदा प्रेरणा लेते रहें।

– उनकी बहिनें– विमला, शान्ति
व्यास आश्रम, सप्तसरोवर, हरिद्वार

कुछ संस्मरण

इस समाज की सदस्या श्रीमती सरोज रहेजा से दुःखद सूचना प्राप्त हुई कि विद्वद्वर आचार्य रामप्रसाद वेदालङ्कार 2 अक्टूबर, 1998 को यशःशेष हो गये। मेरा आचार्य जी से 12 वर्ष पुराना परिचय था। नवम्बर, 1986 में आर्य समाज नगीना, बिजनौर के उत्सव पर आचार्य जी और मैं दोनों ही प्रवचन हेतु आमन्त्रित थे। मैंने उनसे कहा, "मैंने अपने अनुज को बी.ए. कराकर आचार्य प्रद्युम्न नैष्ठिक के गुरुकुल में व्याकरण पढ़ने भेजा है। मैं उसे वेद का विद्वान् बनाना चाहता हूँ। क्या 'अमुक' स्थान पर भेजना उचित होगा?" उन्होंने कहा, "यदि उसे छात्रवृत्ति दिलाना चाहते हो तो उक्त स्थान पर भिजवा दो, मैं छात्रवृत्ति दिलवा दूँगा। यदि विद्वान् बनाना चाहते हो तो जहाँ है वहीं रहने दो।"

आचार्य प्रद्युम्न नैष्ठिक के गुरुकुल में मई/जून, 1987 में आचार्य जी और मैं पुनः साथ–साथ आमन्त्रित हुए। मैंने पूछा, "मैं प्रतिदिन यज्ञ करता हूँ किन्तु कोई मुझसे यह पूछता है कि क्या प्रतिदिन यज्ञ करते हो, तो मेरी वाणी से 'हाँ' नहीं निकलती, ऐसा क्यों होता है?" उन्होंने उत्तर दिया, "जो ईश्वर के महान् यज्ञ को देखता एवं अनुभव करता रहता है उसे अपना यज्ञ बहुत छोटा लगता है, इस कारण स्वमुख से उसकी स्वीकारोक्ति नहीं होती।"

लखनऊ में उन्हें ज्ञात हुआ कि कुछ प्रभावशाली लोग मुझे गुट–दृष्टि से देखते हैं तो सत्परामर्श देते हुए बोले– "आपका युवावस्था में ईश्वर और समाज की ओर पर्याप्त रुझान है, इसे बनाये रखना। लोग आपको बेचैन करके समाज छुड़वाना चाहते हैं किन्तु आप मस्तिष्क में वेद एवं हृदय में ईश्वर को बिठाये हुए एक साइलेण्ट वर्कर की भाँति चलते रहना।"

अगस्त–सितम्बर, 1998 में मैं डेढ़ मास के लिए वर्ल्ड एसोसियेशन फॉर वैदिक स्टडीज़, यू.एस.ए. के आमन्त्रण पर लॉस एंजिल्स गया था। वहाँ एक कार्यक्रम में एक सज्जन मिले और बोले, "मेरे मामा आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार हैं। उन्हें हृदय का रोग है। डाक्टरों के परामर्श पर वे यह कहते हैं कि डाक्टरों का डाक्टर तो ईश्वर है। मुझे उसी पर विश्वास है।

जितने दिन संसार में रखेगा, ठीक और पर्याप्त वही होगा।" मैं 26 सितम्बर को अमेरिका से लौटा। अगली बार आचार्य जी मिलते तो उक्त बात उन्हें सुनाता, किन्तु वे ही अपनी बात सुनवा गये।

वेदालंकार जी का गमन–समय ऐसा रहा कि अनेक व्यक्ति (आप सहित) यह सोच सकते हैं कि वर्षा न होती, बिजली होती, रात्रि न होती, दिन होता अथवा चिकित्सक होता तो यह न होता। किन्तु मृत्यु पर तो सदैव ही कुछ–न–कुछ पश्चात्ताप रहता है। आप उपस्थित थीं, यह दुःखद सन्तोष ही शान्ति–करण है।

आचार्य जी ने अपना जीवन विद्या के दान–आदान, आत्मा की उन्नति, समाज की सेवा एवं ईश्वर के ध्यान में लगाया। ये उत्तम जीवन के लक्षण हैं। वे ऐसे कर्मों में लगे रहे जिनके लिए कहा गया है **'न कर्म लिप्यते नरे।'** उक्त कर्मों का कर्त्ता वह जीवात्मा जो हमारी आँखों को दिखने वाले पर्दे से हट गया है, निश्चित रूप से हम साधारण जनों से उच्चतर स्थिति में पहुँच गया है। ईश्वर सबका कल्याण करे! विद्वान् का भी, प्रेमियों का भी, बन्धुओं का भी और सन्तति का भी।

– रूपचन्द दीपक
प्रधान– आर्य समाज श्रृंगार नगर
आलमबाग, लखनऊ – 226 005

'राम' एक अनूठा व्यक्तित्व

राम जो सबके रोम–रोम में रम रहा था
राम जो चुपचाप जैसे प्यार से कुछ कह रहा था
न जाने कितने हृदयों को प्रफुल्लित कर रहा था
अचानक न जाने कहाँ चला गया
हम सबको छोड़कर
हम सबसे मुख मोड़कर
राम इन्सान नहीं भगवान था
पत्नी को, बच्चों को भाई और बहनों को
ब्रह्मचारी और विद्वानों को, निर्धन और धनियों का
उन पर बड़ा मान था क्योंकि करता वह
सबका बहुत–बहुत सम्मान था।
अचानक न जाने कहाँ चला गया
हम सबको छोड़कर
हम सबसे मुख मोड़कर
राम मनुष्य नहीं देवता था
जो कुछ भी उसके पास था बस देता ही देता था
दोनों हाथों से भर–भर कर देता था
तन–मन–धन कुछ भी न बचाया
सर्वस्व दे डाला बड़े सहज भाव से
हम सब देखते ही रह गये
हे राम तुम कहाँ चले गये
हम सबको छोड़कर
सबसे मुख मोड़कर
राम का चेहरा सामान्य नहीं अद्भुत था
नेत्रों से स्नेह तो वाणी से अमृत बरसता था
रोम–रोम ईश्वर के प्रति आवर्जित होता जाता था
ज्ञान की धारायें बहती थीं रोम–रोम रोमांचित होता था
देवता के अश्रु बहते थे जनता के अश्रु बहते थे

दिव्यता से युक्त मेरा भाई राम न जाने कहाँ चला गया
हम सबको छोड़कर
हम सबसे मुख मोड़कर

प्रेम की प्रतिमूर्ति था, प्रेम का सागर था वह
लेते–लेते चाहे कोई थक जाय पर देते–देते नहीं थकता था वह
उसके दर्शनों में परमात्मा की झलक मिलती थी
एक नहीं वो हजारों लाखों से प्यार करता था
उसके देने में देवत्व था उसके लेने में देवत्व था

ऐसा प्यारा देवता अचानक न जाने कहाँ चला गया
हम सबको छोड़कर
हम सबसे मुख मोड़कर

काम नहीं था, क्रोध नहीं था, लोभ नहीं था, मोह नहीं था
द्वेष नहीं अहंकार नहीं था
प्रभु प्रेम में मगन, केवल वेद की लगन
वेद राम मय और राम वेद मय हो गया था

ऐसा वेद का दीवाना मेरा भाई राम
अचानक न जाने कहाँ चला गया
हम सबको छोड़कर
हम सबसे मुख मोड़कर

क्या कहूँ विधाता का क्या विधान है
प्रभु ने ऐसा क्यों किया इससे हम सब अनजान हैं
प्रभु ने ही हमको महामानव दिया उदाहरण के रूप में
फिर क्रूरता से छीन लिया ये कैसा दान है?

कहीं हमारे ही कर्मों में कमी थी जो अचानक
सबको रोता बिलखता छोड़कर
मेरा भाई राम चला गया
सदा के लिये हमसे मुख मोड़कर

– श्रीमती सरला चौधरी,
स्वरूप नगर,
कानपुर।

आचार्यश्री की सारस्वत साधना

गुरुकुल कांगड़ी की प्रशंसनीय आचार्य परम्परा में वेदरत्न स्वर्गीय पं0 रामप्रसाद वेदालंकार का अनुपम स्थान इसलिए है क्योंकि वे अहर्निश वेदों के चिन्तन और प्रचार प्रसार में संलग्न रहे। वेदानुकूल यज्ञीय जीवन बनाकर लोगों के प्रेरणा–श्रोत रहे। आचार्य रामप्रसाद जी ने वैदिक साहित्य का अति सरल, सुबोध प्रकाशन और प्रसार कर मानव जाति का महान् उपकार किया है। उन्होंने 'वैदिक पुष्पाञ्जलि' आदि लगभग 56 पुस्तकों, अनेक लेखों एवं ऑडियो–विडीयो कैसेट आदि को वेद सागर का मन्थन कर नवनीत के रूप में जन सामान्य के सामने प्रस्तुत किया है। वे रात–दिन वेद प्रचार में ही संलग्न रहते थे। सोते–जागते, खाते–पीते, चलते–फिरते, बोलते–चालते हर समय उनके व्यक्तित्व से वैदिक शिक्षाओं का कोई न कोई सा रूप अवश्य परिलक्षित होता था। एतदर्थ उन्होंने न केवल अपना स्वतंत्र 'श्रद्धा साहित्य प्रकाशन' खोला अपितु, देश–विदेशों में जाकर भी वेदों का डंका बजाया। वे जहाँ संस्कृत, हिन्दी, पंजाबी, अंग्रेजी आदि भाषाओं का ज्ञान रखते थे वहीं उर्दू भाषा में भी लिख एवं पढ़ सकते थे। आपकी कईं पुस्तकों का संस्कृत एवं अंग्रेजी में कईं विद्वानों ने प्रकाशन भी किया है। यह इस बात का प्रतीक है कि आचार्यश्री की रचनाऐं कितनी लोकप्रिय हैं। 'अनन्त की ओर' नामक उनकी कृति के तीन English Translation किये गये। जिनमें से एक Quest for The Infinite नाम से छपा। मोगा (पंजाब) निवासी श्री सन्तराम शास्त्री ने भी आचार्य जी द्वारा कृत अनेक मंत्रों की व्याख्याओं का संस्कृत में पद्यात्मक अनुवाद प्रस्तुत किया है।

उन्होंने गुरुकुल कांगड़ी में वेद सेवा करने से पहले दयानन्दोपदेशक महाविद्यालय यमुनानगर और गुरुकुल झज्जर हरियाणा में अध्यापन कार्य किया था। गुरुकुल विश्वविद्यालय के माननीय सर्वोच्च अधिकारियों ने उनकी वेद के प्रति इस प्रकार निष्ठा एवं लगन को देखकर ही उन्हें गुरुकुल का आचार्य एवं उपकुलपति नियुक्त किया था। कुछ समय के लिए वे विश्वविद्यालय के कुलपति भी रहे। इन सब प्रशासनिक जिम्मेदारियों के होते हुए भी उन्होंने वेद विभाग के अध्यक्ष एवं प्रोफेसर के रूप में अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के द्वारा दिखाये मार्ग पर चलते हुए कभी भी छात्रों के अध्ययन में व्यवधान नहीं आने दिया। आचार्यश्री ने

समय—समय पर गुरुकुल की प्रतिष्ठा को अनेक नाजुक परिस्थितियों में बचाया है। ऐसे कई उदाहरण मेरे स्मृति पटल पर बार—बार यह लेख लिखते हुए आ रहे हैं, परन्तु विस्तारमय से हम उनकी यहाँ चर्चा नहीं करना चाहते।

यह कथन सत्य है कि इस धरा धाम में समय—समय पर निरतिशय लोकोत्तर गुणगान—विभूषित दिव्य विभूतियों का पावन अवतरण होता रहता है। परमादरणीय वेद रत्न आचार्यप्रवर रामप्रसाद जी उन्हीं विभूतियों में से हैं जिनमें परमेश्वर प्रदत्त प्रातिस्विक अप्रतिम प्रतिभा, वेद प्रचार—प्रसार—नैपुणी, भगवद्—भक्ति और विश्वास की विशिष्टता, सदाचार समर्पित सज्जनता, सत्यसन्धता, विद्वज्जन—प्रियता, राष्ट्र सेवा की तन्मयता इत्यादि सन्तजन सद्गुण समाज मानो अन्यत्र सुख निवास न पाकर सानन्द विश्राम कर रहा है। मुझे ऐसे सज्जन साधु पुरुष के आचार्यत्व में कार्य करने का सुअवसर मिला। वेद प्रचारार्थ जब कभी हरिद्वार से बाहर जाने का अवसर मिला तो वहाँ भी अधिकांश स्थानों पर आचार्य जी की यशोगाथा कर्णगोचरी करने का सौभाग्य मिला। उनकी सज्जनता के बारे में दूसरों से ही नहीं सुना अपितु स्वयं भी अनुभव किया है। यहाँ हम केवल उनकी सारस्वत साधना का ही वर्णन करना चाहते हैं। क्योंकि उनके व्यक्तित्व सम्बन्धी गुणों का बखान तो अन्य महानुभाव भी करेंगे ही। यहाँ अब मैं आचार्यश्री के रचना सर्ग के चतुर चितेरे के स्वरूप का दर्शन करता हुआ केवल कृतित्व (साहित्यिक—साधना) के विषय में ही कुछ लिखने का साहस कर रहा हूँ। जैसा हम पीछे लिख चुके हैं कि अब तक आचार्य जी की जगत्छेयोविधापिनी लेखनी से 56 प्रसून प्रकाशित हो चुके हैं।

आचार्यप्रवर का अधिकांश साहित्य वेद, दर्शन, उपनिषद् एवं कर्मकाण्ड आदि से सम्बन्धित है। आचार्यश्री का यह ध्येय था कि केनापिप्रकारेण वेद का प्रचार घर—घर में होना चाहिए। वैदिक शिक्षाओं के अभाव में भारत वर्ष में नाना प्रकार के पाखण्ड फैल गये हैं, ऐसा वे अच्छी तरह समझते थे। अतएव उन्होंने अवच्छेदक—अवच्छिन्न वाली जनसामान्य की उन्नति में बाधक और देव भाषा के पतन में एक प्रमुख कारण रही क्लिष्ट साहित्यिक भाषा को न अपनाकर सरल, सर्वजनग्राह्य आम बोलचाल की भाषा में आज के दैनिक जीवन में घटने वाली घटनाओं के आधार पर कथानकों के द्वारा अपने विचारों को व्यक्त किया। यही कारण है कि आर्य समाज के हर मंच पर उनकी माँग रहती थी। काश! आज के प्रचारक, वैदिक मिशनरी दयानन्दीय वैदिक विचारों को संसार में फैलाने के लिए आचार्यश्री की इस विशेषता को समझ सकते तो शायद ही वे यह आलोचना न करते कि आचार्यप्रवर की रचनाओं में

कहानी, किस्सों के अलावा कुछ भी नहीं। ऐसा नहीं है कि आचार्य जी ने शोधपरक न लिखा हो। जहाँ आचार्यश्री की दूरदृष्टि वेदों के प्रचार में थी वहीं शोध की गहराईयों तक भी पहुंची हुई थी। ऐसा उनके कुछ शोध निबन्धों को पढ़ने से ज्ञात होता है। उनके ऐसे निबन्धों में – 'उद्‌गीय' और 'उपनिषदों के भाष्य' प्रमुख हैं। 'उद्‌गीय' लेख सर्वप्रथम गुरुकुल पत्रिका के जुलाई 1985 अंक में और इसके बाद के अंकों में धारावाही छपा। यह डॉ0 राममूर्ति शर्मा के अभिनन्दन ग्रन्थों में भी प्रकाशित हुआ, ऐसी हमें धुंधली सी स्मृति है। इस गम्भीर शोधपरक लेख में औपनिषदिक ओ३म् का सांगोपांग विवेचन है। 'उपनिषदों के भाष्य' नामक लेख जो कि गुरुकुल पत्रिका के जनवरी 1985 अंक में प्रकाशित हुआ, से आचार्यप्रवर की ऐतिहासिक दृष्टि का ज्ञान होता है। इनकी इतिहास में गहन रुचि थी। इस बात का द्योतक यह निबन्ध है। इसमें उपनिषदों के सभी भाष्यकारों का, चाहे स्वदेशी हो या विदेशी, सिंहावलोकन है। आचार्य शंकर से लेकर राजा राममोहनराय एवं दाराशिकोह आदि सबकी चर्चा इस लेख में है।

आचार्य जी वर्षों तक गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की प्राच्य विद्याओं की मासिक शोधपरक 'गुरुकुल पत्रिका' के भी प्रधान सम्पादक और संरक्षक रहे। समय–समय पर उनके द्वारा की गई मन्त्र–व्याख्याऐं 'श्रुति–सुधा' के रूप में इस पत्रिका में छपती रहीं। कई वैदिक पुस्तकों की महत्त्वपूर्ण समीक्षा/ सम्मतियाँ भी जो आचार्य जी ने लिखीं– वें भी इस पत्रिका में छपी हैं। उनके अन्य लेख भी पत्रिका में देखे जा सकते हैं जो इन्होंने यथा समय लिखें। आचार्य जी के कतिपय लेख इस प्रकार हैं–

1. डॉ0 सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार का एकादशोपनिषद् भाष्य।

(डॉ0 सत्यव्रत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ0 341–343)

2. अमरहुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द।

(गुरुकुल पत्रिका नवम्बर 86 अंक)

3. वैदिक उपदेशों के अभूतपूर्व व्याख्याता आचार्य प्रियव्रत वेद वाचस्पति।

(मार्च 91 का प्रह्लाद पत्रिका का अंक)

4. आर्य समाज के प्रखर वैतालिक विद्यावाचस्पति पं0 इन्द्रजी।

(मार्च 90 प्रह्लाद पत्रिका अंक)

आचार्यश्री की रचनाओं में 'वैदिक पुष्पाञ्जलि' का मुख्य स्थान है। इसके चारों भागों को एक जिल्द में ब्रह्मचारी नन्द किशोर जी के सत्प्रयासों से लाला आदित्य प्रकाश जी

ने अपने अनीता आर्ष प्रकाशन पानीपत से प्रकाशित किया है। आचार्य जी की वेद व्याख्याओं में पाणिनीय व्याकरण, निघण्टु–निरुक्त, ब्राह्मण ग्रन्थ, आख्यक महीधर–सायण–दयानन्द भाष्य, कशिका एवं उपनिषदों के प्रमाणों की बहुलता है। इसके अतिरिक्त प्रस्तुत वेद मंत्र के अर्थ को अपर वेद मंत्रों के द्वारा भी स्पष्ट करने का उनके द्वारा स्तुत्य प्रयास किया गया है। इन्होंने अपनी ऊहा से एक मन्त्र के कई–कई अर्थ भी दिये हैं।

आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार ने वैदिक साहित्य का गम्भीर अध्ययन और अवगाहन किया था। परिणाम स्वरूप मुक्ताराशि उन्हें प्राप्त हुई उसे लेखनी के माध्यम से वेद के रसिक समाज तक पहुंचाने में उन्होंने कभी देरी नहीं की उनकी छोटी–छोटी रचनाऐं आज के व्यस्ततम् और तनावग्रस्त जीवन में इसलिए उपयोगी हैं क्योंकि छोटी पुस्तकों को अल्पसमय में पढ़ा जा सकता है।

आचार्य रामप्रसाद की सारस्वत साधना को अनेक अवसरों पर सम्मानित किया गया। न केवल उनके जीवन काल में ही अपितु मरणोपरान्त भी उनकी सेवाओं को ध्यान में रखते हुए उसे पुरस्कृत किया गया। लगभग 9 संस्थाओं ने उनकी वेद सेवा को देखते हुए सम्मानित किया। विश्व वेद परिषद ने सन् 1984 में उन्हें वेदरत्न मानद् उपाधि से अलंकृत किया था। आशा है आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार की यशस्वी लेखनी से प्रसूत सभी प्रसून समाज के प्रेरणा स्रोत बने रहेंगे। इन्हीं शब्दों के साथ आचार्यश्री को मेरी विनत श्रद्धाञ्जलि।

– डॉ0 दिनेशचन्द्र शास्त्री
व0 प्रवक्ता, वेद विभाग

श्रद्धाञ्जलियाँ

यह जानकर अत्यन्त दुःख हुआ कि श्री रामप्रसाद जी वेदालंकार का २-१०-९८ को देहावसान हो गया है। श्री रामप्रसाद जी ने अपने जीवन – काल में जितना आर्य समाज का प्रचार किया है, शायद ही किसी और विद्वान ने किया हो। उन्होंने मौखिक प्रचार भी किया और साहित्य के द्वारा भी प्रचार किया है। उनके चले जाने से आर्य समाज में जो स्थान खाली हुआ है उसकी पूर्ति कभी भी नहीं हो सकेगी। मैं आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की ओर से और अपनी ओर से उस पवित्र आत्मा को अपनी श्रद्धांजलि भेंट करता हूँ और परमपिता परमात्मा से उनकी सद्गति के लिये प्रार्थना करता हूँ। प्रभु से यह भी प्रार्थना है कि वह आपके सारे परिवार को इस दारुण दुःख को सहन करने की शक्ति प्रदान करे।

– हरबंस लाल शर्मा
सभा प्रधान– आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब
गुरुदत्त भवन, किशनपुरा चौक,
जालन्धर – 144004

***

आदरणीय पूज्य भ्राता रामप्रसाद वेदालंकार जी के स्वर्गवास का अत्यन्त दुःख हुआ। उनके निधन से आर्य समाज को जो क्षति हुई है, वह निकट भविष्य में पूर्ण होनी असम्भव है। उन्होंने आर्य समाज के लिये जो कार्य किया है, वह मुझे आज भी स्मरण है। मुझे रावलपिण्डी के वह दिन भी याद हैं जब स्वामी आत्मानन्द जी के गुरुकुल रावल में पढ़ते थे, उसके बाद गुरुकुल यमुनानगर में और तदुपरान्त गुरुकुल कांगड़ी में विद्या अर्जित की। वे पिछले 15 वर्षों से हर वर्ष मेरी प्रार्थना पर महर्षि दयानन्द जन्म स्थान टंकारा में मनाये जाने वाले ऋषि बोधोत्सव पर पधारते थे और अपने स्वास्थ्य का ध्यान न रखकर वेद प्रचार एवं आर्य समाज के प्रचार प्रसार में लगे रहते थे। वे इतने प्रतिष्ठित विद्वान होते हुए भी बसों में सफर करते थे। यह हमारा दुर्भाग्य है कि हम उनके कार्यों को इतनी सहुलियत न दे सके। परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि दिवंगत आत्मा को शान्ति एवं सद्गति प्राप्त हो और आपको तथा आपके परिवार को यह अपार दुःख सहन करने की शक्ति प्राप्त हो।

संवेदना सहित–
– रामनाथ सहगल
मन्त्री– श्री महर्षि स्मारक ट्रस्ट टंकारा
उपकार्यालय आर्य समाज "अनारकली"
मन्दिर–मार्ग, नई दिल्ली– 110 001

***

चार मास तक मॉरीशस में योग एवं वेदप्रचार का कार्यक्रम सम्पन्न करके जब मैं दिल्ली आया तो गुरुकुल गौतमनगर के आचार्य हरिदेव जी के द्वारा यह दु:खदारुण्य पूर्ण हृदयविदारक अशुभ सूचना को सुना कि हमारे पूज्य आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार का आकस्मिक देहावसान हो गया। उन्होंने **अपने आचरण तथा ज्ञान से अनेक युवकों को मार्गदर्शन दिया। आपकी अनन्य सेवाओं को स्मरण करते हुए हमारा श्रद्धा से नम्रनमन स्वीकार हो**। योगधाम में चल रहे शिविर के सभी साधक–साधिकाऐं उनके निधन पर शोक सम्वेदना प्रकट करते हैं। परिवार को धैर्य धारण करने उनके कार्यों को पूर्ण करने की शक्ति हेतु सविनय प्रभु से प्रार्थना करते हैं।

– दिव्यानन्द सरस्वती
पातञ्जल योगधाम न्यास (पंजी0)
आर्यनगर, ज्वालापुर (हरिद्वार)
पिन – 249 407

***

"आर्य जगत्" के 1 नव0 के अंक में आत्मीय भ्राता श्री रामप्रसाद जी के असामयिक देहावसान के समाचार ज्ञात कर अति ही मनः सन्ताप हुआ। उनसे मेरा पिछले 22 वर्षों से घनिष्ट सम्बन्ध बना रहा। सन् 1977 में 4–6 माह के लिये मैं गुरुकुल कांगड़ी के मेडिकल कॉलेज की अव्यवस्था को नियमित करने गुरुकुल आया था; कुलपति श्री हूजा जी के साथ ही ठहरा था। श्री रामप्रसाद जी से तो उन्हीं दिनों लगभग प्रतिदिन ही मिलना होता रहा। जब–जब भी वह जयपुर आये मेरे यहाँ अवश्य आकर दर्शन देते रहे। उनके निधन में, हमने और आर्य जगत् ने अत्यन्त ही मनीषी, वेद विद्वान् एवं कुशल वेद व्याख्याता खो दिया है जिसकी क्षतिपूर्त्ति अपूरणीय है। प्रभु दिवंगत आत्मा को चिर शान्ति प्रदान करें और आप सभी पारिवारिक परिजनों को इस दारूण दु:ख के सहन की सम्यक् शक्ति एवं ध्रुव धैर्य्य। हमें तो इन्हीं आप्त वचनों में धैर्य्य धारण करना है कि "हरीच्छा बलीयसी"। आत्मीय संवेदनाओं के साथ,

– सत्यदेव आर्य
भू.पू. निदेशक आयुर्वेद कालेज,
गुरुकुल कांगड़ी
एस.बी. 161, बापू नगर,
गाँधी नगर मार्ग
जयपुर – 302 015

***

जब मै अपने को अध्यात्म की ओर मुड़ा हुआ देखता हूँ तो आ0 राम प्रसाद जी का ध्यान आता है। उन के व्यक्तित्व तथा प्रवचन मेरे पथ प्रदर्शक बने। मै उनका हमेशा ऋणी रहूँगा। मैने गुरूकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय से वैदिक साहित्य में एम.ए. किया और "उपनिषदों में त्रैत दर्शन" पर शोध कार्य कर रहा हूँ। यह उन्हीं की प्रेरणा से है। मैं उनके द्वारा लिखित पुस्तकों का अध्ययन करता रहता हूँ। यद्यपि भौतिक रूप से वे हमारे मध्य मे नहीं है परन्तु यश रूपी शरीर से वे आज भी विद्यमान है और हमेशा रहेंगे। मै उनकी यें पक्तियाँ, उनकी स्मृति में गुनगुनाता रहता हूँ :–

"भरोसा कर तू ईश्वर पर तुम्हें धोखा नहीं होगा।
यह जीवन बीत जायेगा तुम्हें रोना नहीं होगा।।"

वे आर्यसमाज का प्रचार करते करते परमपिता परमात्मा को प्यारे हो गये। अन्त में मैं उनको श्रद्धा–सुमन अर्पित करता हूँ। उनकी आत्मिक शान्ति के लिए प्रार्थना करता हूँ।

– यशवन्त मुनि
भू0पू0 मन्त्री, आर्य वानप्रस्थ आश्रम,
ज्वालापुर हरिद्वार

***

प्रकाण्ड विद्वान, वेद मर्मज्ञ, भाष्यकार, लघु पुस्तिकाओं के माध्यम से वेद की गूढ़ बातों को जनमानस तक पहुँचाने की अद्भुत क्षमते गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार के भूतपूर्व कुलपति, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आर्य समाज संस्थापित महर्षि दयानन्द के उपदेशों को प्रचारित करने वाले आदरणीय श्री रामप्रसाद जी वेदालंकार का देहावसान लघु बीमारी के पश्चात् हो गया। आर्य समाज लखीमपुर–खीरी के 105 वें वार्षिकोत्सव में पूर्व प्रधान श्री सुशील कुमार अग्रवाल जी ने उनके जीवन एवम् कृत्यों पर विस्तृत प्रकाश डालते हुए कहा कि आप द्वारा सृजित साहित्य का अध्ययन एवम् उन्हें जीवन में उतारने के कर्तव्यों का परिपालन करके हम उन्हें सच्ची श्रद्धाञ्जलि अर्पित कर सकते हैं। समस्त आर्य जनों ने परमपिता परमेश्वर से प्रार्थना की कि वह इस आत्मा को सद्गति व शान्ति प्रदान करे। शोक संतप्त परिवार को इस अपार दुःख को सहन करने की शक्ति दे। इस महान आत्मा के दिवंगत होने से स्थापित शून्य को प्रतिस्थापित करने की प्रेरणा प्रदान करे।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

– रामजनम बरनवाल
मंत्री–आर्य समाज,
लखीमपुर–खीरी (उ0प्र0)

***

श्रद्धेय दिवंगत आत्मा रामप्रसाद जी, जिनकी हमें साधू रूप में प्राप्ति हुयी। उनके साधुत्व स्वभाव, सरलता, सात्विकता, कर्मठता, धीरता, ईश्वर में दृढ़ विश्वास, स्थिर प्रज्ञ बुद्धि, निर्णयात्मक निर्णय, शुभ संकल्प, चित्त की शुद्धता आदि गुणों को देखकर ऐसा लगता था मानो परम पिता परमात्मा का स्वभाव एवं गुण उनमें जन्मजात रूप में आकर समाये हुए हैं। उन्होंने अपनी लेखनी के माध्यम से परम पिता परमात्मा के वेद ज्ञान की काफी ऋचाओं की सरल व हृदयग्राही भाषा में भावार्थ एवं व्यांख्यायें की। अपने सरल व ओजपूर्ण प्रवचनों से हमें अत्यधिक प्रभावित किया। उनके प्रवचनों में उनके हृदय की सरलता एवं स्पष्टता के दर्शन होते थे। उनकी शैली में किसी प्रकार की बनावट नहीं दिखायी देती थी। अतः उनकी मधुरता, वाणी में आकर्षण हमें मुग्ध किये बिना नहीं रह सका। धन्य है ऐसी आत्मा को जो स्वयं वेद ज्ञान से उन्नत हुयी और अनेकों व्यक्तियों के जीवन उन्नत कर गयी। वे हमारे पथ–प्रदर्शक हुए। उन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा जो ज्ञान की ज्योति जलाई, वह सदैव जलती रहेगी, प्रकाश देती रहेगी यही हमारी उन्हें सच्ची श्रद्धांजलि है।

– ऊर्मिल महता,
(भूतपूर्व प्रधान, आर्यसमाज
विकासपुरी, दिल्ली)
वानप्रस्थ आश्रम,
ज्वालापुर।

***

आदरणीय पं. रामप्रसाद जी एक आदर्श सद्गृहस्थ कुशल प्रशासक, सफल आचार्य तथा अद्भुत वेदश्रमी थे। चलते चलते भी हमें वैदिक पुष्पांजलि नाम का ग्रन्थ दे गये। विद्वान होते हुये भी वह विनम्र थे। उनके उपदेश, सरल, प्रभावशाली तथा हृदयग्राही होते थे। उन्होंने कई पुस्तके लिखी। अपने शिक्षा काल में यह हमारे यहाँ वर्षो रहे वह हमारे लिये गौरव का विषय है। उनमें सेवा भाव कूट–कूट कर भरा था। वह सदा ही प्रसन्न रहते थे। वह उच्चकोटि के ईश्वर भक्त थे। उनका अभाव आर्यजगत की अपूरणीय क्षति है।

– आत्मबोध सरस्वती
(आर्यभिक्षु)
आर्य वानप्रस्थाश्रम, ज्वालापुर

***

डॉ. रामप्रसाद जी वेदालंकार इह लोक में नहीं रहे। उनकी अचानक मृत्यु की सूचना से यहाँ के सभी आर्यजन दु:ख एवं शोक से व्याकुल हो उठे। दुर्भाग्य तो इस बात का है कि उनकी मृत्यु भी चण्डीगढ़ में हुई पर उनके अन्तिम दर्शन भी यहाँ के आर्यजन नहीं कर पाए। इस परिस्थिति पर हम सब अधिक खिन्न एवं संतप्त हैं। ईश्वर के नियम के आगे सिर झुकाते हैं। उनके देहावसान से आर्य जगत में जो खाली–पन हुआ, उसकी पूर्ति नहीं की जा सकती। **उनकी वैदिक साहित्य की सेवा को कभी भी बुलाया नहीं जा सकता। छोटे–छोटे ट्रैक्टों द्वारा उनका वैदिक साहित्य में अविस्मरणीय नाम है। सूक्ष्म, सुन्दर मेधा, कोमल हृदय, मीठी वाणी का उनका अपना अनूठा व्यक्तित्व था।** उनकी अचानक मृत्यु पर हम अपनी संवेदना प्रकट करते हैं। परमात्मा से प्रार्थना है कि संतप्त परिवार को विशेषकर उनकी धर्मपत्नी को इस सदमें को सहन करने की शक्ति दे। हमें विश्वास है कि डॉ. रामप्रसाद जी की आत्मा को परमात्मा अवश्य ही सद्गति देगा। क्योंकि उनके कर्मों में कभी कोई छल–कपट था ही नहीं।

– धर्मवीर बतरा एवं सभी
सदस्यगण
आर्य समाज, सैक्टर–9,
पंचकूला – 134 109

***

माननीय श्री रामप्रसाद जी 'वेदालंकार' जी के स्वर्ग सिधारने का समाचार विश्वसनीय लोगों से सुनकर समिति के सभी सदस्य भावविभोर हो गए। समिति के सभी सदस्य उन्हें श्रद्धासुमन अर्पित करते हैं। उनके सुन्दर शब्द, सभी के प्रेरणास्त्रोत रहें।

भरोसा कर तू ईश्वर पर, तुझे धोखा नहीं होगा।
यह जीवन बीत जाएगा, तुझे रोना नहीं होगा।।

उनका सुन्दर, सरल, सौम्य, सदाचारी, सुव्यवस्थित, लौकिक, प्रशंसनीय, भक्ति, श्रद्धा, उच्चकोटि, निर्मल समानता का जीवन इस आर्य जगत को उच्च शिखिर तक ले आया है। सारा समाज उनका ऋणी रहेगा। फरवरी 1996 में बृहद यज्ञ पर उन्हें सम्मानित कर समिति अपने आपको धन्य मानती हैं। परम पिता परमात्मा दिवंगत पुण्य आत्मा को शान्ति तथा आप सभी को शक्ति प्रदान करें।

–संयोजक एवं समस्त समितिगण
वैदिक यज्ञ समिति,
सोनीपत – 131001

***

आर्य समाज पुरानी मण्डी, जम्मू की यह साधारण सभा अपने साप्ताहिक अधिवेशन के अवसर पर आज 11 अक्टूबर 1998 को 'आर्य रत्न' प्रो. रामप्रसाद वेदालंकार के 1 अक्तूबर 98 को चण्डीगढ़ में हृदयगति रुक जाने से हुए आकस्मिक निधन पर हार्दिक शोक प्रकट करती है। अपने जीवन की अन्तिम साँस तक आप वेद प्रचार में रत रहे, यह कम सौभाग्य का कर्म नहीं है। आप वेदों के मर्मज्ञ विद्वान् एवं उत्कृष्ठ साहित्यकार थे। इनकी लेखनी ने अपनी 62 वर्ष की अल्पायु में 62 से कहीं अधिक पुस्तक रूप में पुष्प चुनकर मानवता को भेंट किए हैं। यह उपलब्धि स्वयं में एक कीर्तिमान है। आप इस समय देश–विदेश में वेदों के शीर्षस्थ विद्वान् थे और आपका जीवन बहुत सादा था। विनम्रता की तो आप प्रतिमूर्त्ति थे। आपने देश के प्रतिष्ठित विश्वविद्यालय 'गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार' के कुलपति पद को भी सुशोभित किया। आपने अपने पारिवारिक जीवन से समय निकालकर देश–विदेश में वेदों को लोकप्रिय बनाने में अद्वितीय योगदान दिया और सच्चे अर्थों में वेदोद्वारक देव दयानन्द के सार्थक अनुयायी बने। आपके निधन से जो क्षति हुई है उसकी पूर्ति होना असम्भव है। फिर भी ईश्वर की न्याय व्यवस्था के सन्मुख हम सबको नतमस्तक होना पड़ता है। उनका भौतिक शरीर भले ही हमारे बीच नहीं है परन्तु अपनी कीर्ति से वे सदैव हमारे हृदयों में प्रतिष्ठित रहेंगे व जीवित रहेंगे। इस शोक की बेला में हमारी पूर्ण सहानुभूति शोक संतप्त परिवार के साथ है और हम सब उनके अंग संग हैं तथा आर्यजनों का यत्न रहेगा कि उनका अभाव आपको न्यूनतम खले। हम परमदेव परमात्मन् से विनती करते हैं कि वे श्रद्धेय आचार्य जी को शान्ति व सद्गति प्रदान करें तथा शोक–संतप्त परिवार को यह गुरुतर दुःख सहन करने का धैर्य तथा शक्ति प्रदान करें। आर्य समाज पुरानी मण्डी का यह सौभाग्य नहीं था कि वह उनके दर्शनों का लाभ उठा पाती। इसी वर्ष वेद प्रचार सप्ताह के अवसर पर उनको आमन्त्रित किया था परन्तु व्यस्ततावश वे हमारी प्रार्थना स्वीकार न कर सके। इसका खेद सदैव रहेगा।

– प्रो0 प्रभुशूर आर्य, मन्त्री
आर्यसमाज पुरानी मण्डी, जम्मू

***

सच है भविष्य को कोई नहीं जान सका! और कब ऐसी अनहोनी घटना हो जाए कि व्यक्ति चाहकर भी विश्वास न कर पाए। इस कालचक्र को कौन समझ सका है? आचार्य जी अकस्मात हमें छोड़कर चले जाऐंगे जिसकी कल्पना भी नहीं की थी। हमारे परिवार का सम्पर्क उनसे 32 वर्ष का था। ऐसी सरलता और स्नेह की मूर्ति मैंने अपने जीवन में दूसरी नहीं देखी। मैं जब–जब भी उनसे मिली अपार स्नेह और आत्मीयता प्रदान की। कानुपर में जब भी आते हमारे पास ही रुकते। पूरे परिवार के साथ बैठकर धर्मचर्चा सत्संग और वेदों की बाते होतीं। हर समय वेद की व्याख्या में लगे रहना। बच्चों जैसी निश्छल हंसी। उस देवमूर्ति को कोई कैसे भुला सकता है। उनके घर में भी विद्वानों, शिक्षाविदों, धर्माचार्यों, संतों और समाज सुधारकों का मेला लगा रहता था। ईश्वर के परमभक्त और गायत्री के परम विश्वासी थे। सादा पहनावा। मैंने कभी उनके मुख से किसी के प्रति अपवचन नहीं सुने। अतः अब तो केवल उनकी स्मृति ही तो है जिसमें जीवन पर्यन्त वे बने रहेंगे और मेरा मार्गदर्शन करते रहेंगे। इसी विनय भाव से मैं अपने श्रद्धासुमन उनको समर्पित करते हुए कामना करती हूँ कि हम उनके बताये हुए, त्याग, सरलता तथा प्रेम के मार्ग को सत्यपूर्वक अपनाकर उनके आदर्शों का अनुकरण, अनुसरण और स्मरण करते रहें।

– श्रीमती अचला मेहरा

कानपुर।

***

श्रीमद् दयानन्द उपदेशक महाविद्यालय शादीपुर यमुनानगर के सुयोग्य स्नातक सर्व हिताभिलासी सर्व जन सुखायं की कामना हृदयंगम करने वाले श्री रामप्रसाद जी वेदालंकार का आकस्मिक निधन सुनकर समस्त कुलवासी शोक सन्तप्त अवस्था में उनकी आत्मा की शान्ति के लिए प्रार्थना तथा उनकी की गई अतुलनीय सेवाओं को स्मरण किया गया। समस्त कुलवासी इस दुःखद क्षण में परिवार के साथ सहानुभूति व्यक्त करते हैं। हे प्रभु दयालु दिवंगत आत्मा को सद्गति तथा शान्ति अवश्य प्रदान करें। तथा उनके अभाव में हम सब गुरुकुल वासियों को उनकी सेवाए चिरस्मरण कराती रहेंगी तथा स्वर्गीय स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती तथा आचार्य श्री विद्याधर जी के सुयोग्य स्नातक को इस उद्यान में सदैव स्मरण रखा जायेगा।

– समस्त शोक संतप्त गुरुकुल
श्रीमद् दयानन्द उपदेशक महाविद्यालय
(निकट शादीपुर)
यमुनानगर (हरियाणा)

***

श्रद्धेय आचार्य जी के देहावसान का मर्मान्तक वृतान्त सुनकर हृदय को अति आघात पहुँचा। यह कल्पनातीत समाचार देर तक अविश्वसनीय बना रहा। हृदय ने स्वीकार ही नहीं किया किन्तु भवितव्यता के सम्मुख विवश होकर अकल्पनीय को अपनी कल्पना में उतारना पड़ता है तथा अस्वीकरणीय को स्वीकार करना पड़ता है। मानव परतन्त्रता के जाल को छिन्न–भिन्न करता हुआ बढ़ता चला जाता है किन्तु इस ईश्वनीय व्यवस्था के समक्ष परतन्त्रता के बन्धन को नहीं तोड़ पाता। वस्तुतःय के सामने यह सबसे बड़ी पराधीनता है। सभी को अपने स्नेह, सहानुभूति तथा ज्ञान–दान द्वारा जीवन देने वाले का जीवन इतना अल्पायु होगा – ऐसा कभी विचार में भी नहीं आया था। इस आकस्मिक वज्रपात से परिवार के साथ ही आर्य जगत् की भी अपूरणीय क्षति हुई है। उनका सदय हृदय गंगा की पावन धारा के समान सभी को आनन्दित व तृप्त करता था। हमें सदैव व्यक्तिगत रूप से उनका आन्तरिक स्नेह व आशीर्वाद प्राप्त रहा। इस कन्या गुरुकुल की स्थापना के मूल में उनका स्नेह व सहयोग संस्था के इतिहास में सदैव स्मरणीय रहेगा। आर्य संस्कृति के उत्थान के लिए उन्होंने अपने जीवन को आहूत कर दिया। सर्वशक्तिमान् प्रभु से प्रार्थना है कि वह आपको इस असह्य दुःख को सहने का सामर्थ्य व धैर्य प्रदान करे। हार्दिक शोक–संवेदना के साथ दिवंगत दिव्यात्मा के प्रति गुरुकुल परिवार सहित हार्दिक श्रद्धाञ्जलि समर्पित करती हुई,

– आचार्या, श्रीमद् दयानन्द कन्या
गुरुकुल महाविद्यालय,
चोटीपुरा, अजबपुर, मुरादाबाद।

***

हमारी समिति के कार्यकर्त्ताओं को पिछले दिनों पूज्य आचार्य जी के दुःखद देहावसान का समाचार मिला। इतना आघात पहुँचा कि जैसा अपना निकटतम सम्बन्धी न रहा हो। एक सप्ताह पूर्व ही पानीपत माडल टाऊन आर्य समाज के वार्षिकोत्सव पर उनके प्रेरणादायक प्रवचन हमारी स्मृतियों पर चिरकाल तक रहेंगे। उनका आपके जीवन पर कितना प्रभाव था, आपने स्वयं अपने प्रवचनों में वर्णन किया। श्रद्धेय आचार्य जी जैसा वेद मर्मज्ञ आज के समय में कहाँ मिलेगा। यह सोचकर हमारा हृदय दुःख से विह्वल हो जाता है। वेद के मर्मों से जिस सहज ढंग से श्रोताओं की बुद्धि एवं हृदय को प्रभावित करते थे कि हर आयु के लोग बारम्बार आपके उपदेशामृत पान करने को लालायित रहते थे। हमने यह समिति कुछ मास हुए गठित की थी कि घर–घर पहुँचकर परिवारों में वैदिक यज्ञों का आयोजन करें। हम इस समिति के शैशव काल से प्रौढ़काल तक पहुँचने के अन्तराल में इन महामानव–वेद विद्वान् के मार्गदर्शन का स्वप्न संजोये हुए थे, किन्तु परमपिता परमात्मा की विधि के समक्ष किसी का वश नहीं। आपके एवं आपके परिवार के इस असह्य दुःख में हम सभी सम्मिलित हैं। ईश्वर इन महान् आत्मा, पुण्यात्मा को सद्गति प्रदान करे।

– समस्त कार्यकर्त्ता
वेद प्रचार एवं वैदिक अग्निहोत्र समिति
आदर्श नगर एवं वीवर्ज कालोनी,
पानीपत – 132 103

***